कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रथम खण्ड

By

Seth S. S. KASLIWAL

B Com, F R E S, A T I
Textile Technologist
"Dharma Diwakar"
"Samyaktva Diwakar"

99, MARINE DRIVE, BOMBAY-400 002.

5/20, SNEHLATAGANJ, INDORE 452 003

18th July 1975

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रथम खण्ड

Publisher :

SETH S S KASLIWAL
B Com, F R E S, A T I
Textile Technologist
"Dharma Diwakar"
"Samyaktva Diwakar"

•

99, Marine Drive,
Bombay 400 002
Phone Nos
Office 298432
Residence 384774

•

Abhaya Niwas,
5/20, Snehlataganj,
Indore 452 003
Phone Nos
Office 31038
Residence 5381

•

Price Rs. 20/-

Printers D J Ved, Phoenix Printing Works, Great Western Bldgs
23 Nagindas Master Road Extn Fort, Bombay 400 023 Phone : 25356[illegible]

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रथम खण्ड

खण्डानुसार

विषयानुक्रमणिका GENERAL INDEX

प्रकरण	विषय	पृष्ठ
९ नवम प्रकरण 9th Chapter	बीजाक्षर और मङ्गलमन्त्र णमोकार	167 to 180
१० दशम प्रकरण 10th Chapter	चौबीस तीर्थंकर	180 i to 180 xiii
११ एकादश प्रकरण 11th Chapter	BHAGWAN VAHUVALI	181 to 193
१२ द्वादश प्रकरण 12th Chapter	कुछ मेरे विषयमें	195 to 218
१३ त्रयोदश प्रकरण 1' th Chapter	मुनिगण	219 to 23[illegible]
१४ चतुर्दश प्रकरण 14th Chapter	परिशिष्ट	233 to 26

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रथम खण्ड

Arrangements of Photo-Blocks and Charts.

श्री भगवान महावीर

श्री महावीर जिन चैत्यालय

१९३०

५/२०, स्नेहलतागंज, इन्दौर सिटी.

To Whom

I Dedicate

For Whom

I Wrote

18th July 1975

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रकरणानुसार

— विषय सूची —

प्रथम प्रकरण : Ist Chapter

द्रव्य-तत्त्व और पदार्थ

विषय पृष्ठ

प्रकरणानुसार

विषय सूची

पंचम प्रकरण : 5th Chapter

The Doctrine of Jainism,

प्रकरणानुसार

विषय सूची

षष्ठक प्रकरण : 6th Chapter

मोक्ष मूलम

प्रकरणानुसार

विषय सूची

सप्तम प्रकरण : 7th Chapter

विश्व (The Universe)

प्रकरणानुसार

विषय सूची

अष्टम प्रकरण : 8th Chapter

क्षेत्र और कालप्रमाण

प्रकरणानुसार

विषय सूची

नवम प्रकरण : 9th Chapter

बीजाक्षर और मङ्गलमन्त्र णमोकार

विषय	पृष्ठ

प्रकरणानुसार

विषय सूची

दशम् प्रकरण : 10th Chapter

चौबीस तीर्थङ्कर

प्रकरणानुसार

विषय सूची

एकादश प्रकरण : 11th Chapter

BHAGWAN VAHUVALI

प्रकरणानुसार

विषय सूची

द्वादश प्रकरण . 12th Chapter

कुछ मेरे विषयमे

अनुक्रम	विषय	पृष्ठ
48	सम्मेदशिखरकी वन्दना	204
54	स्वामि श्री चारुकीर्तिजी भट्टारकद्वारा निमन्त्रण	205
55	हमारी द्वितीय दक्षिण यात्रा	205
60	दिवगत स्वामी श्री चारुकीर्तिजी भट्टारक	206
65	श्रीश्री बालाजी और देवी पद्मावतिके दर्शन	207
67	हमारी प्रथम दक्षिण यात्रा	207
68	हमारे साथ उपरोक्त यात्राके समय	207
75	तृतीय धर्म सम्मेलन–श्रवणबेलगोला	209
76	My Inaugural Address at Shravanbelgola	209
85	My Inaugural Address at Hombuja-Jainmath	210
87	The Summary of the Subjects delt in	218 A
88	My thanks to my Colleagues	218 A

"कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ"

पर
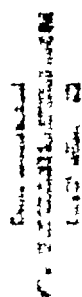
कुछ महानुभावों के

विचार

दो शब्द

परमादरणीय सेठ एस एस कासलीवाल द्वारा लिखित 'कुछ अभ्यास की पक्तियॉ' पृ २६५ ग्रथ के चौदह प्रकरणों को पढ़कर मुझे अत्यत प्रमोद हुआ। इसमें करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के सभी आवश्यक विषय गहन अध्ययन करके लिखे गये हैं। शास्त्रीय शब्दों का अग्रेजीमें अनुवाद करके देश एव विदेश के जिज्ञासु लोगों के लिए जैन धर्म सबधी परिचय का मार्ग सरल और सुबोध कर दिया गया है।

लेखक ने बीजमत्रों और अपने विषयमें जानकारी दी है जिससे उनकी धार्मिक श्रद्धा का परिचय मिल जाता है। पुस्तक सर्वोपयोगी है। पाठक विविध ग्रन्थों के चयन का श्रम न कर सभी विषयों को एक ही स्थान पर पुस्तक रचना द्वारा जान सकते हैं।

नाथूलाल शास्त्री
इन्दौर
१८-९-१९७५

VISHWA DHARM KI JAI

Shri Charukeerthi P Swamiji
SHRI JAIN MATH

MOODBIDRI
S K District, Karnataka State
Date 11-11-1975

श्री धर्मानुरागी, भद्रपरिणामी शकरलालजी कासलीवाल को
— अनेक शुभाशीर्वाद

आपका पत्र व आप द्वारा प्रषित "कुछ अभ्यास की पक्तियाँ" पुस्तक भी प्राप्त हुई। यह जानकर हर्ष हुआ कि आप सानन्द जगाधरी की यात्रा करके लौट आए व अब सम्मेदाचल की यात्रा पर भी जा रहे हैं।

यह अतीव हर्ष व विस्मयजनक बात है कि आप वृद्धाव्य में भी जैन साहित्य की महत सेवा में लगे हुए हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का ऐसा शुभ व विशिष्ट सयोग कम ही देखने में आता है। 'कुछ अभ्यास की पक्तियाँ' का हमने तत्परता से अवलोकन किया। यह श्रमसाध्य रचना निस्सन्देह आपके गहन अभ्यास को व्यक्त करती है। पुस्तक सर्वथा उपादेय व सग्रहणीय है। यह रचना जहां एक ओर जैन पारिभाषिक शब्दों का विशिष्ट कोष है वही स्वाध्याय प्रमीयों के लिए "हस्तकरण्ड" भी है। अनेक आवश्यक विषयों का सश्लिष्ट परिचय पुस्तककी एक और उपलब्धि है। अग्रेजी टिप्पणी ने इस कृति के महत्व को और भी बढ़ा दिया है। कुल मिलाकर यह कृति जैन पारिभाषिक पर्यायों का एक 'हस्तपुस्तक' है जो कि प्रत्येक स्वाध्यायप्रेमी वधु के लिए पास में रखना उपयुक्त है। जैनेतर वधुओमें भी यह कृति वितरण योग्य है।

शेष सर्व कुशल मंगल है। समस्त परिवार को हमारा शुभाशीर्वाद कहिएगा आशा है आप सपरिवार स्वस्थ व प्रसन्न होंगे।

"इति भद्र भूयात"
"वर्धतां जिनशासन"

चारुकीर्ति
११-११-१९७५

जैन गजट (साप्ताहिक) सम्पादन विभाग

सम्पादक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
विद्यावाचस्पति, व्याख्यानकेसरी, समाजरत्न,
धर्मालंकार, विद्यालंकार, पंडितरत्न,
न्यायकाव्यतीर्थ, सिद्धांताचार्य

जैनगजट कार्यालय,
सोलापूर २

दो शब्द

श्री धर्मनिष्ठ सेठ शंकरलालजी कासलीवाल के द्वारा लिखित "कुछ अभ्यासकी पंक्तियाँ" आद्योपांत देखी। जिज्ञासुबंधुओं के लिए तत्वज्ञान को समझने के लिए लेखक महोदय ने बहुत बडा उपकार किया है। आज देश विदेश के लोग वस्तुस्वरुपात्मक तत्व मीमांसाको सरल भाषामें जानना चाहते हैं। द्रव्यादिककी जटिल व्याख्याओं को समझनेकी आकांक्षा लोकमें बढ रही हैं। ऐसे समयमें इस पुस्तकका बहुत बड़ा उपयोग होगा। विदेशीय लोगों के सामने हमारे महावीर दर्शनको संक्षेपमें रखनेका प्रयत्न आपने जो महावीर निर्वाण रजतशती महोत्सवमें किया है वह प्रशंसनीय है।

पुस्तकमें विभिन्न विभागों का निर्माण कर द्रव्य, तत्व पदार्थ, जैनधर्म व उसके मुख्य नियम, ध्यान, मोक्ष, विश्व, चोवीस तीर्थंकर, कालभेद आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया हैं। इसके द्वारा महावीर धर्मकी मान्यताओंको जानने में वडी सुविधा हो गई है।

ऐश आराममें जीवन वितानेवाले लोग अपने उद्योगसे बचे हुए समयका इस प्रकार सदुपयोग करें। इस आवश्यक साहित्य प्रकाशनके व्ययको भी सद्व्यय समझें तो महावीर दर्शन सरल भाषामें घर-घरमें पहुच सकता है और हरएक लोग जिज्ञासुबुद्धि से इसका अध्ययन करेंगे। समयके तकाजेको देखते हुए ऐसी पुस्तकोंकी परम आवश्यकता है। उस द्रष्टिसे श्री कासलीवालजी का कौशल्यपूर्ण कर्तव्य श्लाघनीय हैं। अनेक पीठाधिपतियोंने आपको सन्मान जो दिया है वह समुचित है।

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
१७-११-१९७५

H H. SWASTISRI

Sri Devendrakeerti Bhattaraka Swamiji

SHRI HOMBUJA JAIN MATH,
POST - HUMCHA
HOSANAGARA TALUK, SHIMOGA DIST.
KARNATAKA STATE (INDIA)

Ref. No Date 25 11-1975

We are in receipt of a press copy of "KUCHH ABHYAS KI PANKTIYA" a challenging and enlightening work from the distinguished pen of Sri Shankarlal Kasliwal, "Samyaktva Diwakar", of Bombay This book provides an inspiring insight into the philosophy of Jainism, and is useful for the students of that field We are sure that the book is much more beneficial for the esearch students as it covers all the views of Jainism

Sri Shankarlal Kasliwal, the author of the book is comming from a respectable family It is heartening to see that even in his advanced age, he is writting books on religion, which are a boon to the research scholars He is evincing keen interest in the constructive work in the educational, cultural and social fields His sympathetic human approach to any knotty problem, which is reflected in this work has endeared him to all sections of people

We pray Bhagwan Shri Parshwanatha Swamy and Bhagawaty Shri Padmavaty Devi for the healthy, long life of the author, and hope that the public in general and the Jains in particular will get the benefits of this book in all views

With Blessings,
Shri Devendrakeerty Swamiji
25-11-1975

Charukeerti Swamiji

Shri Jain Math,
Shravanbelgola P O
Karnataka State, India

Camp Shravanbelgola,
Date · 8-11-75
Ref : 'Comments' on
कुछ अभ्यास की पंक्तियों

धर्मानुरागी धर्मदिवाकर श्री शंकरलाल कासलीवालजी,

अनेक शुभाशीर्वाद

आपका पत्र तथा टेलीग्राम मिला। विहारमें रहनेसे उत्तर लिखना हो नहीं सका। आजकल हम २१ दिनका मौन व्रत पालन करते हैं। मौन-कालमें आपकी पुस्तक 'कुछ अभ्यासकी पंक्तियां' (प्रथम खण्ड) का अध्ययन करनेका समय मिला।

"आपका जिनोपदेशित तत्वमें अचल श्रद्धा तथा सतत स्वाध्याय का फल स्वरूप है यह 'कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ'। यह एक कोश नहीं, लेकिन जैन परिभाषिक शब्दो की सरल व्याख्या है। पाठकोंके लिए उपयुक्त है। जैन जगत् की वहुत कुछ जानकारी इस किताव को पढनेसे प्राप्त होती है। तथा अंग्रेजी में भी कुछ महत्वपूर्ण शब्दों का और विषयोंका अनुवाद भी है। पाठक इस का अवश्य ही उपयोग करेंगे ऐसी आशा है।"

आप अपने व्यापारिक तथा सासारिक कार्योंमें व्यस्त होनेपर भी कई ग्रथों को अध्ययन करके इस ग्रथ को तैयार किया है। इसे देखकर आपका परिश्रम तथा रुचि औरों के लिए आदर्श है।

आपका धर्म वात्सल्य तथा अभिमान को देखकर सतोष होता है।

आशीर्वाद

चारुकीर्ति
८-११-१९७५

उपाध्याय महामुनिश्री विद्यानन्दजी

परम विज्ञ महामुनि उपाध्याय श्री १०८ विद्यानदजी की वंदनार्थ मगलवार दिनाक २१-१०-१९७५ को, मैं जगाधरी (हरियाना) पहुँचा। मेरे साथ मेरे जामात चिरजीवी श्री रमेशबाबू, मेरी द्वितीय पुत्री सौभाग्यवति चिरु स्नेह और उनकी पुत्री चिरु रचना थे। मेरे पुत्र जिरजीवा विवेक कुमार और चिरजीवी आलोककुमार भी थे। हम MRJ 4576 मोटर द्वारा गये थे। ड्रायव्हर श्री वाबू मारुति बनसोडे और श्री शान्ताबाई थे।

पहुँचने के साथही हम सब श्रीमान शेठ श्री जयप्रसादजी साहेब के बगले पर, जैन नगरमें ठहरे। परम पूज्य मुनिराजका १२ वा चातुर्मास जैन नगरमेंही हुआ था। सोमवार दिनाक २०-१०-१९७५ को मुनिराज विहार कर जगाधारी नगरमें गये। वे वहांपर रवीवार दिनाक २६-१०-१९७५ तक रहे, फिर जैन नगरमे आये।

शेठ श्री मोतीलालजी साहेब (सुपुत्र शेठ श्री जय प्रसादजी साहेब) करीब चार बजे हम सबोंको मुनिश्रीके दर्शनार्थ जगाधरी नगरमें ले गये। हमारी वदना आनद विभोरित हुई। मेरे दर्शन मुनिश्रीके इन्दौर चातुर्मास के पश्यात हुए थे, वर्षो पश्चात। मैं ने "अभ्याम की कुछ पक्तियाँ" की एक प्रति मुनिश्रीको समर्पित की। मुनिश्रीने पुस्तक को देखी। मुनिश्रीके साथ पढित श्री नाहुलालजी थे।

मुनिश्रीके प्रवचत जगाधरी मे बुधवार दिनाक २२-१०-१९७५, गुरुवार दिनाक २३-१०-१९७५ और शुक्रवार दिनाक २४-१०-१९७५ को सुनने से मुझे यह सातरी हुई कि मैं "कुछ अभ्यास की पक्तियों" के सकलन में चूका नहीं हूं। मै ने इन प्रवचनों को केसेट नवर ७ और ८ पर रेकॉर्ड किये हैं।

फिर मुनिश्रीके प्रवचन शनीवार दिनाक २५-१०-७५ और रवीवार दिनाक २६-१०-७५ को हुए, वे भी केसेट नवर ८ और ९ पर रेकॉर्ड किये है।

मुनिश्रीने "कुछ अभ्यास की पक्तियाँ" के दशम प्रकरण में वर्णित भगवान महावीर के मोक्ष के पश्चात आचार्य परपराके विषय में कहते हुए पूर्ण [illegible] की।

हम बुधवार दिनाक २९-१०-७५ को उपाध्याय श्री के दर्शन कर, सहारनपुर और मुजफ्फर नगरमें मुनि सघोंकी वदना करते हुए वम्बई आ गये।

A Request

1 At the end of this Book, after Chapter 14th, please refer the Errata given

2 At page IIB, at item 15(2) please read "as at his 77th Birth Day"

At page 218 C, please read "My 77th Birth Day"

कुछ विशेष

मुद्रण के समय कई भुलें हुई हैं, प्रकरण चतुर्दश के पश्चात सलग्न शुद्धि-पत्रक में भूलें सुधारी हैं, किन्तु फिर भी सभावनाये हो सकती हैं। पाठक कृपया सदर्भानुसारही पढें।

विनीत

शकरलाल कासलीवाल

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

प्रथम प्रकरण : 1ST CHAPTER

द्रव्य तत्व और पदार्थ

1 जीव-जीवात्मा Jiva is a living rhythm, subsisting by its own force It is indestructible. The self-subsistent rhythm of Life The Soul :

(१) ससार या मोक्ष दोनोमे जीव प्रधान तत्व है। यद्यपि ज्ञानदर्शन स्वभावी होनेके कारण वह आत्मा ही है, फिर भी ससारी दशामे प्राण धारण करनेसे जीव कहलाता है। वह अनन्तगुणोका स्वामी एक प्रकाशात्मक अमूर्तीक सत्ताधारी पदार्थ है, कल्पना मात्र नही है, न ही पचभूतोके मिश्रणसे उत्पन्न होनेवाला कोई सयोगी पदार्थ है। ससारी दशामे शरीरमे रहते हुए भी शरीरसे पृथक् लौकिक विषयोको करता व भोगता हुआ भी वह उनका केवल ज्ञाता है। वह यद्यपि लोकप्रमाण असख्यात प्रदेशी है परन्तु सकोचविस्तार शक्तिके कारण शरीरप्रमाण होकर रहता है।

(२) जीव अनन्तानन्त है। उनमे से जो भी साधना विशेष के द्वारा कर्मों व सस्कारोका क्षय कर देता है वह सदा अतीन्द्रिय आनन्दका भोक्ता

परमात्मा वन जाता है। तव वह विकल्पोंसे सर्वथा शून्य हो केवल ज्ञाता द्रष्टाभावमे स्थिति पाता है। जैनदर्शनमे उसीको ईश्वर या भगवान् स्वीकार किया है, उससे पृथक् किसी एक ईश्वरको वह नहीं मानता।

2, **वहिरात्मा :** The Mundane Soul :
जो देहादिक को ही अपनी आत्मा समझता है।

3 **अन्तरात्मा :** The Enlightened Soul :
जो देहादिकसे भिन्न अपनी आत्माको समझता है।

4 **परमात्मा :** The Emancipated Soul :
जो साधना विशेष के द्वारा कर्मों व सस्कारोका क्षय करता है।

5 **द्रव्य :** The Matter : The Substance

(1) The Universe is full of forms, force and the matter The world-process is eternal, and those concrete things, whether they be called thought-forms or actual objects, must have some sort of material basis for their being

(2) We lay that the existing material of the Universe consists of two different kinds of substances the Jiva (conscious) and the Ajiva (non-conscious)

(3) In other way the substance is the component factor of the Universe which is sub-divided into Jiva (living) and Ajiva (non-living) substances

(4) Dravya or substance is that which continues to exist through changes due to origin and decay of its modifications

(5) We must also make due allowance for their interplay. This necessitates a common ground for action, as well as the determination of the causes which bring about and render that interplay possible

(6) We thus get Space, Time, the continuous ether, that is the medium of motion, and an opposite kind of ether as the medium of rest Of these, Time is the principle of continuity and is recognized as a separate substance

(7) The medium of motion and that of rest are called Dharma and Adharma respectively, and matter is known as Pudgala This complets our list of the substances neccessary for the world process which may be enumerated in the following tabulated from .
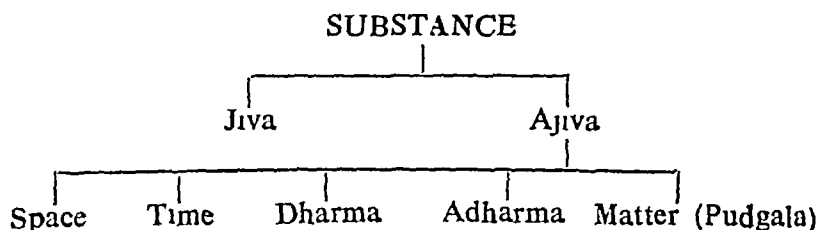
(8) Jainism posits these six substances as eternal, and claims that no world-process is possible without them Even when portions of the universe are destroyed, thes realities do not disappear or become merged in on another , for there can be no such thing as an abso lute Pralaya (total destruction)

लोक द्रव्योका समूह है और ये द्रव्य छह मुख्य जातियोमे विभाजित है गणनामे वे अनन्तानन्त हैं। परिणमन करते रहना उनका स्वभाव है. क्योकि विन परिणमनके अर्थक्रिया और अर्थक्रियाके विना द्रव्य के लोपका प्रसग आता है।

यद्यपि द्रव्यमे एक समय एक ही पर्याय रहती है पर ज्ञानमे देखनेपर वह अनन्त गुणो व उनकी त्रिकाली पर्यायोका पिण्ड दिखाई देता है।

द्रव्य, गुण व पर्यायमे यद्यपि कथन क्रमकी अपेक्षा भेद प्रतीत होता है, पर वास्तवमे उनका स्वरूप एक रसात्मक है।

6 क्षेत्र The Space.

(1) The Space is a self-subsisting entity; it cannot be created, or destroyed, by any process of regression, or progression In its infinity of extension, it includes the universe of matter and form as well as that which lies beyond It thus embraces the Loka and the Aloka both, and is uncreate and eternal, hence, a self-subsisting reality, since there is neither a being to create it, nor any possible source for its creation.

(2) The infinity of Space is divided into two parts, namely, the Lokakasha (Loka + Akasha), the Space occupied by the universe, and the Alokakasha (Aloka + Akasha), the portion beyond the universe The Lokakasha is the portion in which are to be found the remaining five substances - (1) the Soul, (2) the Matter, (3) the Time, (4) the Dharma and (5) the Adharma, but the Alokakasha is the region of pure space containing no other substance, and lying stretched on all sides beyond the bounds of the three worlds, the entire universe.

आकाश द्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यक्षेत्र कहलाता है और आकाश द्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा काल द्रव्य नोक्षेत्र कहलाते है।

आकाश सप्रदेशी है, और वह ऊपर नीचे और तिरछे सर्वत्र फैला हुआ है।

द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है। अथवा प्रयोजनके आश्रयसे (पर्यायार्थिक नयसे) क्षेत्र दो प्रकारका है–लोकाकाश व अलोकाकाश। अथवा देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है।

मन्दराचल (सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है मन्दराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है मन्दराचलसे परिच्छिन्न अर्थात, तत्प्रमाण मध्यलोक है।

7 काल The Time:

(1) Time is the substance which is the thread of continuity on which are strung the successive moments of sequence. That Time is a reality, is evident from the fact that neither the continuation of substances and things, nor sequence of events can be possibly conceived without it.

(2) The primary conception involved in the idea of Time is that of continuity since the power to continue in Time is enjoyed by all substances, and, to a limited extent. also by all bodies and forms

(3) Continuity itself is not a summation of a series of discontinuous event, changes, or moments, but a proceess of persistence, that is an enduring from the past into the ever-renewing present — a survival, or carrying over, of individuality, from moment to moment.

(4) If we analyse our feeling of self-continuance, we shall observe that our consciousness feels itself enduring in Time, that is to say, that it knows itself to be contsantly

surviving the past, and emerging, whole and entire, in the present, together with an awareness of having performed some sort of a journey from moment to moment

(5) This consciousness of the progress made is not the consciousness of a journey performed in space, but of one made in an entirely different manner. It is a journey which leaves, the traveller exactly where he was before in space, but implies his progress in duration

(6) Now, since we cannot have a consciousness of travelling, or change, except when some kind of movement is actually executed, the progress of consciousness in Time must be a real journey in some way

(7) Analysis discloses the fact that the movement of continuity is not a process of translation from place to place, but a sort of revolving on oneself, so that each revolution gives us a new 'now', while at the same time, leaving us where we were before, in all other respects

(8) Introspection confirms this conclusion fully, for while the consciousness of continuity implies a constant movement from the past towards the present, it involves neither an idea of locomotion in space, nor a notion of the change of identity

(9) The consciousness of Time, then, is the consciousness of a movement of internal rotation of some kind. Any one who withdraws himself into his inner being, and concentrates his attention on the awareness of continuity, will feel himself emerging into each 'now' as

the same individual, and will also know the present moment to consist in the feeling of self-awareness which life has of its own existence, independently of the sense-organs.

(10) This feeling of progress is precisely the one from which springs our consciousness of Time and that which enables this progress to be made is the substance of time Thus Time is the substance which enables things to continue in nature.

यद्यपि लोकमे घण्टा, दिन, वर्ष आदिको ही काल कहनेका व्यवहार प्रचलित है, पर यह तो व्यवहार काल है वस्तुभूत नही है।

वस्तुभुत काल तो वह सूक्ष्म द्रव्य है, जिसके निमित्त से ये सर्व द्रव्य गमन अथवा परिगमन कर रहे हैं। यदि वह न हो तो इनका परिगमन भी न हो, और उपरोक्त प्रकार आरोपित कालका व्यवहार भी न हो।

यद्यपि वर्तमान व्यवहारमे सैकण्डसे वर्ष अथवा शताब्दि तक ही कालका व्यवहार प्रचलित है। परन्तु आगममे उसकी जघन्य सीमा 'समय' है और उत्कृष्ट सीमा युग है।

समयसे छोटा काल सम्भव नही, क्योंकि सूक्ष्म पर्याय भी एक समयसे जल्दी नही बदलती।

एक युगमे उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी ये दो कल्प होते है। उत्सर्पिणीमें दुख से सुखकी वृद्धि होती है।

8 भाव The quality of the object:

(A) The Bhava of the Soul is of five kinds

(1) Aupashamika (औपशमिक), that which is due to the

subsidence or upashama of karmas

(2) Kshayika (क्षायिक), that which arise from the complete destruction of karmas

(3) Mistra Kshyopashamika (मिश्र/क्षायोपशमिक), that which is due to partial subsidence

(4) Audayika (औदयिक), that which is the result of the rise and fruition of karmas

(5) Parinamika (परिणामिक) the Soul's natural state of affairs

(a) Aupashamika (औपशमिक) is of two kinds

(1) Right perception

(2) Right Conduct

(i) Due to the subsidence of Anantanubandhi krodha, mana, maya and lobha (highest types of anger, pride deceipt and greed) Right perception is produced and

(ii) Due to the subsidence of all Mohaniya Karmas, Right conduct is produced

(k) Kshayika (क्षायिक) is of nine kinds

(1) Knowledge केवलज्ञान
(2) Perception केवलदर्शन
(3) Charity क्षायिकदान
(4) Gain क्षायिकलाभ

(5) Enjoyment क्षायिकभोग

(6) Re-enjoyment क्षायिकउपभोग

(7) Power क्षायिकवीर्य

(8) Belief क्षायिकसम्यक्त्व

(9) Conduct क्षायिकचरीत्र

(m) Mishra / Kshayopashmika (मिश्र / क्षायोपशमिक) is of eighteen kinds :

(1) Four kinds of right knowledge — मति, श्रुत, अवधि, और मन पर्यय यह चार ज्ञान

(2) Three kinds of wrong knowledge — कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन अज्ञान

(3) Three kinds of perception — चक्षु अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शन

(4) Five kinds of attainments — क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये पांच लब्धियाँ

(5) Right belief — क्षायोपशमिक सम्यक्त्व

(6) Right conduct — क्षायोपशमिक चारित्र

(7) Restraint with non-restraint — सयमासयम

(ia) Audayika (औदयिक) is of twenty-one kinds :

(1) Four conditions of existence — नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव यह चार गतियाँ

(2) Four passions — क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार कषायें

(3) Three Sexes — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद, यह तीन लिंग

(4) Wrong belief — मिथ्यादर्शन

(5) Ignorance — अज्ञान

(6) Non-control of desires — असंयम

(7) Non-liberation — असिद्धत्व

(8) Six kinds of thought-colours — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल यह छह लेश्याएँ।

(p) Parinamika (परिणामिक) is of three kinds ;

(1) Jivatva — जीवत्व

(2) Bhavyatva — भव्यत्व

(3) Abhavyatva — अभव्यत्व

(B) The Bhava of the Pudgal (Non Soul) is of three kinds ;

(1) Audayika — औदयिकभाव

(2) Kshayika — क्षायिकभाव

(3) Parinamika — परिणामिकभाव

(C) The Bhava of the other four Dravyas, (1 Space 2 Time, 3 Dharma and 4. Adharma) is only Parinamika.

चेतन व अचेतन सभी द्रव्यके अनेकों स्वभाव हैं। ये सब उसके भाव कहलाते हैं।

जीव द्रव्यकी अपेक्षा उनके पाच भाव हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और परिणामिक।

कर्मोके उदयसे होनेवाले रागादि भाव औदयिक हैं। उनके उपशमसे होनेवाले सम्यक्त्व व चारित्र औपशमिक हैं। उनके क्षयसे होनेवाले केवल ज्ञानादि क्षायिक हैं। उनके क्षयोपशमसे होनेवाले मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक है। और कर्मोके उदय आदिसे निरपेक्ष चैतन्यत्व आदि भाव परिणामिक हैं।

एक जीवमें एक समयमें भिन्न-भिन्न गुणोंकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न गुणस्थानोमें यथायोग्य भाव पाये जाने सम्भव हैं, जिनके सयोगी भगोको सन्निपातिक भाव कहते हैं।

पुद्गल द्रव्यमे औदयिक, क्षायिक व परिणामिक ये तीन भाव तथा शेष चार द्रव्योंमें केवल एक परिणामिकभाव ही सम्भव हैं।

9 (1) जीवके उपरोक्त चार स्वरूप हैं।

(1) जीव-जीवात्मा — The Soul
(2) बहिरात्मा — The Mundane Soul
(3) अन्तरात्मा — The Enlightened Soul
(4) परमात्मा — The Liberated Soul

(2) जीवके दो भेद है।

ससारी (Mundane) और मुक्त (Liberated

(3) स्वचतुष्टय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

(1) जीव पदार्थके रूपमें है-द्रव्य
(2) जीव अस्तिकायके रूपमें है-क्षेत्र।
(3) जीव द्रव्यके रूपमें है-काल।
(4) जीव तत्वके रूपमें है-भाव।

(4) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पर परिच्छेद 5, 6, 7 और 8 देखें।

10 पदार्थ (Substantive Matter) नौ हैं।

(1) जीव Sentient—The Soul

(2) अजीव Non-Sentient—The Matter

(3) आस्रव Inflow of Karmas

(4) बन्ध Bondage of Karmas

(5) संवर Stoppage of Karmas

(6) निर्जरा Destruction of Karmas

(7) मोक्ष Liberation from Karmas

(8) पुण्य Virtuous Acts The Weal

(9) पाप Non-virtuous Acts : The Woe

'व्यक्ति', 'आकृति', और 'जाति' ये सब मिलकर पदका अर्थ पदार्थ होता है।

इस विश्वमें जो जाननेमें आनेवाला पदार्थ हैं वह समस्त द्रव्यमय, गुणमय और पर्यायमय हैं।

जीव और अजीव दो भाव (अर्थात मूल पदार्थ) तथा उन दोके पुण्य, पाप, आस्रव, बध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सब मिलकर (नव) पदार्थ हैं।

11. अस्तिकाय The Astikaya

(1) "Asti-kaya" consists of two words, "Asti" and "Kaya" "Asti" literally means "exist" and "Kaya" literally means "body"

(2) Dravya is divided into Jiva and Ajiva Ajiva, again, is subdivided into Pudgal, Dharma, Adharma, Akasa and Kala These five Ajivas, with Jiva, make up the six varieties of Dravya

(3) Of these six varieties, Jiva, Pudgala, Dharma, Adharma and Akasa are technically known as the five Astikayas

आस्तिकाय पाँच हैं ।

(1)	जीवास्तिकाय	The living objects
(2)	अजीवास्तिकाय	The non-living objects
(3)	धर्मास्तिकाय	The fulcrum of motion
(4)	अधर्मास्तिकाय	The fulcrum of rest
(5)	आकाशास्तिकाय	The interpenetration

द्रव्य छह हैं। जो द्रव्य कायरूप अस्तित्वमें नियत, अनन्यमय और बहुप्रदेशी हैं, जिन्हें विविध गुणों और पर्यायोंके साथ अपनत्व हैं, जो तीनों कालोंके भाव रूप परिणमित होते हैं तथा नित्य हैं, ऐसे द्रव्य उपरोक्त पान्च हैं।

12 द्रव्य (Substance) छह हैं :

(1)	जीव	The sentient
(2)	अजीव	The non-sentient
(3)	धर्म	The medium of motion
(4)	अधर्म	The medium of rest
(5)	आकाश	The space
(6)	काल	The time

(1) Jiva means the Mundane Soul

(2) Ajiva means the Pudgala, characterised by colour, smell, taste and touch.

(3) Dharma means a kind of ether which is the fulcrum of motion With the help of Dharma, Pudgala and Jiva move,

(4) Adharma means the fulcrum of Rest It assists Jiva or Pudgala in staying still Adharma is the cause of rest of Dravyas, Pudgalas etc , etc

(5) Akasa means the interpenetration Akasa is that which allows space to other substances Interpenetrability is the characteristic of Akasa

(6) Kala means the Time consists of minute points or particles which never mix with one another, but are always separate The universe (Lokakasa) is full of these particles of time, no space within it being void of the same That these particles of time are invisible innumerable, inactive and without form

13 तत्व (Elements) सात हैं

(1)	जीव	Soul
(2)	अजीव	Non-Soul
(3)	आस्रव	Influx of Karmas
(4)	बन्ध	Bondage of Karmas
(5)	संवर	Stoppage of Karmas
(6)	निर्जरा	Destruction of Karmas
(7)	मोक्ष	Liberation from Karmas

(1) Jiva is the conscious element in man, uncreated and eternal and is termed as the Soul

(2) Ajiva (the matter) is also uncreated and eternal It has permanent substantiality manifesting through change It has the triple characteristics of utpada (origin), Vyaya (decay) and dhrauya (permanency)

(3) Asrava is the inflow of karmic matter into the soul due to the action of body, speech and mind

(a) Karma is of two kinds, punya (Virtue) and papa (Vice)

(b) Righteous activity is the cause of Virtue and unrighteous activity is the cause of Vice

(4) Bandha is due to wrong belief vowlessness, negligence carelessness, passions, activity of mind, speech and body

(5) Samvara is the stopping of the inflow of Karmas into the soul

(6 Nirjara is the destruction of karmas The destruction is of two kinds, Bhava-Nirjara and Dravya-Nirjara

(a) Bhava-Nirjara consists of that modification of the soul which precedes and favours the separation of Karmic matter from the Soul

(b) Dravya-Nirjara is the actual separation of the Karmik matter from the Soul

(7) Moksa is the liberation from karmas

(a) The modification of the soul which is the cause of the destruction of all karmas is Dravyamoksa

(b) The actual separation of the karmas is Bhava-moksa

प्रयोजनभुत वस्तुके स्वभावको तत्त्व कहते हैं। परमार्थमे एक शुद्धात्मा ही प्रयोजनभूत तत्त्व है। वह ससारावस्थामें कर्मोसे बँधा हुआ है। उसको उस बन्धनसे मुक्त करना इष्ट है। ऐसे हेय व उपादेयके भेदसे वह दो प्रकारका है अथवा विशेष भेद करनेसे वह सात प्रकारका कहा जाता है।

अपना तत्त्व स्वतत्त्व होता है, स्वभाव असाधारण धर्मको कहते हैं अर्थात् वस्तुके असाधारण रूप स्वतत्त्वको तत्त्व कहते हैं।

तत्त्वका लक्षण सत् है अथवा सत् ही तत्त्व है। जिस कारणसे कि वह स्वभावसे ही सिद्ध है, इसलिए वह अनादि निधन है, वह स्वसहाय है और निर्विकल्प है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

14 जीव पदार्थ भी है, जीव अस्तिकाय भी है, जीव द्रव्य भी है और जीव तत्त्व भी है।

15 ससारी जीव के भाव मरण होते हैं, क्योंकि द्रव्य का लक्षण सत् है।

16 सत् की परिभाषा :

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य में युक्त है, भाव मरण काल द्रव्य की परिस्थिति में लिप्त है। जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्य से सम्बन्धित है किन्तु पर्यायें भिन्न हैं। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्यपर कोई असर नहीं है। पुद्गल द्रव्य से जीव द्रव्य अलग हो सकता है।

17 एक उदाहरण

जैसे नारियल, वृक्षपर। प्रत्येक कण लिपटा हुआ, नरेटी के साथ। वैसे पुद्गल के साथ आत्म प्रदेश। जैसे नारियल की श्रीफल अवस्था, नरेटी अलग, फल अलग। वैसे जीवात्मा की शुद्ध अवस्था, पुद्गल अलग, जीव अलग।

18 कर्म : The Karma

(1) It is to be noted that our world is full of infinite molecutes ready for being transformed into Karmas, the source of Soul's bondage.

(2) The advanced Souls, equipped with balanced mental outlook stop the Karmic influx and they destroy the

already accumulated Karmic filth by means of concentration and penance Thus the Soul enjoys perpetual bliss of liberation

(3) This state of perfection is the outcome of one's own efforts No outward agency can be depended upon to achieve the objective.

(4) To a Jiva in Samsara desire and aversion will naturally occur On account of these states Karmic matter clings to the Jiva

(5) The Karmic bondage leads the Jiva through the four Gatis or states of existence

(6) Entering into the Gati, Jiva builds up its own appropriate body, being embodied he gets the senses Through the sense-objects objects of the enviroment are persued

(7) From perception appears desire or aversion towards those objects and from desire the cycle begins again.

(8) Thus desire brings Karma, Karma leads to Gati, Gati means body, body implies senses, senses lead to perception and perception again to desire or aversion and so on and infinitum

कर्म शब्द के अनेक अर्थ है। मन, वचन और कायके द्वारा, जीव कुछ न कुछ करता है। य सब उसकी क्रिया अथवा कर्म है। मन, वचन [illegible] ये जीवके तीन द्वार हैं।

कर्म शब्द, कर्ता कर्म और भाव में समाविष्ट है। इस भाव कर्मसे [illegible] हुए सूक्ष्म (पुद्गल) स्कन्ध जीवके प्रदेशोंमें प्रवेश पाते हैं [illegible] साथ बंधे है।

[illegible] सूक्ष्म स्कंध अजीव कर्म या द्रव्य कर्म कहलाने है और रूप [illegible] मलिन द्वार है।

जैसे जैसे कर्म जीव करता है, वैसेही स्वभावको लेकर ये द्रव्य कर्म उसके साथ बधते ह और कुछ काल पश्चात परिपक्व दशाको प्राप्त होकर उदयमें आते हैं।

उस समय इनके प्रभावसे जीवके ज्ञानादि गुण तिरोभूत हो जाते हैं। यही उनका फलदान कहा जाता हैं। सूक्ष्मता के कारण वे दृष्ट नही हैं।

यदि श्रमण, "कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा है", ऐसा निश्चयवाला होता हुआ, अन्यरूप परिणमित नहीं हो तो, वह शुद्ध आत्माको उपलब्ध करता है।

कर्म आठ हैं और इनका प्रभाव केवल जीव पर चारों अवस्थाओं में है। पदार्थ अवस्था, अस्तिकाय अवस्था द्रव्य अवस्था और तत्व अवस्था।

(i) ज्ञानावरणीय Gyanavarniya), Karma which obstructs knowledge

(ii) दर्शनावरणीय (Darshanavarniya) Karma which obstructs that form of consciousness which precedes knowledge

(iii) वेदनीय (Vedaniya): Karma which enables the Soul to have sensations of pleasure or pain through senses

(iv) मोहनीय (Mohaniya) Karma, the ring leader of Karmas causing delusion and perverted view of self and non-self

(v) आयु (Ayuh) Karma determining the length of life in a particular body.

(vi) नाम (Nama): Karma is responsible for physical forms, complexion, constitution etc of the body

(vii) गोत्र (Gotra) Karma causing birth in high or low family.

(viii) अन्तराय (Antaraya) · Karma acts as impediment in the acquisition of objects and their enjoyment by means of senses

19 जीवद्रव्य, पुद्गल द्रव्य से अलग हो सकता है, अलग होनेकी क्षमता है यदि दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्म तथा भावास्रव और द्रव्यास्रव पदार्थों पर लक्ष्य दिया जाए तो।

20 मोहनीय कर्म

(1) मोहनीय कर्म के मूल दो भेद है :

दर्शनमोहनीय
चारित्रमोहनीय

जो आत्माके सम्यग्दर्शन गुणका घात करे वह दर्शन मोहनीय कर्म और जो आत्माके चारित्र गुणका घात करे वह चारित्र मोहनीय कर्म।

(2) दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद है :

मिथ्यात्व
सम्यग्मिथ्यात्व
सम्यक्प्रकृति

(3) चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेद है

कषाय
नोकषाय

कषाय के भेद :

अनन्तानुबन्धी . क्रोध, मान, माया और लोभ
अप्रत्याख्यानावरण : क्रोध, मान, माया और लोभ
प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, और लोभ
सज्वलन , क्रोध, मान माया और लोभ

नौकषाय के (किंचित कषायके) भेद :

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुवेद, और नपुसकवेद ।

इस प्रकार 16 कषाय, 9 नौकषाय, ये 25 चारित्रमोहनीय की और 3 दर्शनमोहनीयकी, कुल मिलाकर 28 मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ हैं।

21 जीवात्मा स्वस्वरूपको भूलकर 'पर' स्वरूपको 'स्व' स्वरूप माने अथवा स्वरूपाचरण में असावधानी वर्ते तब उसमें जिस कर्म का उदय निमित्त होता है वह मोहनीय कर्म है ।

जीवात्मा के मन, वाणी और काया के जिन परिणामोंसे दिन–रात जो शुभाशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, वे आस्रव हैं ।

22 जीव पदार्थ, जीव अस्तिकाय, जीव द्रव्य और जीव तत्व पर अन्य तत्व और पदार्थोंका प्रभाव होने से जीवात्मा (Soul) पर कर्मोंकी सब प्रकृतिया छा जाती हैं और पुद्गल/अजीव (non-Soul) क साथ जकडा जाती हैं।

23 पुद्गल द्रव्य से जीव द्रव्य के छुटाकारेका नाम मोक्ष है ।
गृद्धपिच्छाचार्य, उमास्वाति या उमास्वामि (जो कुदकुदाचार्य के शिष्य थे) के अनुसार "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।

(1) सम्यग्दर्शन Right Belief
(2) सम्यग्ज्ञान Right Knowledge
(3) सम्यक्चारित्र Right Conduct

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं। तब हम कौन है, कहा है और क्यो हैं।

24 हम (जीव) छह द्रव्यो मे से एक द्रव्य है।

हम (जीव) छह द्रव्य मे लोकाकाश मे वास करते हैं।

हमारा (जीवका) पुद्गल (पदार्थ) के साथ कर्माधीन सम्बन्ध होने से हम छह द्रव्यो के अन्तर्वर्ती (मध्य) है।

25 छूने से, खाने से, सूघने से, देखने से, और सुनने से, तथा मन, वचन और काय के योग मे, जो हलचले पैदा होती है तथा परिणाम स्वरूप जो दिन-रात शुभ और अशुभ भाव बनते है और वैसे ही कार्य होते है, वे भाव, भाव कर्म है तथा वे कार्य, द्रव्य कर्म है। इन कर्मों की उत्पत्तियाँ ही पुण्यास्रव अथवा पापास्रव हैं।

26. छूने की लालसा, खानेकी लालसा सूघने की लालसा, देखने की लालसा, और सुनने की लालसा, पश्चात लोलुपना और मन, वचन, काय के योग से भोगाभोग की उपलब्धिया, फिर मूर्च्छा, ये दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्मों की उत्पत्तिया है।

27. उपरोक्त अभ्यास के अनुसार कर्म बध के, मुख्य कारण एक तत्व "आस्रव" और एक कर्म "मोहनीय" है।

28 यदि आवश्यक अथवा सुखमय परिस्थिति तक ही, उपलब्धियो पर मोह रहे तो, अथवा रखा जाय तो, पापकर्मो की उत्पत्तियाँ बहुत कुछ कम हो जाय और पुण्य कर्मो का सचय होने लगे।

29 कर्मो (पुण्य कर्म अथवा पाप कर्म) के अभाव का नाम मोक्ष है। मोक्ष Complete separation of all karmas from the soul

जीवात्मा के जन्म-मरण की परिपाटी से छूटने का नाम मोक्ष हैं।

51 मोहनीय कर्म एक घन घाति कर्म है। तृष्णा, तृष्णा, लोलुपना और मूर्च्छा ये इसकी उत्पत्तिया हैं। यह कर्म निर्मल मन और इन्द्रिय जनित है।

52 पाप और पुण्य की गिनती पदार्थों के साथ की गयी है। सात तत्वों, (जीव, अर्जीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष) में पाप और पुण्य मिलाकर नौ पदार्थों की व्यवस्था है।

53 पाप अथवा पुण्य
पापास्रव अथवा पुण्यास्रव
कुशील कर्म अथवा सुशील कर्म
लोहे की बेडी अथवा सोने की बेड़ी

54 कर्मोंके अभाव का नाम मोक्ष है।

55 जीव के साथ प्रत्येक क्षण आठों कर्म लगे हुए है। निश्चयनयमें जीव सिद्ध स्वभावी है। कर्मों से बंधा हुआ नहीं है, किन्तु कर्मोंसे आच्छादित है। सर्वगुणोंसे सम्पन्न और सर्व दोषों से रहित है।

56 जीव को दर्शन - ज्ञान - प्रधान, वीतराग चारित्र से मोक्ष प्राप्त होता है।

57 जीव पदार्थ है, जीव अस्तिकाय है, जीव द्रव्य है और जीव तत्व है। इन चारो में जीव की गिनती है। यथास्थिति जीव का स्वस्वरूपमें चरण करना चारित्र है।

58 द्रव्य अथवा पदार्थ के रूप में जीव शुभ या अशुभ या शुद्ध भावरूप परिणमन करता है, तब वैसे ही कर्म उपार्जित होते हैं।

59. भाव ध्यान की क्रिया है। ध्यान मनकी क्रिया है। मन पर चारित्र का यथार्थ अंकुश, जीव को शुद्ध भावरूप परिणमन करने मे सहायक होता है।

60. चारित्र या चारित्रगठन। बाह्य और अंतरंग। परिणामों की विशुद्धि। आत्मपरिणामों की वृत्ति बनाये रखना–सामायिक। सर्वकाल समता भाव।

61. चारित्र-गठन के लिए अभ्यास की आवश्यक्ता हैं। अभ्यास किसी भी अवस्था में किया जा सकता हैं। गृहस्थ अवस्था या मुनि–अवस्था। सागार–अवस्था या अनागार–अवस्था।

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

द्वितीय प्रकरण 2ND CHAPTER

जैन धर्म

१ प्रास्ताविक

१ जैनधर्म निवृत्तिप्रधान धर्म है । इसमे मुक्ति और उसके कारणोकी मीमासा साङ्गोपाङ्ग और सूक्ष्मताके साथ की गई है । इसका यह अर्थ नही कि इसमे प्रवृत्तिके लिए यत्किञ्चित् भी स्थान नही है। वस्तुत प्रवृति कथञ्चित् निवृत्तिकी पूरक है । अशुभ और शुभसे निवृति होकर जीवकी शुद्ध आत्मस्वरूपमे प्रवृति हो यह इसका अन्तिम लक्ष्य है । (यहां शुभसे अभिप्राय शुभ रागसे है । राग भी बन्धका कारण है, इसलिए वह भी हेय है ।)

२ इसका अपना दर्शन है जो आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार करता है । आचार्य कुन्दकुन्द समयसारमे परसे भिन्न आत्माकी पृथक् सत्ताका मनोरम चित्र उपस्थित करते हुए कहते है—अहो आत्मान् ! ज्ञान-दर्शन स्वरूप तू अपनेको स्वतन्त्र और एकाकी अनुभव कर । विश्वमे तेरे दायें-बायें, आगे-पीछे और ऊपर-नीचे पुद्गलकी जो अनन्त राशि

दिखलाई देती ँ, उसमे अणुमात्र ी तेरा नही हैं । वह जड है और तू चेतन हैं । वह विनाशिक है और तू अविनाशिक पदका अधिकारी । उसके साथ सम्वन्ध स्थापित कर तूने खोया ही है, कुछ पाया नही । समार खोनेका मार्ग ह । प्राप्त करनेका मार्ग इससे भिन्न है ।

३ जैनधर्म एकमात्र उसी मार्गका निर्देश करता है, जो आत्माके निज स्वरूपकी प्राप्तिमे सहायक होता है । यद्यपि कही कही स्वर्गादिरूप अभ्युदयकी प्राप्ति धर्मका फल कहा गया है, किन्तु इसे औपचारिक ही समझना चाहिए । धर्मका साक्षात फल आत्मविशुद्धि है । इसकी परमोच्च अवस्थाका नाम ही मोक्ष है । यह न तो शून्यरूप है और न इसमे आत्माका अभाव ही होता है । ससारमे सकल्प-विकल्प और सयोगजन्य जो अनेक बाधाएँ उपस्थित होती है, मुक्तात्मामे उनका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिए जैनधर्ममे मुक्ति-प्राप्तिका उद्योग सबके लिए हितकारी माना गया है । दूसरे शब्दोमे यह बात यो कही जा सकती है कि जैनधर्म प्रत्येक आत्माकी स्वतन्त्र सत्ताको स्वीकार करके व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके आधारपर उसके बन्धनसे मुक्त होनेके मार्गका निर्देश करता है ।

२. मङ्गलमन्त्र णमोकार

णमोकार मन्त्रका अर्थ –

णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण,
णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण,
णमो लोए, सव्व-साहूण ।

१ "णमो अरिहताण " इस पदमे अरिहन्तोको नमस्कार किया गया है। जीव ो प्रकारके हैं (१) सारी और (२) मुक्त । प्रत्येक जीव सिद्ध स्वभावी है । ससारी जीव कर्मोसे आच्छादित है । मोह ससारमे भ्रमण का मुख्य कारण है । मोह पर विजय पाना मुक्ति प्राप्त करने के

सदृश है। निश्चय, मोह अरिरूप है। मोह का नष्ट कर्ता जीव ही "अरिहत" है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय, ये चारो घातिया कर्म है। मोहनीय कर्म के नष्ट किये विना, केवल ज्ञान प्राप्त होता नहीं। केवल ज्ञान का धारक ही अरिहन्त है।

प्रत्येक अरिहन्त भगवान मे (१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्तसुख और (४) अनन्तवीर्य होता है। और

राग, द्वेष और मोह को नष्ट करने से ये "त्रिपुरारी" कहलाते है। नेत्रद्वय और केवलज्ञानरूपी नेत्रोसे समस्त ससार के पदार्थों को देखने के कारण ये "त्रिनेत्र" कहलाते है। काम-विकार को जीतने के कारण ये "कामारि" कहलाते हैं।

२ "णमो सिद्धाण" इस पदमे सिद्धोको नमस्कार किया गया है।

सिद्ध जो पूर्ण रूप से अपने स्वरूप मे स्थित है, कृतकृत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है और जिन्होंने (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) अन्तराय, (४) मोहनीय, (५) वेदनीय, (६) गोत्र, (७) नाम और (८) आयु, कर्मो को नष्ट कर दिये हैं।

सिद्ध भगवान निकल परमात्मा जो (१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्तदर्शन, (३) अनन्तवीर्य, (४) सम्यक्त्व, (५) अव्यावाधत्व, (६) अगुरूलघुत्व, (७) सूक्ष्मत्व और (८) अवगाहनत्व रूप सिद्ध परमेष्ठी, लोकके अतमे विराजित हैं।

३ "णमो आइरियाण" इस पदमे आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है। आचार्य परमेष्ठी जो (१) दर्शन, (२) ज्ञान, (३) चारित्र,

(४) तप और (५) वीर्य , इन पाँच आचारोका स्वय आचरण करते है और दूसरे साधुओसे आचरण कराते है, उन्हे आचार्य कहते है। जो चौदह विद्या स्थानो के पारगत हो, ग्यारह अगके धारी हो अथवा आचारागमात्र के धारी हो अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमयमे पारगत हो, मेरूके समान निश्चल हो, पृथ्वीके समान सहनशील हो जिन्होंने, समुद्र के समान मल अर्थात दोषो को वाहर फेक दिये हो और जो सात प्रकारके भयसे रहित हो ।

आचार्य परमेष्ठीके ३६ मूल गुण होते हैं – १२ तप, १० धर्म, ५ आचार ६ आवश्यक, और ३ गुप्ति । इन ३६ मूल गणो का आचार्य परमेष्ठी सावधानी पूर्वक पालन करते हैं ।

जो मुनि सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी अधिकता के कारण प्रधानपदको प्राप्त कर सघ के नायक वनते है तथा मुख्य रूपसे तो निर्विकल्पस्वरूपा चरण चारित्रमे ही मग्न रहते हैं, किन्तु कभी-कभी धर्मपिपासु जीवोको रागाश का उदय होने के कारण करूणाबुद्धि से उपदेश भी देते हैं। दीक्षा लेनेवालो को ीक्षा भी देते हं तथा अपने दोप निवेदन करनेवालोको प्रायश्चित देकर शुद्ध करते हं ।

परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभवसे जिनकी वुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोप रीति से छह आवश्यकोका पालन करते हं, जो मेरू पर्वत के समान निप्कम्प हैं, शूरवीर हैं, सिह के समान निर्भीक है, श्रेप्ठ है, देश, कुल और जातिसे शुद्ध है सौम्य मूर्ति है, अतरग और वहिरग परिग्रहसे रहित है, आकाश के समान निर्लेप है, परमागम अर्थ के पूर्णज्ञाता और अपने मूल गुणोमे निष्ठ रहते है ।

४ "णमो उवज्झायाण" इस पदमे उपाध्याय परमेप्ठी को नमस्कार किया गया है ।

चौदह विद्यास्थान के व्याख्यान करने वाले, अथवा तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते है। ये सग्रह, अनुग्रह आदि गुणोको छोडकर पूर्वोक्त आचार्य परमेष्ठी के सभी गुणो से युक्त होते है।

उपाध्याय परमेष्ठी के पास अन्य मुनिगण अध्ययन करते है, अथवा जिनके निकट द्वादशाग के सूत्र और अर्थो का मुनि-गण अध्ययन करते है।

उपाध्याय परमेष्ठी सूत्रोके क्रमानुसार जिनागमका स्मरण करते है, जो मुनि परमागम का अभ्यास करके मोक्ष मार्ग मे स्थित है तथा मोक्ष के उत्सुक मुनियो को उपदेश देते है।

उपाध्याय परमेष्ठी ही जैनागम के ज्ञाता होने के कारण मुनिसघ मे पठन-पाठन के अधिकारी होते है। शास्त्रोके समस्त शद्बार्थ को जान कर आत्मध्यानमे लीन रहते है। मुनियोके अतिरिक्त श्रावकोको भी अध्ययन कराते है। उपाध्याय परमेष्ठी जैनागम के अपूर्व ज्ञाता होते है ग्यारह अग और चौदह पूर्व के पाठी ज्ञान ध्यान मे लीन, परम निर्ग्रंथ श्री उपाध्याय परमेष्ठी है।

५ "णमो लोए सव्वसाहूण" इस पदमे ढाई द्वीपवर्ती सभी साधु परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है।

जो अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की, साधना करते है, तीन गुप्तियोसे सुरक्षित है, अठारह हजार शीलके भेदो को धारण करते है और चौरासी लाख उत्तर गु ो का पालन करते है।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके द्वारा मोक्ष मार्ग की साधना करते है तथा सभी प्राणियो मे समान बुद्धि रखते है, वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदोसे युक्त साधु है।

ढाई द्वीप के, पैंतालीस लाख योजन के विस्तारवाले मनुष्य लोक मे रत्न- त्रयधारी पञ्चमहाव्रनोसे युक्त, दिगम्बर, वीतरागी साधु, सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, उन्मत्त बैल के समान भद्र प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, गौचरी वृत्ति करने वाले, पवनके समान निस्सग या सर्वत्र विना रूकावट के विचरण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वोंके प्रकाशक समुद्रके समान गभीर, सुमेरू के समान परीषह और उपसर्गोंके आनेपर अकम्प और अडोल रहने वाले, चन्द्रमा के समान शान्तिदायक, मणि के समान प्रभा पुज युक्त, पृथ्वी के समान सभी प्रकार की वाधाओ को सहनेवाले, आकाश के समान निरालम्बी या निर्भीक एव सर्वदा मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु परमेष्ठी होते हैं ।

जो विरक्त होकर समस्त परिग्रह को त्याग शुद्धोपयोगरूप मुनि धर्म को स्वीकार करते है तथा शुद्धोपयोगके द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव करते है, परपदार्थोमे ममत्वबुद्धि नही करते तथा ज्ञानादिस्वभाव को अपना मानते है, वे साधु परमेष्ठी है ।

ज्ञान का स्वभाव जाननेवाला होनेसे अपने क्षयोपशम द्वारा प्राभृत पदार्थोंको जानते है, पर उनसे राग-वुद्धि नही करते । इनके मूल गुण २८ है। इनके अन्तरग मे अहिसा भावना सदा वर्तमान रहती है तथा वहिरगमे सौम्य दिगम्बर मुद्रा । ये ज्ञान-ध्यान और स्वाध्याय मे सर्वदा लीन रहते है । वाईस परीपहोको निश्चल हो सहन करते है । शरीरकी स्थिति के लिए आवश्यक आहार-विहारकी क्रियाएँ सावधानी पूर्वक करते है । ऐसे साधु परमेष्ठी होते हैं ।

शरीरमे रोग, वुढापा आदिके होनेपर तथा वाह्य निमित्तोका सयोग होने पर सुख-दु ख नही करते । अपने योग्य समस्त क्रियाओ को करते हैं, पर राग-भाव नही करते। यद्यपि इनका प्रयास सर्वदा शुद्धोपयोगको

प्राप्त करने ता ही रहता है, पर कदाचित प्रवल रागाश का उदय आनेसे शुभोपयोगकी ओर भी प्र त्ति करनी पडती है, ऐसे होते है श्री साधु परमेष्ठी ।

३ साधक और साधना

१ णमोकार मन्त्र मे प्रतिपादित आत्माओ की शरण जाने से तात्पर्य उन्ही के समान शुद्ध स्वरूप की प्राप्तिमे है ।

२ साधक किसी आलम्वनको पाकर ऊँचा चढ जाना चाहे, साधना की उन्नत अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहे—तो पच परमेष्ठी का अवलम्वन मात्र ही अति विशाल परमात्म रूप है । इनके निकट पहुँच कर साधक उसी प्रकार ुद्ध हो जाता , जिस प्रकार पारसमणिका सयोग पाकर लोह स्वर्ण वन जाता है ।

३ लोह को स्वर्ण वनने के लिए कुछ विशेष प्रयास की जरूरत नही होती मात्र पारसमणिका सान्निध्य प्राप्त कर लेनाही आवश्यक है, उसके लोह-परमाणु, स्वर्णपरमाणुओमे उसी समय परिवर्तित हो जाते है ।

४ अरिहत परमेष्ठी, निर्धूम, तैल और वर्ति विना, स्व-पर प्रकाशक अनुपम ध्रोव्य दीप है, लोक और अलोक मे सदैव प्रकाशित है । अनन्त चतुष्टय के धनी है । ज्ञाता और ष्टा है ।

(निर्धूम(द्वेष), तैल(राग) और वर्ति(काम))

५ तत्वदृष्टिसे सभी जीव समान है । राग आदि विकारोकी अधिकता और ज्ञानकी हीनतासे अतर है, ससारी है ।

६ ससारी जीवको, मुक्त जीव वनने के लिए-तत्तुल्य वनने के लिए मात्र सान्निध्य की आवश्यकता है ।

७ मगल वाक्य प्रत्येक आत्मा को प्रगति प्रदान करते है। प्रत्येक आत्माको अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर प्रेरित करते है।

८ णमोकार-मत्र अन्तरात्माओंके साधन मार्ग मे, मार्ग का परिज्ञान कराता है। साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त और सिद्ध रूप गन्तव्य स्थानपर पहुचने के लिए मार्ग परिज्ञायक है।

४ पञ्च परमेष्ठी के क्रम के विषय मे

१ परमेष्ठियो को रत्नत्रय गुण की पूर्णता और अपूर्णता के कारण ो भागो मे विभक्त किया है। प्रथम विभागमे अरिहन्त और सिद्ध है, द्वितीय विभागमे आचार्य, उपाध्याय और साधु है। प्रथम विभाग के परमेष्ठियो मे रत्नत्रय गुण की अपूर्णता वाले परमेष्ठी को पहले और रत्नत्रय गुणकी पूर्णता वाले परमेष्ठी को पश्चात रखा गया है। इस क्रमानुसार अरिहत को पहले और सिद्ध को वाद मे पठित किया है।

२ दूसरे विभाग के परमेष्ठियो मे भी यही क्रम है। आचार्य और उपाध्याय की अपेक्षा मुनि का स्थान ऊँचा है, क्योकि गुणस्थान का आरोहण मुनि पदसे ही होता है, आचार्य और उपाध्याय पदसे नही और यही कारण है कि अन्तिम समय मे आचार्य और उपाध्यायो को अपना-अपना पद छोडकर मुनि-पद धारण करना पडता है। मुक्ति भी मुनि-पदसे ही होती है तथा रत्नत्रय की पूर्णता इसी पदमे सम्भव है। अत दोनो विभागो मे उन्नत आत्माओ को पश्चात पठित किया गया ै।

३ इस प्रकार विभाजन उपकारी परमेष्ठीको पहले रखने का है।

(१) प्रथम विभाग मे उपकारी परमेष्ठी अरिहत देव है।

(२) दूसरे विभाग मे उपकारी परमेष्ठी क्रमानुसार (१) आचार्य, (२) उपाध्याय और (३) साधु है।

(३) आत्म कल्याण की दृष्टि से साधु-पद उन्नत है, पर लोकोपकारकी दृष्टिमे आचार्यपद श्रेष्ठ है ।

(४) आचार्य श्री मुनिसघके व्यवस्थापक होते है । अपने समय के चतुर्विध सघ के रक्षण के साथ धर्म-प्रसार और धर्म-प्रचार का कार्य करते है । चतुर्विध सघ की सारी व्यवस्था आचार्यश्री की रहती है और वे सर्वसाधारण को अपने उपदेश से धर्म मार्गमे लगाते है ।

(५) उपाध्याय श्री उन जिज्ञासुओंको अध्ययन कराते है, जिनके हृदयमे ज्ञानपिपासा है । उनका सम्बन्ध सर्वसाधारण से नही बल्कि सीमित अध्ययनार्थियोंसे है । आचार्य श्री से कम उपकारक उपाध्यायश्री हैं ।

(६) यों कहा जाय कि आचार्यश्री परम नेता हैं, जो अगणित प्राणियों को अपना मोहक उपदेश देकर उन्हें हितकी ओर ले जाते हैं और उपाध्यायश्री परम पाठक हैं, जो मुमुक्षओ को गम्भीर तत्व समझाते हैं ।

(७) मुनिश्री आत्म कल्याण अर्थी साधुपद धारी पञ्चपरमेष्ठी मे के, अन्तके परमेष्ठी है। ये अन्तरग (काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) परिग्रह तथा वहिरग (धन, धान्य, वस्त्र आदि सभी प्रकार के) परिग्रह से रहित होकर आत्मचिन्तनमे लीन रहते है । ये सर्वदा लोकोपकारसे पृथक रहकर आत्मसाधनामे रत रहते है। जो भी इन की सौम्य मुद्रा तथा इनके अहिंसक आचारण का प्रभाव तो समाज पर अमिट पडता है, पर ये आचार्य या उपाध्याय के समान लोक-कल्याण मे सलग्न नही रहते है । ये सव्वसाधु परमेष्ठी है ।

५. आर्यिका और मुनिके विषय मे .

१ आत्मकल्याण अर्थी आर्यिका भी अन्तरग और वहिरग परिग्रह रहित होकर आत्मचिन्तनमे लीन रहती हैं ।

२ आवरण और परिग्रहका त्याग कर देनेसे, मुनि नग्न रहते हैं किन्तु शारीरिक परिस्थिति विशेषको लेकर आर्यिका स्वेत वस्त्र धारण करती है ।

६ देव, शास्त्र और गुरु के विषय मे

१ सर्व प्रथम लोकोपकारी सातिशय अरिहत परमेष्ठी । द्वितीय अरिहत परमेष्ठी द्वारा ओकार ध्वनि रूप द्वादशाग वाणी और तृतीय आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु समूह ।

२ उपरोक्त तीनों (१) देव, (२) शास्त्र और (३) गुरु के रूपमे हमारे आराध्य हैं ।

७. पूजा (पूजन) के विषयमे :

१ देव-पूजा छह प्रकारकी हैं ।

(१) प्रस्तावना –

जिनेद्र देवका गुणानुवाद करते हुए अभिषेक विधि करने की प्रस्तावना करना, प्रस्तावना है ।

(२) पुरा कर्म –

पीठ के चारो कोणोपर जल से भरे हुए चार कलशोकी स्थापना करना पुराकर्म है ।

(३) स्थापना –

पीठपर यथाविधि जिनेन्द्र देवको स्थापित करना स्थापना कर्म है ।

(४) सनिधापन –

ये जिनेन्द्रदेव हैं, यह पीठ मेरू पर्वत है, जलपूर्ण ये कलश क्षीरोदधिके जलके हे, अभिषेक के लिए उद्यत हुआ मैं इन्द्र हूँ, ऐसी भावना करना सनिधापन है ।

(५) पूजा –

अभिषेक पूर्वक पूजा करना पूजा है, और

(६) पूजा फल –

सर्व के कल्याण की भावना करना पूजा फल है ।

: कृतिकर्म देवपूजा '

कृति कर्म के चार पर्यायवाची नाम है (१) कृति-कर्म, (२) चिति-कर्म, (३) पूजा-कर्म और (४) विनय-कर्म ।

(१) जिन अक्षरोच्चाररूप वाचनिक क्रिया के, परिणामो की विशुद्धिरूप मानसिक क्रिया के और नमस्कारादिरूप कायिक क्रियाके करनेसे, ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोका छेद होता है, वह कृति कर्म है ।

(२) यह पुण्यसचय का कारण है, इसलिए यह चितिकर्म है ।

(३) इसमे चौबीस तीर्थंकरो और पाँच परमेष्ठी आदिकी पूजा की जाती है, इसलिए यह पूजाकर्म है, और

(४) इसके द्वारा उत्कृष्ट विनय प्रकाशित होता है, इसलिए यह विनय कर्म है। पूजन के पाँचो उपचार

(१) आह्वानन, (२) स्थापन, (३) सन्निधिकरण, (४) पूजन और (५) विसर्जन ।

(१) अत्र अवतर अवतर
सवौषट् (आह्वाननम्)

(२) अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठ (स्थापनम्)

(३) अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट (सन्निधिकरणम्)

(४) पूजन अष्ट द्रव्य द्वारा –

(१) जल, (२) चन्दन, (३) अक्षत, (४) पुष्प, (५) नैवेद्य, (६) दीप, (७) धूप और (८) फल ।
विशेष सर्व द्रव्य मिश्रण अर्घ ।

(५) स्वस्थानम् गच्छ गच्छ ज ज ज (विसर्जनम्)

९ विनय

(१) लोकानुवृत्ति विनय, (२) अर्थ विनय, (३) कामविनय, (४) भयविनय और (५) मोक्ष विनय ।

रोहानुवृत्तिविनय दो प्रकारकी है । एक वह जिसमे यथाअवसर नयका उचित आदर-सत्कार किया जाता है और दूसरी वह जो देवपूजा आदिके समय की जाती है । देवपूजा अपने विभवके अनुसार करनी चाहिए। पूजन के समय जिस सामग्रीका उपयोग किया जाय वह प्रासुक और निर्दोष हो ।

।७ वन्दना

अति शुद्ध होकर वन्दनाके लिए जाते समय जिनालयके दृष्टिपथमे आने पर "दृष्टं जिनेन्द्र भवन भवनापहारि" पाठ पढें । जिनालय मे प्रवेश होते ही, भगवान् जिनेन्द्रदेवके दर्शन से पुलकित वदन और आत्मविभोर हो उनके सामने हाथ जोडकर खडे हो णमोकार मन्त्र का उच्चारण करे, फिर तीन प्रदक्षिणा देकर अष्टाग (साष्टाग) नमस्कार करे । श्राविकाएँ (स्त्रियाँ) गौ-आसनसे बैठकर नमस्कार करे ।

अष्टाग (साष्टाग) मन, वचन और काय द्वारा नमस्कार ।

(१) शिर, (२) हाथ, (३) पैर, (४) आँख, (५) जांघ, (६) हृदय, (७) मन और (८) वचन ।

卐

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

तृतीय प्रकरण 3RD CHAPTER

कुछ जानकारी

१ जीवकी स्थिति .

(१) जीवकी मुख्य दो स्थितिया है, "निगोद" और "सिद्ध"। बीचकी त्रस पर्यायका काल तो बहुत ही थोडा और उसमे भी मनुष्यत्व का काल तो अत्यन्त स्वल्पातिस्वल्प है।

(२) जीवको त्रसमे एक ही साथ रहने का उत्कृष्ट काल मात्र दो हजार सागर है। जीव को अधिकाश एकेन्द्रिय पर्याय और उसमे भी अधिक समय निगोदमे ही रहना होता है। वहा से निकलकर त्रस शरीर को प्राप्त करना "काकतालीयन्यायवत्" होता है। त्रसमे भी मनुष्यभव पाना तो क्वचित् ही होता है।

(३) जीवको नारकीके भवोंमे रहनेका काल उससे (मनुष्यसे) असख्यात गुणा है। देवके भवोंमे रहनेका काल उससे (नारकीसे) असख्यात गुणा है। तिर्यन्चके भवोमे रहनेका काल उससे (देवसे) असख्यात गुणा है।

(४) जीव ६ महिने और ८ समयमे, निगोदमे से ६०८ निकलते हैं । वे एकेन्द्रिय आदि पर्यायोमे और चारो गतियोके शरीरोमे भ्रमण करते हैं। जीवने यदि मनुष्य गतिमे **सम्यक्त्व** प्राप्त नही किया तो पुन उसे निगोद प्राप्त होना हैं इसलिये,

(५) जीवको इस मनुष्य भवमे ही, आत्माका सच्चा स्वरूप समझ कर सम्यक्त्व प्राप्त करना हैं ।

(६) जीव मुख्यतया नरक गति, तिर्यन्च गति, मनुष्य गति या देव गति मे भ्रमण करता है । **सयम** केवल मनुष्य गतिमे ही होता है । जीवको मनुष्यभव सफल करके सिद्धत्व प्राप्त करनेके लिए निरतर शुद्ध **भावनाओमे** रत रहना हैं ।

२ धरति इति धर्मं

अ (१) ससारमे चारो गतियोंके भयकर परिभ्रमणरूप अनत दु खके अपार समुद्रमे पडे हुए जीवो का उद्धार कर, ससारमे सर्वोत्तम इन्द्र, नरेन्द्र, चक्रवर्ती आदिके सुख की प्राप्ति करा, अनत आत्मिक सुखमय शाश्वत मोक्षपद पर प्रतिष्ठित करे, वह धर्म ।

(२) धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शन नही हो तो ज्ञान कितना भी हो, शास्त्राभ्यास कितना भी हो, वाक्चातुर्य कितना भी हो, चारित्र कितना भी हो, मोक्षार्थ सर्व विफल है ।

(३) जिस प्रकार पाया विनाका प्रासाद (महल) टिकता नही, मूल (जड) विनाका वृक्ष नवपल्लवित होता नही, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन विना धर्म धर्मरूप परिणमन होता नही, मोक्षका कारण बनता नही ।

(४) सम्यग्दर्शन रूप धर्म जिनमे प्रकट हुआ है वे धर्ममूर्ति ज्ञानी पुरुष कर्मोका क्षय कर परमात्मा होते है । वे ही अन्यो को धर्म प्रकटवानेमे प्रबल अवलम्बनरूप हैं ।

(५) "तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन" जीव, अजीव आदि सात तत्वोमे, स्व चैतन्य स्वरूप आत्मतत्वका साक्षात्कार (पूर्ण बोध) सम्यग्दर्शन है।

(६) समकित, सम्यक्त्व, आत्मदर्शन, आत्मअनुभवआदि सम्यग्दर्शन के पर्यायवाची अथवा एकार्थवाची अनेको शब्द है।

(७) सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्व, नव पदार्थ आदिका अध्ययन और ग्यारह प्रतिमाओका अगीकार। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रम्हचर्य, इन दश लक्षण व्रतो का पालन तथा सम्यग्दर्शनके आठो अगोका भी व्रत वत पालन। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओके अनुरूप व्रत वत आचरण तथा अनुप्रेक्षाओ का निरतर अभ्यास।

ब(१) पूजा, भक्ति, व्रत आदि करना पुण्य है तथा मोह और क्षोभ रहित आत्मा के परिणाम धर्म है।

(२) पूजा, भक्ति वदना, वैयावृत्य, व्रतपालन आदि शुभ क्रियाओसे शुभ परिणाम होते है, इससे पुण्य प्राप्त होता है, इसका फल स्वर्गादि भोगकी प्राप्ति होती है।

(३) मोह याने परद्रव्य, शरीरादिकमे अपनत्व समझना यह मिथ्यात्व या दर्शनमोह है, इससे राग द्वेपरूप कपाय परिणाम वे चारित्रमोह है।

(४) वास्ते, आत्मामे क्षोभ, अस्थिरता, आत्माके ज्ञानदर्शनरूप स्वभावमे अस्थिरता वह टले और आत्मरमणतामय स्वभावमे निमग्नता होवे तब वह धर्म है। वहा कर्मवध नही होते परतु अवध दशा है। इस धर्मसे आश्रव रुकते है और सवर होता है। पूर्व कर्मोकी निर्जरा होती है और सपूर्ण निर्जरा पर मोक्ष होता है।

(५) इसलिये मोक्षार्थियोको, केवल शुभ परिणामोसे धर्म होता है, ऐसा नही समझना, इतनेसे ही सतोपित नही रहना। परतु आत्मदर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप, स्वभावदशामय जो आत्मधर्म है, उसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना योग्य है।

(६) जो जीव पुण्यको धर्म समझ, श्रद्धा करते है, रुचि करते है, प्रतीति करते है तथा आचरते है, उनको पुण्य स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति करानेका निमित्त है परतु सर्व कर्म के क्षय रूप मोक्षका कारण होता नही ।

(७) रागादि समस्त दोषोको तजकर आत्मा, आत्मामे ही रत रहे, वही ससारसे पार होनेके लिए प्रवल कारणरूप धर्म है ।

(८) जो आत्माको इष्ट न करे, उसकी (आत्माकी) रुचि, इच्छा, भावना न करे उसकी (आत्माकी) प्राप्तिके ध्येयसे शुद्ध भावकी प्राप्तिके लिए पुरुषार्थ न करे, लेकिन वाकी पुण्य सव ही करे तो सिद्धि याने मोक्ष कदापि पाये नही ।

(९) आत्मिक धर्म धारे विना सर्व प्रकारकी क्रियाएं जप, तप, शास्त्राभ्यास, यम, नियम सयम आदि पुण्यके आचरण करे तो वे ससारमे भी भ्रमते रहेंगे, मोक्ष पायेंगे नही । पुण्य से कदाचित स्वर्गादिक भोग मिले किन्तु आसक्ता के कारण और सयमके अभावमे कदाचित एकेन्द्रियादि पर्यायमे आना पडे और फिर अनत भव और पर्यायोमे भ्रमा करे ।

(१०) इस लिए मन, वचन और कायसे सर्व प्रकारसे उद्यम करके आत्माको उस सहजात्मस्वरूपको जानकर दृढ श्रद्धा प्रतीति रुचि धारण कर उसीमे स्थिरता कर तल्लीन हो कि जिससे मोक्ष पाकर कृतार्थ होवें ।

३ ग्यारह प्रतिमा

सयमाचरण चारित्र दो प्रकारके हैं । सागार और निरागार । सागार श्रावक का और निरागार मुनिका । सयम, साधनार्थ, श्रावक के लिए ग्यारह माप दड है, जिन्हे प्रतिमा कहते हैं ।

(१) पहली "दर्शन" प्रतिमा

शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित आठ मूल गुणो को धारण करना ।

(२) दूसरी "व्रत" प्रतिमा .

अतिचार रहित ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत पालना ।

(३) तीसरी "सामायिक" प्रतिमा

तीनों काल विधिपूर्वक अतिचार रहित सामायिक करना ।

(४) चौथी "प्रोषध" प्रतिमा

अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों के दिन कषाय [illegible] अनशनादि करना

(५) पाचवीं "सचित त्याग" प्रतिमा

कच्चे फल, फूल, वनस्पति आदि खानेका त्याग करना

(६) छठी "रात्रि भोजन त्याग" प्रतिमा

रात्रिमें सर्व प्रकारके आहार का त्याग करना ।

(७) सातवीं "ब्रह्मचर्य" प्रतिमा

मन, वचन, कायसे स्त्रीमात्र का त्याग करना ।

(८) आठवीं "आरंभ त्याग" प्रतिमा

खेती, व्यापार आदि आरंभ क्रियाओं का त्याग करना ।

(९) नवमी "परिग्रह त्याग" प्रतिमा

धन, धान्यादि परिग्रहसे विरक्त होना ।

(१०) दसवीं "अनुमति त्याग" प्रतिमा

लौकिक कार्यों में अनुमति [illegible]

(११) ग्यारहवीं "उद्दिष्ट भोजन त्याग" प्रतिमा

भिक्षावृत्ति से आहार [illegible]

४ दशलक्षण धर्म :

इसकी निवृति के लिए (१) क्षमा (२) मार्दव (३) आर्जव (४) शौच आदि दशलक्षण रूप धर्मका निरूपण है ।

(ब)

१.	उत्तम क्षमा	कोप, क्रोध आदि से रहित ।	क्षमा ।
२.	उत्तम मार्दव	मान आदि से रहित ।	मार्दव ।
३	उत्तम आर्जव	माया, कपट कुटिलता आदि से रहित ।	आर्जव ।
४	उत्तम शौच	लोभ आदि से रहित ।	शौच ।
५	उत्तम सत्य	असत्य से रहित ।	सत्य ।
६.	उत्तम सयम	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाच इद्रियो की क्रियाओ को सीमित रखना ।	सयम ।
७	उत्तम तप	कामेन्द्रियो का दमन ।	तप ।
८	उत्तम त्याग	चार प्रकार का दान ।	त्याग ।
९.	उत्तम आकिंचन	किंचित मात्रका परिग्रह का नही होना।	आकिंचन ।
१०	उत्तम ब्रह्मचर्य	स्त्री मात्र से किसी भी प्रकारका ममत्वका नही होना ।	ब्रह्मचर्य ।

५ **रत्नत्रय** .

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र ये तीनो मिलकर मोक्ष के मार्ग है । जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातो तत्वो को भलीभाति जानना सम्यग्दर्शन है ।

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल ये पाच ज्ञान हैं ।

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसापराय और यथाख्यात ये चारित्र के पाच भेद है ।

(१) सम्यग्दर्शन के आठ अग है ।

(१) नि शकित,
(२) नि काक्षित,
(३) निर्विचिकित्सक,
(४) अमूढदृष्टि,
(५) उपगूहन,
(६) सुस्थितिकरण,
(७) वात्सल्य, और
(८) प्रभावना ।

(२) सम्यग्ज्ञान के आठ अग है ।

(१) व्यजनाचार सम्पन्न,
(२) अर्थाचार सम्पन्न,
(३) उभयाचार सम्पन्न,
(४) कालाचार सम्पन्न,
(५) उपधानाचार सम्पन्न,
(६) विनयाचार सम्पन्न,
(७) अनिह्नवाचार सम्पन्न, और
(८) बहुमानाचार सम्पन्न ।

(३) सम्यक्चारित्र के तेरह भेद है ।

(१) अहिंसा महाव्रत,
(२) सत्य महाव्रत,
(३) अचौर्य महाव्रत,
(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत,
(५) अपरिग्रह महाव्रत,

(६) मनो गुप्ति,
(७) वचन गुप्ति,
(८) काय गुप्ति,
(९) ईर्या समिति,
(१०) भाषा समिति,
(११) एषणा समिति,
(१२) आदान निक्षेपण समिति,
(१३) व्युत्सर्ग समिति,

(४) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र उपरोक्त २९ अगों द्वारा भलीभांति समझने जैसे होते हैं और इनका आचरण निश्चित रूपसे मोक्षका मार्ग है।

(५) जो जानता है, वह ज्ञान है। आत्मा जानती है, वास्ते आत्मा ही ज्ञान है। जो देखता है, वह दर्शन है। आत्मा देखती है, वास्ते आत्मा ही दर्शन है। जो पुण्य पाप को तजता है, जिसकी प्रवृत्ति न पुण्य प्राप्त करनेकी है और न पाप प्राप्त करने की है, वह चारित्र है। आत्मा ही पुण्य पाप को परिहरती है वास्ते आत्मा ही चारित्र है। इस प्रकार अभेदनय से आत्मा और रत्नत्रय का वर्णन है।

(६) जीवादि तत्वों की यथार्थ श्रद्धा तत्वरुचि यह सम्यक्त्व है। तत्वोंका यथार्थ ज्ञान यह सम्यग्ज्ञान है। हिंसादि पाप क्रियाओंका त्याग करना, वह सम्यक्चारित्र है।

(७) आत्मा स्वयं सिद्ध है, कर्म मल रहित, शुद्ध है। सर्व पदार्थको जानने वाली, देखनेवाली और सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। यह आत्मा ही केवलज्ञान है अथवा केवल ज्ञान ही आत्मा है। इस प्रकार अभेदनयसे गुण और गुणी का वर्णन है।

(८) दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों आत्माकी ही पर्याय है, अन्य कोई जुदी वस्तुए नहीं है। आत्मा ही ज्ञाता और दृष्टा है।

दर्शनविशुद्धि याने सम्यग्दर्शन की निर्मलता । आठ अग सहित सम्यग्दर्शन, "दर्शनविशुद्धि" का कारण है ।

(ब) **सम्यग्दर्शन के आठ अग :**

(१) नि शकित अग .

(अ) जिन प्रतिपादित तत्वोमे का का नही होना ।

(ब) स्व आत्मामे नि शक और निर्भयतासे रहना ।

(२) नि काक्षित अग

(अ) कोई भी कार की वाछा का नही होना ।

(ब) अतीन्द्रिय आनदमे मग्न रहना ।

(३) निर्विचिकित्सक अग :

(अ) शरीर जड है, किन्तु मोक्ष साधक है । यदि स्वय को अथवा अन्यको रोगादिसे उत्पन्न शरीरमे असुचि हो जाय तो ग्लानि भावका नही होना ।

(ब) आत्मस्वरूपकी मग्नतामे साम्यभावका अवलबन करना ।

(४) अमूढ़दृष्टि अग ·

(अ) पर पदार्थोमे, मोह का नही रखना ।

(ब) आत्मबोध मे रत रहना ।

(५) उपगूहन अग

(अ) परके द्वारा की हुई निन्दा अथवा स्तुति पर साम्यभाव रखना ।

(ब) आत्मिक स्वभावकी स्थिरतामे लीन रहना परभावको ग्रहण नही

करना ।

(६) स्थितिकरण अग

(अ) धर्म मार्गसे डिगते हुए अपनेको या अन्यको पुन उसी मार्ग पर लगा रखना ।

(ब) आत्मा मे आत्मा द्वारा स्थिर रहना ।

(७) वात्सल्य अग

(अ) सहधर्मियो के प्रति कपट रहित यथायोग्य आदर सत्कार करना ।

(ब) आत्मानदमे भ्रमर के समान आसक्त रहना ।

(८) भावना ग

(अ) धर्मकी महिमाका यथावत गुणगान करना ।

(ब) आत्मिक भावके विकासमे तत्पर रहना ।

(२) विनय सम्पन्न भावना .

(अ) दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तप विनय और उपचार विनय ये पाच विनय है।

(ब) मन, वचन और कर्मकी शुद्धिपूर्वक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप का आदरण विनय सम्पन्नता है ।

(३) शीलव्रतेष्वनतिचार भावना ।

(अ) अहिंसा आदि पाच व्रत और इन व्रतों के पालन के लिए क्रोधादि कषायका निग्रह, तथा अतिचार रहित शीलमे [illegible] की निर्दोषप्रवृत्ति शीलव्रतोकी भावना है ।

(ब) अतिचार रहित शीलका पालन करना शीलव्रत है ।

(४) **अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना ।**

(अ) मनुष्यभव सफल करनेके लिए निरतर ज्ञान अभ्यास करे। शास्त्रो को पढें, चितन करे। विशेष ज्ञानी गुरुजनो द्वारा ज्ञान ग्रहण करे। ज्ञान के अभिलाषियो को उपदेश दे। सब द्रव्योमे एकमेक रहते हु आत्मा का भिन्न अनुभव ही ज्ञा ोपयोग है। ज्ञानके अभ्याससे ही विषयो की वाछा नष्ट होती हैं, कपायोका अभाव होता है, मन स्थिर रहत है धर्म और शुक्लध्यान मे स्थिरता आती है। अज्ञानी ीव घोर तप ारा अनेको भवोमें जितने कर्म नष्ट न ी करते उतने या उनसे भी ज्यादा कर्म ज्ञानी जीव अतर्मुहूर्तमे नष्ट करते हैं। ज्ञा द्वारा ही मोक्षकी प्राप्ति होती है और यही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ।

(ब) समय समय पर पाठ, स्तवन और ध्यान करने, शास्त्र का मनन करने, गुरुका विनय करने और उपदेश देनेका नाम ज्ञानोपयोगता है ।

(५) **संवेग भावना ।**

(अ) ससार देह और भोगो के प्रति विरक्तपना, उदासीनता और राग विहीनता धर्म और धर्म के फल प्रति अनुरागता ये सवेग भाव है।

(ब) पुत्र, मित्र, स्त्री और सासारिक विषयोसे विरक्तिका होना ये सवेग भावना के कारण हैं ।

(६) **शक्ति प्रमाण त्याग भावना : दान संस्थिति ।**

(अ) शरीरादि पर पदार्थमे, आतमबुद्धि ये मिथ्यात्व परिग्रह। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेदरूप परिणाम ये वेद परिग्रह। हास्य, रति, अरति,

शोक, भय, जुगुप्सा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ ये अनरग परिग्रह और धन, धान्य, क्षेत्र, सुवर्ण, आदि इन (मूर्च्छा) के बाह्य परिग्रहों को शक्ति अनुसार त्याग की स्थिति, त्याग धर्म है।

(ब) जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट पात्रो को शक्ति के अनुसार चार प्रकारका दान देना, दान सस्थिति है।

(७) शक्ति के अनुसार तप भावना . तपसस्थिति।

(अ) स्व शक्तिको छुपाये बिना, जिन मार्गके अनुसार, ऐसा तप करे कि स्वर्ग लोककी तिलोत्तमा या रभा हावभाव, विलास, विभ्रम आदि द्वारा विचलित न कर सके। अतरग और वाह्य परिगह की इच्छा का अभाव और इन्द्रियो के विषयो मे प्रवर्तन न हो, वह तप है। इच्छा के निरोध का नाम तप है। छ वाह्य और छ अतरग, ऐसे वारह प्रकार के तप है। निरतर आत्म उज्वलता की भावना, तपका कारण है।

(ब) मोक्ष की इच्छा से शक्ति और भक्ति के अनुसार १२ प्रकार का तपश्चरणका करना, तपसस्थिति है।

(८) साधु समाधि भावना :

(अ) सयमी या धर्मात्माको, कोई कारणसे विघ्न आ जाय तो, विघ्न को दूर कर, व्रतशील की रक्षा करना, साधु समाधि है। जीव द्रव्यसे, जब पुद्गल द्रव्य अलग है – भिन्न है, जीव जब अजर, अमर और सिद्ध स्वभावी है, तो मरनेका डर कैसा। समग्दृष्टि को मरनेका डरका नही होना, साधु समाधि है। रोगजनित पीडा पोदगलिक है। सम्यदृष्टि द्वारा शरीर परसे ममताका छोडना, सयम धारण करना और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप ये चारो आराधनाओ

मे, विशेष दृढ होकर उत्साह सहित मरण करना, साधु समाधि है। इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोगमे ज्ञान की दृढता के द्वारा भयका नही होना, साधु समाधि है। रत्नत्रय पूर्वक सावधानी से देहका (शरीरका) छोडना साधु समाधि है।

(ब) मरण, उपसर्ग, रोग, इष्ट वियोग और अनिष्ट योग आदि अशुभ या शुभ सयोगोमे साम्यभाव का रखना, साधु समाधि है।

(९) वैयावृक्ति भावना :

(अ) रोगोसे पीडित धर्मात्मा, सयमी मुनि आदिकी औषध आदि द्वारा सेवा करना दु ख दूर करनेके उपाय करना, वैयावृत्य है। (धनका खर्च करना सुलभ है किन्तु रोगीकी सेवा करना दुर्लभ है।) निज चैतन्य स्वरूप आत्माको राग, द्वेषादि दोषोमे लिपटने नही देना, आत्माको आत्म बोधमे एकाग्र रखना, धर्ममे लीन रखना, विषयोंके आधीन नही होने देना, आत्माकी वैयावृत्ति है। श्रद्धा से चलायमान और मार्ग से भ्रष्ट जीवोको पुन श्रद्धा और मार्ग पर लाना, उपकार वैयावृत्ति है। जो छ काय जीवकी रक्षा करनेमे सावधान है, वे समस्त प्राणियो की वैयावृत्तिमे है।

(ब) श्रावक, श्रमण, सयमी, मुनि आदिकी रुग्णावस्थाके समय सुश्रुषा का करना, वैयावृत्य है।

(१०) अरिहंतभक्ति भावना :

(अ) अरिहत के गुणोमे अनुराग, अरिहत भक्ति है। अरिहत का निरतर चितवन, स्तवन, गुणगान आदि मोक्षसुख को देनेवाले है।

(ब) मन, वचन, और कायसे, परम इष्ट "अरहंत" का स्मरण करना, अर्हद भक्ति है।

(११) आचार्यभक्ति भावना :

(अ) आचार्य भक्ति ही गुरू भक्ति है। वीतराग गुरूके गुणोमे अनुरागका होना आचार्य भक्ति है। आचार्यश्री के (सद्‌गुरुदेवके) गुणो का स्मरण, स्तवन, वदन, आचार्य भक्ति है।

(ब) मुनियो को आहार, आहारके लिए द्वारापेक्षन आदि क्रियाए, वदना, पूजा, प्रणाम, विनय और नमस्कार आदि आदि आचार्यभक्ति भावना है।

(१२) बहुश्रुतभक्ति भावना :

(अ) जिनके श्रुतज्ञानरूप दिव्यनेत्र है, स्वपर के हितमे जो प्रवर्तते है, स्वपर सिद्धात को विस्तार पूर्वक जो यथार्थ मे जानते है और स्याद्वाद रूप परम विद्याधारक है, उनकी भक्ति, बहुश्रुतभक्ति है। जो शास्त्रो पर अनुराग रखकर अध्ययन करते है, शास्त्रो के अर्थ दूसरोको भी कहते है, जो धन खर्च कर शास्त्र लिखवाते है, स्व शास्त्र लिखते है, काना, मात्रा, आदि दोषो को सुधारते है, व्याख्यान करते है, स्वाध्याय के लिए निराकुल स्थान स्थापित करते है, वह ज्ञानावर्ण कर्म को नाश करनेवाली बहुश्रुतभक्ति है।

(ब) प्रथमानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग शास्त्रो का पठन पाठन करना, बहुश्रुतभक्ति है।

(१३) प्रवचनभक्ति भावना :

(अ) प्रवचन याने जिनेन्द्र, सर्वज्ञ, वीतराग भगवान द्वारा प्ररूपित आगम। जिस प्रकार अधकारमयी महलमे हाथमे दीपक लेने से सर्व पदार्थ दिखते हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनरूप मदिरमे प्रवचन रूप दीपक द्वारा सूक्ष्म, स्थूल, मूर्तिक अमूर्तिक आदि सर्व पदार्थ दिखते

है । प्रवचनरुपी नेत्र द्वारा ज्ञानी जन चेतन आदि सर्व द्रव्योंका अवलोकन करते है । जिनेन्द्र के आगमका भक्ति और विनय पूर्वक अभ्यास प्रवचन भक्ति है । सम्यग्ज्ञान ही परम बाधव है, उत्कृष्ट धन है, परम मित्र है । स्वाधीन अविनाशी धन है ।

(ब) छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्व, नौपदार्थ और कर्म प्रकृतियों के विच्छेद आदिका, शास्त्रो का, द्रव्यानुयोग शास्त्रो का, पठन पाठन प्रवचनभक्ति है ।

(१४) आवश्यक अपरिहाणि भावना : आवश्यक भावना ।

(अ) अवश्य करने के योग्य, आवश्यक है । उस आवश्यककी हानी न हो, वह आवश्यक अपरिहाणि भावना है । इन्द्रियाधीन नही होना वह अवश्य है, याने इन्द्रियो को जीतनेवाला (गोस्वामी) अवश, उसकी क्रिया वह आवश्यक क्रिया छ प्रकारकी हैं । सामायिक, तीर्थन्करो के स्तवन, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कार्योत्सर्ग । ये आवश्यक परम धर्मरूप है ।

(ब) प्रतिक्रमण, कार्योत्सर्ग, समता, वदना स्तुति, और स्वाध्याय ये छ-आवश्यक भावनाये हैं ।

(१५) सन्मार्ग प्रभावना भावना :

(अ) सन्मार्ग याने रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग । इस मार्गके प्रभावको प्रकट करना, वह सन्मार्ग प्रभावना भावना है । हर आत्मामे समाये हुए रत्नत्रयरूप धर्म को प्रकट करना मार्ग प्रभावना है । शील की दृढता, परिग्रह की मर्यादा और परम सतोष धारण करने से आत्म प्रभावना और मार्ग प्रभावना होती है ।

(व) जिन देव का अभिषेक, श्रुत का व्याख्यान, गीत, वाद्य तथा नृत्य आदिसहित पूजा का करना, सन्मार्ग प्रभावना है ।

(१६) प्रवचन वत्सलता भावना :

(अ) प्रवचन याने देव, गुरु और धर्ममे वात्सल्य याने प्रीतिभाव, यही प्रवचन वात्सल्यता है । देव, गुरु, धर्मका सत्य स्वरूप जानकर दृढ श्रद्धा सहित धर्ममे रुचि रखनेवाले धर्मात्माओ मे प्रीतिभाव धारण करना वात्सल्य भाव है । अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु स्याद्वादरूप परमागम तथा दयारूप धर्म के प्रति जिनके वात्सल्य भाव होते है, वे ससार परिभ्रमण का नाश कर, निर्वाण प्राप्त करते है ।

(व) चारित्र के गुणधारी मुनियो की सेवा, सुश्रुषा आदि वात्सल्य है ।

७ वारह भावना

जीवको परिषह-उपसर्ग आदि सहन करनेमे वल रहे और भाव भी शुद्ध रहे, क्योकि भाव विनाका वाह्यलिग निरर्थक है, वास्ते अनित्य आदि वारह भावनाओ का निरूपण है ।

(१) शरीर, वैभव, लक्ष्मी, कुटुब, परिवारादिक सर्व विनाशिक है । जीवका मूल " धर्म " अविनाशी है । इस प्रकारका चितवन पहिली " अनित्य भावना " है ।

(२) ससार मे मरनेके समय जीवको कोई नही रख सकता, कोई नही शरण दे सकता । मात्र एक शुभ धर्म का ही शरण सत्य है । इस प्रकार का चिवतन दूसरी " अशरण भावना " है ।

(३) इस आत्माको ससारमे पर्यटन करते करते अनेको भाव वीते है । इस ससार रूपी जजीरसे कव छूटेगी । यह ससार मेरा नही, मै मोक्ष-मयी हू । इस प्रकार का चितवन तीसरी " ससार भावना " है ।

(४) यह मेरी आत्मा अकेली है, अकेली आई है और अकेली ही जायेगी। मेरे द्वारा किये हुए कर्म, मैं स्वत ही भोगूगा। इस प्रकारका चितवन चौथी "एकत्व भावना" है।

(५) ससारमे कोई, कोई का नही। इस प्रकार का चितवन पाचवी "अन्यत्व भावना" है।

(६) यह शरीर अशुचि है, व्याधियोंके रहनेका स्थान है। इस शरीरसे मैं पृथक हू। इस प्रकारका चितवन छठी "अशुचि भावना" है।

(७) राग, द्वेष, मिथ्यात्व, इत्यादि सर्व आश्रव है। इस प्रकारका चितवन सातवी "आश्रव भावना" है।

(८) ज्ञान, ध्यानमे जीव प्रवर्तमान होकर नये कर्म बांधे नही। इस प्रकार की चितवना करना आठवी "सवर भावना" है।

(९) ज्ञानसहित क्रिया करना, निर्जराका कारण है। इस प्रकारका चितवन नवमी "निर्जरा भावना" है।

(१०) लोक स्वरूपकी उत्पत्ति, स्थिति, और विनाश स्वरूप की विचारणा यह दशवी "लोक भावना" है।

(११) ससारमे भ्रमता आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादी पाना दुर्लभ है या सम्यग्ज्ञान पाया तो चारित्र, सर्व विरति परिणामरूप धर्म पाना दुर्लभ है, ऐसी चितवन ग्यारहवी "बोधिदुर्लभ भावना" है।

(१२) धर्मके उपदेशक तथा शुद्ध शास्त्र के बोधक ऐसे गुरु और ऐसे श्रमण मिलना दुर्लभ है। ऐसा चितवन बारहवी "धर्म दुर्लभ भावना" है।

मोह और योग के सदभावसे या अभावसे, जीवके श्रद्धा–चारित्र–योग आदि गुणो की तारतम्यरूप अवस्था विशेपको गुणस्थान कहते हैं। एसे गुणस्थाग चौदह (चतुर्दश) है

(१) मिथ्यात्व	(२) सासादन	(३) मिश्र
(४) अविरतसम्यक्त्व	(५) देश विरत	(६) प्रमत्त विरत
(७) अप्रमत्त	(८) अपूर्व करण	(९) अनिवृत्तिकरण
(१०) सूक्ष्मसाम्पराय	(११) उपशान्त कपाय–उपशान्तमोह	
(१२) क्षीण कषाय – क्षीण मोह	(१३) सयोगकेवलीजिन और	
(१४) अयोग केवली सिद्ध		

नोट प्रत्येक गुणस्थानमे जो जो भाव पाये जाते है, उनका "गुण" अथवा "स्वतत्व" नामसे उल्लेख है।

(१) प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमे जीवके औदयिक भाव होते है। औदयिक भाव याने कर्मोके उदयसे आत्माके होनेवाले परिणाम ये दर्शन मोहनीय कर्मकी अपेक्षा से है।

(२) द्वितीय सासादन गुणस्थानमे जीवके पारिणामिक भाव होते है। पारिणामिक भाव याने आत्माका निरतर सहज स्वभाव भान।

(३) तृतीय मिश्र गुणस्थानमे जीवके क्षायोपशमिक भाव होते है। इस गुणस्थान वर्ती जीव न सकल सयम और न देश सयम के पात्र होता है। इसमे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो का मिश्रण है।

(४) चतुर्थ अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे जीवके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक, ये तीनो भाव होते है। इस गुणस्थानमे न इन्द्रिय सयम होता है और न प्राण सयम।

(१) औपशमिक भाव याने आत्माके पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धताका प्रगट न होना, अर्थात दब जाना ।

(२) क्षायिक भाव याने आत्माके पुरुषार्थसे किसी गुणकी शुद्ध अवस्थाका प्रगट होना ।

(३) क्षायोपशमिक भाव याने आत्माके पुरुषार्थ का निमित्त पाकर कर्मका स्वयं आंशिक क्षय और आंशिक उपशम का होना ।

(५) पंचम देश गुणस्थानमे जीवको प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय रहता है, वास्ते पूर्ण संयम नही होता किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नही रहता, वास्ते एक देशव्रत का संयम होता है ।

(६) षष्ठ प्रमत्त गुणस्थानमे जीवको संयमके साथ प्रमाद भी होता है । इस गुणस्थान तक सब ही जीव प्रमाद सहित हुआ करते हैं और इससे उपरके गुणस्थानोमे सब ही जीव प्रमाद रहित होते हैं । प्रमाद याने संज्वलन कषायकी तीव्रता

(७) सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानमे जीवको संज्वलन और नोकषायका मन्द उदय होता है । सकल संयमसे युक्त मुनिके प्रमाद नही होता । अप्रमत्तसंयत के दो भेद है (१) स्वस्थाना प्रमत्त और (२) सातिशयाप्रमत्त ।

(८) अष्टम अपूर्वकरण गुणस्थानमे जीव अनन्त गुणी विशुद्धिको लिए मोहनीय कर्मकी प्रकृतियोका क्षपन अथवा उपशमन करने पर तपर होता है । इस गुणस्थानका काल मात्र अन्तर्मुहूर्त है ।

(९) नवम अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे जीव मोहनीय कर्मकी बादर कृष्टिसे सूक्ष्म कृष्टिकी ओर झुकता है तथा अत्यंत निर्मल ध्यानरूप परिणामका मात्र अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त रहता है ।

(१०) दशम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे जीव चाहे उपशम श्रेणिका आरोहण करनेवाला हो अथवा क्षपक श्रेणिका, किन्तु सूक्ष्म लोभ (कषाय) का भास रहता है।

(११) एकादश उपशान्त कषाय अथवा उपशान्त मोह गुणस्थानमे जीवको निर्मल जलकी तरह सम्पूर्ण मोहनीयकर्मका उपशम हो जाता है अर्थात कषायोका सर्वथा उपशम हो जाता है।

(१२) द्वादश क्षीण कषाय अथवा क्षीण मोह गुस्थानमे जीवके मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है। जीव वीतराग स्तिति पर पहुँच जाता है।

(१३) त्रयोदश सयोग केवली गुणस्थानमे जीवके अन्य तीन ((१) ज्ञाना-वरण (२) दर्शनावरण और (३) अन्तराय) कर्मोका क्षय हो जाता है। वह अरहत परमेष्ठिपदको प्राप्त कर लेता है, पर योगकी प्रवृत्ति रह जाती है।

(१४) चतुर्दश अयोग केवली गुणस्थानमे जीवके आश्रवके द्वार सर्वथाके लिए वद हो जाते है। सवरकी आवश्यकता रहती नही है। जीव मुक्तअवस्थाके निकट आ जाता है। वह काय योग से भी रहित हो चुकता है। अब वह सिद्ध परमेष्ठी है।

नोट कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) के चार प्रकार है

(१) अनन्तानुबन्धी जो आत्माके सम्यग्दर्शन गुणका घात करे।

(२) अप्रत्याख्यानावरण जो आत्माके देश चारित्रका घात करे।

(३) प्रत्याख्यानावरण जो आत्माके सकल चारित्रका घात करे।

(४) सज्वलन जो आत्माके यथाख्यात चारित्रका घात करे।

९. मार्गणा

जिन जिन धर्मविशेषो से जीवो का अन्वेषण किया जाता है, उन उन धर्मविशेषो को मार्गणा कहते है ।

गति–इन्द्रिय–काय आदि चौदह प्रकारके धर्मद्वारा अनेक प्रकारके जीवो के भेद जाने जा सके, अथवा जिसके द्वारा जीवसमूह की खोज हो सके।

(१) गति	चार है (१) नरक (२) तिर्यन्च (३) मनुष्य और (४) देव
(२) इन्द्रिय	पाच है (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु और (५) कर्ण
(३) काय	छ है (१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) वनस्पति और (६) त्रस
(४) योग	तीन है (१) मन (२) वचन और (३) काय
(५) वेद	तीन है (१) पुरुष (२) स्त्री और (३) नपुसक
(६) कषाय	चार है (१) क्रोध (२) मान (३) माया और (४) लोभ
(७) ज्ञान	आठ है (१) मति (२) श्रुत (३) अवधि (४) (४) मन पर्यय (५) केवल (६) विभग (७) कुमती और (८) कुश्रुत
(८) संयम	पाच है (१) पाच महाव्रतका धारण (२) पाच समितिका पालन (३) चार कषायोका निग्रह (४) तीन योग – मन, वचन जौर काय रूप दन्डका त्याग और (५) पाच इन्द्रियो का जय

(९) दर्शन	चार है	(१) चक्षुदर्शन
		(२) अचक्षुदर्शन
		(३) अवधिदर्शन और
		(४) केवल दर्शन
(१०) लेश्या	छ हैं	(१) कृष्णलेश्या
		(२) नीललेश्या
		(३) कापोतलेश्या
		(४) पीतलेश्या
		(५) पद्मलेश्या और
		(६) शुक्ल लेश्या
(११) भव्यत्व	दो है	(१) जो सिद्धिके प्राप्तिके योग्य हो और
		(२) जो सिद्धिके प्राप्ति के योग्य न हो
(१२) सम्यकत्व	दो हैं	(१) केवल आज्ञासे और
		(२) अधिगमसे
(१३) सज्ञित्व	दो हैं	(१) सज्ञी और
		(२) असज्ञी
(१४) आहारत्व	दो हैं	(१) आहारक और
		(२) अनाहारक

मोक्षमार्गस्य नेतार भेतार कर्मभूभृता ।
ज्ञातार विश्वतत्वाना वदे तदगुणलब्धये ॥

TO HIM, WHO HAS SHOWN THE BATH OF LIBERATION, WHO HAS DESTROYED THE MOUNTAINS OF KARMAS AND WHO HAS KNOWN THE ENTIRE REALITIES, I BOW DOWN IN ORDER TO ACQUIRE THOSE QUALITIES

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

चतुर्थ प्रकरण · 4TH CHAPTER

ध्यान (Concentration of Mind)

१. ध्यान The Concentration·

(१) जीवने मनुष्यपना काकतालीय न्यायसे (अनायास) पाया है, वास्ते जीवको अपने मे ही अपनेको निश्चय करके अपना मनुष्यभव सफल करना है।

(२) मोक्ष कर्मोंके क्षयसे ही होता है। कर्मोंका क्षय सम्यग्ज्ञान से होता है और वह सम्यग्ज्ञान ध्यानसे सिद्ध होता है अर्थात ध्यानसे ज्ञानकी एकाग्रता होती है, इस कारण ध्यान ही आत्माका हित है।

(३) जीवका आशय तीन प्रकारका ही है, अध्यात्मशास्त्रकी अपेक्षा, आत्माके उपयोगकी प्रवृत्ति सक्षेपसे तीन प्रकारकी ही मानी गई है।

(४) प्रथम पुण्यरूप शुभ आशय है और उसका विपक्षी दूसरा पापरूप अशुभ आशय है और तीसरा शुद्धोपयोगनामा आशय है।

(५) शुभ ध्यानसे पुण्यबन्ध तथा अशुभ ध्यानसे पापबन्ध होता है और शुद्ध ध्यानसे पापपुण्यरूप बंधोंका नाश होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

(६) द्वादशांग सूत्रके अनुसार (१) आर्त, (२) रौद्र, (३) धर्म और (४) शुक्ल ऐसे ध्यान के चार भेद हैं ।

(७) (१) ध्यान करनेवाला ध्याता, (२) ध्यानके दर्शन, ज्ञान चारित्र, सहित समस्त अंग, (३) गुण, दोष, लक्षण सहित ध्येय के रूप और (४) ध्यान का फल यह चतुष्टय ध्याता, ध्यान, ध्येय और फल कुछ समझने जैसे हैं ।

(८) जो तत्वार्थका (वस्तुका) यथार्थ स्वरूप जानते हैं, मनमे संवेग (विरक्ति रूप है, मोक्ष तथा उसके मार्गमे अनुरागी हैं और संसारजनित सुखों मे निःस्पृह (वाञ्छारहित) हैं, वे उपयुक्त ध्याता हैं ।

(९) दर्शन, ज्ञान चारित्र की शुद्धता पूर्वक किया हुआ मोक्ष फलका दाता, ध्यान है ।

(१०) ध्यान करने योग्य वस्तु ध्येय है । ध्येय वस्तु (१) चेतन और (२) अचेतन हैं । चेतन जीव है और अचेतन धर्मादिक पांच द्रव्य हैं । ये द्रव्य (वस्तु) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित हैं । पुदगल मूर्तिक है, जीवादिक अमूर्तिक हैं । चैतन्य ध्येय, देह सहित समस्त कल्याण के पूरक एक तो अरहंत भगवान और दूसरे निष्कल शरीर रहित सिद्ध भगवान ध्येय हैं ।

(११) रागादिक विकारोंसे रहित होना, विशुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनामे आत्मबुद्धि का होना, समस्त कर्मोंसे रहित केवल ज्ञानादि का प्राप्त होना, फल है।

(१२) साम्यभाव ध्यान की सिद्धि ।
जो कांच और कंचन को एक समान समझे, जो अरि और मित्र को एक स्वरूप जाने और जो निंदा और बडाई मे कोई भेद नही देखें । जिन्हे

सुख, दु ख, जीवन और मरणमे न खुशी है और न दिलगीरी हैं और जिन्हे इष्ट वियोग और अनिष्ट योग मे सहनशीलता है, ऐसे साम्यभाव जीवो को मोक्षके कारण स्वरूप ध्यानकी सिद्धि होती है ।

(१३) आर्त आदि ध्यानो का चतुष्टय

जिस जीवका ध्यान निश्चल है, उसके समभाव भी निश्चल हैं । ध्यानका आधार समभाव है और समभाव का आधार ध्यान है । समीचीन प्रशस्त ध्यानसे केवल साम्य ही स्थिर नही होता, किन्तु कर्मके समूहसे मलीन यह यन्त्रवाहक जीव भी शुद्ध होता है । ध्यानसे कर्मोंका क्षय होता है ।

(१४) उत्कृष्ट काय का वध सहननवाले जीवको अन्तर्मुहूर्त पर्यंत एकाग्रता-पूर्वक चिताका निरोध, ध्यान है ।

(१५) ध्यान दो प्रकार के है (१) प्रशस्त और (२) अप्रशस्त । प्रशस्त ध्यानसे उत्तम फल होता है और अप्रशस्त ध्यान से बुरा फल होता है । जिस ध्यानमे जीव अस्तराग, (राग रहित) हो जाय और बस्तु-स्वरूपका चिंतवन करे, वह प्रशस्त ध्यान है । जीव जिस ध्यानमे राग सहित है। वह अप्रशस्त ध्यान है ।

(१६) जीवो के प्रशस्त ध्यान, धर्म और शुक्ल के भेदसे दो प्रकारके है । जीवो के अप्रशस्त ध्यान, आर्त और रौद्र के भेदसे दो प्रकार के है ।

(१७) आर्त और रौद्र ध्यान जीवो को अत्यत दु ख देनेवाले है और धर्म और शुक्लध्यान जीवो के कर्मों को निर्मूल करनेमे समर्थ है ।

२. आर्त ध्यान का चतुष्टय

(१) अनिष्ट सयोगज

अनिष्ट पदार्थ का सयोग होने पर उसे दूर करनेके लिए, वार वार विचार करना ।

(२) इष्ट वियोगज

इष्ट पदार्थ का वियोग होने पर उसे प्राप्त करनेका वार वार विचार करना।

(३) वेदना जन्य

रोग जनित पीडा होने पर उसे दूर करनेके लिए वार वार चिंतवन करना। और

(४) निदान जन्य

आगामी कालमे भोगोकी वाछाका वार वार चिंतवन करना।

२ रौद्र ध्यान का चतुष्टय

(१) हिंसानदी (हिंसानद)

हिंसामे आनद मानकर उसके साधन मिलानेमे तल्लीन रहना।

(२) मृषानदी (मृषानद)

असत्य, (झूठी) कल्पनाओके निर्माण और झूठ वोल्नेमे आनदका अनुभव करना।

(३) चौर्यानदी (चौर्यानद)

चोरीमे आनद मानकर अनेक प्रकारकी वाछाका होना। और

(४) परिग्रहानदी (सरक्षणानद)

परिग्रहकी वृद्धि और सरक्षणमे तल्लीन रहना। प्रपचो द्वारा अन्यो पर प्रभुत्व स्थापित करना।

४ भावना का चतुष्टय

(१) मैत्री भावना

सूक्ष्म और वादर (स्थूल) त्रस (दो-तीन-चार और पाच इन्द्रिय जीव) और स्थावर (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और वनस्पति कायिक एक इन्द्रिय जीव) प्राणी सुखदु खादि अवस्थाओमे जैसे तैसे तिष्ठे हो तथा नानाभेदरूप योनियोमे प्राप्त होनेवाले जीवोके प्रति ऐसी चेष्टा करे कि ये सब जीव कष्ट और आपदाओंसे वर्जित हो जावें, तथा वैर, पाप और अभिमानको छोडकर सुखको प्राप्त होवे, यह मैत्री भावना है ।

(२) करुणा भावना

दीनदु खी जीवो के दु ख दूर करनेके उपाय करनेकी बुद्धि और प्रयत्न, क णा भावना है ।

(३) प्रमोद भावना

शास्त्राभ्यासि, यम नियमादिकमे उद्यमयुक्त, स्वतत्त्वाभ्यास करनेमे चतुर कषायोको जीतनेवाले, चारित्र्यवान, गुणीजनोको प्रोत्साहित करना, प्रमोद भावना है ।

(४) माध्यस्थ भावना

क्रोधी, निर्दय, क्रूरकर्मी, लम्पट, व्यसनी, निंदक, अभिमानी, नास्तिक आदि जीवोमे, रागद्वेषरहित मध्यस्थ भावका होना, माध्यस्थ भावना है ।

५ ध्यानके अयोग्य और योग्य स्थान

जीवो का चित्त स्थानके दोषसे तत्काल विकारताको प्राप्त होता है और वही मन मनोज्ञ स्थानको पाकर स्वस्थता (निश्चलता) को प्राप्त होता है ।

६ दूषित स्थान

जहा म्लेच्छ आदि रहते हो, पाखडी भेषियो के समूहसे घिरा हुआ हो, व्यभिचार हो, क्रूर कर्मोंका सचार हो, द्यूतक्रीडा हो, मद्यपान हो, शिकार हो, शिल्पी (शिलावट कारीगर) कारुक, (मोची आदि) हो अथवा विक्षिप्त (छोडा हुआ) हो, अग्निजीवी (लुहार, ठठेरे आदिक) हो तथा रजस्वला, भ्रष्टचारित्री, नपुसक, अगहीन हो ।

७ मनोज्ञ स्थान

सिद्धक्षेत्र, समुद्रका किनारा, वन, पर्वतका शिखर, नदीका किनारा, कमलका वन, प्राकार, शालवृक्षोका समूह, नदियोका सगम, द्वीप, स्मशान, गुफा, सिद्धकूट, चैत्यालय, रमणीक, उपद्रव रहित, कदली गृह' उपवन, चैत्यवृक्षके समीप तथा वर्षा, आतप, हिम, शीतादिक और प्रचड पवनादिसे वर्जित हो ।

८. ध्यानके योग्य आसन

पर्यंकासन (पद्मासन), वज्रासन, वीरासन, सुखासन, कमलासन कायोत्सर्ग, आदि ।

९ ध्यानकी सिद्धि का कारण स्थान और आसन अवश्य है किन्तु सुस्थित हो अथवा दु स्थित हो, चित्तका स्थिर स्वरूप मुख्य है, फिर कैसा भी स्थान हो या आसन हो ।

१०. (अ) धर्म ध्यान का चतुष्टय

(१) जीव आत्माके स्वरूपको यथार्थ जानता हुआ भी अनादि विभ्रमकी वासनासे तथा मोहके उदयसे तथा विना अभ्यासके और उस तत्वके सग्रहके अभावसे मा सि च्युत हो जाता है, तत्व-स्वरूपसे चलायमान हो जाता है ।

(२) जीव आत्माके स्वरूपको यथार्थ जानता हुआ, ध्यानमे एकाग्रता लगाता हुआ भी, चित्तकी स्थिरताको धारण नही करता ।

(३) इस प्रकार पूर्वोक्त ध्यानके विघ्न के कारण दूर करनेके लिए, तथा समस्त वस्तुओंके स्वरूपका यथास्थित तत्काल ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तथा आत्माकी विशुद्धता प्राप्त करनेके लिए, निरन्तर वस्तुस्थितिमे, स्थिरीभूत होना आवश्यक है ।

(४) तत्वका चिंतवन

(१) लक्ष्यके सम्बन्धसे – अलक्ष्यका चितवन ।

(२) स्थूल इन्द्रियगोचर पदार्थसे – सूक्ष्म इन्द्रिय अगोचर पदार्थका चिंतवन ।

(३) सालम्ब ध्येयसे – निरालम्ब ध्येयका चिंतवन ।

(४) दृष्ट पदार्थ के सम्बन्धसे–अदृष्ट पदार्थका चिंतवन–ध्यान ।

(५) जो भी जीव सिद्ध स्वरूपी है, किन्तु छदमस्थ (अल्पज्ञान) अवस्थामे है, परमात्मा जो अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी है, अल्पज्ञानीको द्रष्ट नही है । ध्यानके ध्येय एक तो देह सहित समस्त कल्याण के पूरक अरहत भगवान हैं और दूसरे निष्कल शरीर रहित सिद्ध भगवान है । इस लिए छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) श्रुत ज्ञानके भेद रूप शुद्ध नयके द्वारा परमात्माका स्वरूप निश्चय करं, ध्यान करे ।

११ (ब) धर्म ध्यानका चतुष्टय

आज्ञा, अपाय, विपाक तथा सस्थान इनका भिन्न भिन्न विचय (विचार) अनुक्रमसे करना ही धर्मध्यान के चार प्रकार हैं ।

(१) आज्ञा विचय

(२) अपाय विचय

(३) विपाक विचय

(४) सस्थान विचय

११ आज्ञा विचय

(१) आगम की प्रमाणतासे अर्थका विचार करना। वीतराग आज्ञाका विचार, साधक दशाका विचार, जीव वर्तमानमे आत्मशुद्धिकी कौनसी भूमिका (कक्षा) मे वर्तता है, उसका स्वस्थिति (स्वसन्मुखता) पूर्वक विचार और चिंतवन करे।

(२) तत्व, पर्याय, हेतु आदि वस्तुस्वरूपका आगमानुसार विचार और चिंतवन करे।

(३) प्रमाण नय निक्षेपोसे निर्णय किये हुए, स्थिति उत्पत्ति और व्यय-सयुक्त याने उपजे, विनशें और स्थिर रहे ऐसे और चेतन अचेतनरूप है लक्षण जिसका ऐसे तत्व-समूहका विचार और चिंतवन करे। और

(४) निर्मल, शद्र तथा अर्थसे परिपूर्ण, नाना प्रकारके निर्बाध, शद्ब और अर्थका प्रकाश, समस्त प्रकारकी विद्याओका समूह, आचार आदि अग, पूर्व अग, बाह्य प्रकीर्णक रूप विद्याका समूह तथा द्रव्यश्रुत (शद्बरूप) और भावश्रुत (ज्ञानरूप) ऐसे श्रुतज्ञानका विचार और चिंतवन करे।

१२. अपाय विचय

(१) बाधकताका विचार – कितने अशमे सरागता – कषायकण विद्यमान है। जीवकी कमजोरी ही विघ्नरूप है, रागादि ही दुखके कारण है, ऐसे भावकर्मरूप बाधक भावोका विचार, अपाय विचय है। और

(२) जिस ध्यानसे कर्मोका अपाय (नाश) हो, उसका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय मार्ग है। जीवने बहुत, कालपर्यन्त मजन, उन्मजन (जन्म-मरण) किये और दुख भोगे।

जीवको अनादि अविद्या व मिथ्यात्वकी वहुलतासे कर्मोंका उपार्जन और बध होता रहा। जीवको विचार करना है कि वह कौन है, उसके कर्मोंका आश्रव क्यो होता है तथा कर्मोंका वध क्यो होता है और किन उपायो से निर्जरा होती है। जीव स्वसिद्ध स्वभावी है। कर्मोंका किन उपायोसे नाश होगा, वह अपाय विचय ध्यान है।

१३. विपाक विचय

(१) द्रव्य कर्मके विपाकका विचार, जीवकी भूलरूप मलिनभावोमे कर्मोंका निमित्त मात्र रूप सम्बन्ध को जानकर स्वसन्मुखताके बलको सभालना, जड कर्म किसीको लाभ हानि करनेवाला नही है, ऐसा विचार विपाक विचय है।

(२) जीवके अपने उपार्जन किये हुए कर्मके फलका जो उदय होता है, वह विपाक है।

(३) कर्मोदय क्षण प्रतिक्षण उदय होते हैं। कर्मोंका समूह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चतुष्टयको पाकर सुख या दुखरूप अनेक प्रकारसे फलोको देता है। और

(४) अष्ट कर्म जनित जो कर्मोंका आश्रव होता है, उसकी निर्जरा कर्मोंकी स्थिति पूरी होने के पहले, तपश्चरणादिक से हो जा ी है। जीव, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी उत्कृष्ट सामग्रीको प्राप्त कर तीव्र तपके वलसे विपाक विचय ध्यानके पश्चात चौथे सस्थान विचय ध्यानसे कर्मोंको अतिशयताके साथ नष्ट करते हैं।

१४ सस्थान विचय

(१) जीवके शुद्धात्मद्रव्यका प्रगट निरावरण सस्थान आकार कैसे पुरुपार्थसे प्रगट हो, शुद्धोपयोगकी पूर्णता सहित, स्वभाव व्यजन पर्या-

यका स्वय, स्थिर, शुद्ध आकार कब प्रगट होगा, ऐसा विचार करना सस्थान विचय है ।

(२) इस ध्यानमे लोकका स्वरूप विचारा जाता है । प्रथम तो सर्व तरफ (चारो ओर) अनन्तानन्त प्रदेशरूप आकाश है। वह स्वप्रतिष्ठित है (आप ही अपने आधार पर है) उससे बडा अन्य कोई पदार्थ नही है, जो उसका आधार हो। उस आकाशके मध्य (बीच) मे यह लोक स्थित है ।

(३) यह लोक, ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय (क्षय) करके सयुक्त, चेतन, अचेतन पदार्थोसे सम्पूर्णतया भरा हुआ और अनादि ससिद्ध है। इसके (१) ऊध्र्व (२) मध्य और (३) अधो, ये तीन भाग है । तीन जगत या तीन लोक, इसके नाम है ।

(४) प्रथम यह लोक घनोदधि पवनसे वेढा हुआ है, उसके उपर घनवात पवनसे वेढा हुआ है और उसके उपर अन्तमे तनुवात पवनसे वेढा हुआ है, इस प्रकार तीन पवनो से लोक वेढा आ है, इधर उधर हट नही सकता, आकाशके मध्य भागमे स्थित है ।

(५) इस लोककी ऊचाई चौदह राजू है । (अधो लोकसे लगा मध्य लोक पर्यन्त सात राजू है और मध्य लोकसे लगा ऊर्ध्व लोक पर्यन्त सात राजू है।) यह मूलमे चौडा सात राजू है, घटते घटते मध्यमे चौडा एक राजू है और वढते वढते ऊर्ध्वमे ब्रह्म ब्रह्मोत्तर तक पाच राजू है और फिर घटते घटते अतमे एक राजू है ।

(६) अधो लोकमे सात नरको के नारकियो की निवासकी भूमियां है ।

(७) अधोलोक के उपर मध्यलोकका मध्य भाग है। उसमें जम्बूद्वीपादिक द्वीप और लवणसमुद्रादिक भिन्न भिन्न स्वयभूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप और समुद्रो की स्थिति है।

(८) उपरोक्त द्वीप और समुद्र दूने दूने विस्तारवाले, गोलाकार कडेके आकार परस्पर एक दूसरेको लपेटे हुए हैं। जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप, पुष्कर द्वीप, लवण समुद्र, कालोदधि आदि उत्तमोत्तम है तथा मानुषोत्तर पर्वतके मध्यस्थ नदी पर्वत मेरुपर्वतसे अति सुन्दर मनुष्यक्षेत्र है।

(९) एक लाख योजन व्यासका जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीपके चारो ओर दो लाख योजनका लवण समुद्र है। लवण समुद्रके चारो ओर चार लाख योजनका धातकीखडद्वीप है। धातकीखडद्वीपके चारो ओर आठ लाख योजनका कालो-दधि समुद्र है। कालोदधि समुद्रके चारो ओर सोलह लाख योजनका पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीपके उत्तरार्धमे – अगले आधे भागमे आठ लाख योजनका मानुषोत्तर – दीवारके समान पर्वत है – (इसलिए यह द्वीप पुष्करार्ध कहलाता है।)

(१०)
(१) जम्बूद्वीप — एक लाख योजन व्यासका
(२) लवण समुद्र — दो लाख योजन व्यास का
(३) धातकीखडद्वीप — चार लाख योजन व्यासका
(४) कालोदधि समुद्र — आठ लाख योजन व्यासका
(५) पुष्कर द्वीप — सोलह लाख योजन व्यासका
(६) पुष्कर द्वीपके उत्तरार्धमे – अगले आधे भागमे, आठ लाख योजन व्यासमे – दीवार के समान – मानुषोत्तर पर्वत है।

(११) जम्बूद्वीप, धातकीखडद्वीप, पूरे द्वीप और पुष्कर द्वीप आधा द्वीप है। इन अढाई द्वीपोमे ही मनुष्य रहते हैं, अगले द्वीपोमे मनुष्य रहते नही हैं और न मानुषोत्तर पर्वतके आगे मनुष्य जा ही सकते है। और

(१२) मनुष्य क्षेत्रमे (अढाई द्वीपमे) अनेक आर्यखड और म्लेच्छखड है। आर्यक्षेत्रोमे आर्य और म्लेच्छक्षेत्रोमे म्लेच्छ रहते है। क्षेत्रोके अनुसार गुण आचारादिक होते है।, मनुष्यक्षेत्र कही कुमानुष कुभोगभूमि सहित है, कही व्यन्तर देवोसे भरा है और कही उत्तम भोगभूमि सहित है।

(१३) जम्बूद्वीपके वीचमे पश्चिम पूर्व लम्बे छ पर्वत है, उनसे जम्बूद्वीपके (१) भरत (२) हेमवत (३) हरि (४) विदेह (५) रम्यक (६) हैरण्यवत और (७) ऐरावत ऐसे सात खड हो गये है।

(१४) पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एक दूसरेसे घिरे हुए दूने दूने विस्तारवाले मध्यलोकके अन्त तक द्वीप और समुद्र है।

(१५) कर्मभूमि, जहा असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन छ कर्मोंकी प्रवृत्ति हो। पाच भरत, पाच ऐरावत और पाच विदेह, ये पन्द्रह कर्मभूमियाँ है।

(१६) भोगभूमि, जहा असि मसि आदि की प्रवृत्ति न हो। पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत, ये दस क्षेत्र जघन्य भोगभूमिया है। पाच हरि और पाच रम्यक, ये दस क्षेत्र मध्यम भोगभूमियाँ है और पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु, ये दस क्षेत्र उत्कृष्ट भोगभूमिया है।

(१७) मनुष्यक्षेत्रके वाहरके सभी द्वीपोमे जघन्य भोगभूमि जैसी रचना है परतु स्वयभूरमणद्वीपके उत्तरार्धमे तथा समस्त स्वयभूरमण समुद्रमे और चारो कोनेकी पृथ्वियोमे कर्मभूमि जैसी रचना है और वहा पर मनुष्य ही रहते है।

(१८) स्वयभूरमण द्वीपके उत्तरार्धकी, स्वयभूरमण समुद्रकी और चारो कोनो की रचना कर्मभूमि जैसी कही जाती है, क्योकि कर्मभूमिमे और वहा विकल त्रय (दो-तीन और चार न्द्रिय) जीव है तथा भोगभूमिमे विकलत्रय जीव नही है।

(१९) तिर्यन्कलोकमे (स्वयभूरमण समुद्रके चारो ओर के कोनो के अतिरिक्त भागोमे) पचेन्द्रिय तिर्यन्च रहते है, किन्तु जलचर तिर्यन्च, लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयभूरमण समुद्रको छोडकर अन्य समुद्रोमे नही है ।

(२०) मध्य लोकके उपर आकाशमे (ऊर्ध्वलोकमे) ज्योतिषी देवोंके विमान रहते है, वे चर स्थिर भेदसे दो प्रकारके है (१) कई विमान निरन्तर गमन करते है और (२) कई विमान स्थिर रहते है ।

(२१) फिर कल्पवासी देवोके कल्प (विमान) रहनेके स्थान है ।

(१) सौधर्म	और	(२)	ईशान स्वर्ग
(३) सनत्कुमार	और	(४)	माहेन्द्र स्वर्ग
(५) ब्रह्म	और	(६)	ब्रह्मोत्तर स्वर्ग
(७) लातव	और	(८)	कापिष्ट स्वर्ग
(९) शुक्र	और	(१०)	महाशु स्वर्ग
(११) सतार	और	(१२)	सहस्त्रार स्वर्ग
(१३) आनत	और	(१४)	ाणत स्वर्ग
(१५) आरण	और	(१६)	अच्युत स्वर्ग ।

(२२) फिर इनके उपरके देवो के रहनेके (स्थान) विमान, नव ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तर है ।

(२३) देवोके निवासोमे निरतर रत्नोका प्रकाश, सदा वसतऋतु, विपदाका अभाव, सुखमय सामुग्रिया, दिव्य मनोहर शरीर, उपपाद शय्याद्वारा जन्म, अवधिज्ञानका योग, विमान ारा विचरना और कल्पवृक्षो और भोगोकी प्राप्ति है ।

(२४) सौधर्म स्वर्गसे लगाकर, अच्युतस्वर्ग पर्यन्त सोलह स्वर्ग (कल्प) कहे जाते है, उनके उपर नव ग्रैवेयकोमे वैमानिक देव है, वे कल्पातीत कहाते है। वे देव अहमिन्द्र नामसे वर्णित किये जाते हैं। वहा देवागनाये नही होती है।

(२५) नव(९) ग्रैवेयक विमानोके उपर आदित्यादिक नव (९) अनुदिश और श्रीजयन्तादिक पाच अनुत्तर विमान है, उनमे जो देव उत्पन्न होते है, वे वहासे चयकर मनुष्य होकर अवश्य ी मोक्षको पाते है।

(२६) अनुत्तर विमानोके आगे (उपर) शाश्वत धाम (मोक्ष स्थान वा सिद्धशिला) है। समस्त कर्मोके नाश करनेवाले सिद्ध भगवानोका आश्रय स्थान (निवास स्थान) है।

(२७) मोक्ष स्थानमे सिद्ध भगवान विद्यमान है, वे चैतन्य गुणोसे युक्त, कृतकृत्य, कर्मवधसे रहित स्वयबुद्ध परमात्मा है

१५ देवोके सम्वन्धमे विशेष वर्णन

(१) देव चार समूहवाले है (१) भवनवासी (२) व्यतर (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक।

उपरोक्त चार प्रकारके देवोमे हरएकके निम्नोक्त दस भेद है

(१) इन्द्र LIKE A KING

(२) सामानिक LIKE FATHER, TEACHER (आज्ञारुपी ऐश्वर्यसे रहित)

(३) त्रायस्त्रिंश : MINISTERS (IN ALL 33)

(४) पारिषद · COURTIERS

(५) आत्मरक्ष BODYGUARDS

(६) लोकपाल : POLICE

(७) अनीक , ARMY

(८) प्रकीर्णक : PEOPLE
(९) आभियोग्य : CONVEYANCES
(१०) किल्विषिक . SERVILE GRADE SERVANTS

नोट (१) त्रायस्त्रिश (२) लोकपाल ये भेद व्यतर और ज्योतिषी देवोमे नही होते ।

(३) कायद्वारा प्रविचार (१) भवनवासी (२) व्यतर (३) ज्योतिषी और (४) सौधर्म तथा ईशान स्वर्गके देवोमे है ।

(४) शेष स्वर्गके देवोका मनके विचार मात्रसे प्रवीचार है । सोलहवे स्वर्गसे आगेके देव कामसेवन रहित है ।

(५) भवनवासी देवो के दस भेद है ।

(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) विद्युतकुमार (४) सुपर्णकुमार (५) अग्निकुमार (६) वातकुमार (७) स्तनितकुमार (८) उदधिकुमार (९) द्वीपकुमार और (१०) दिवकुमार ।

(६) २० वर्ष के युवक जैसा इनका जीवन और आदत होती है । इसलिए इन्हे कुमार कहते है ।

(७) इनके रहनेके स्थान । रत्नप्रभा (पहिली नर्क) के खरभागमे, (पहिले भागमे) असुर–कुमारको छोडकर, नवप्रकारके भवनवासी देव रहते है ।

(८) रत्नप्रभाके, पकभागमे (दूसरे भागमे) असुरकुमार रहते हैं ।

(९) व्यतर देवोके आठ भेद है ।

(१) किन्नर (२) किंपुरुष (३) महोरग (४) गन्धर्व (५) यक्ष (६) राक्षस (७) भूत और (८) पिशाच ।

कुछ व्यतर देव जम्बूद्वीप तथा दूसरे असख्यात द्वीप समुद्रोमे रहते है,

राक्षस रत्नप्रभा पृथ्वीके पकभागमे रहते है। अन्य सात प्रकारके देव खरभागमे रहते हैं।

(१०) ज्योतिषी देवोके पाच भेद हैं।

१) सूर्य २) चद्रमा ३) ग्रह ४) नक्षत्र और ५) प्रकीर्णक तारे। ज्योतिशी देवो का निवास मध्यलोकमे सम धरातलसे ७९० योजनकी ऊचाईसे लेकर ९०० योजनकी ऊचाई तक आकाशमे है। सबसे नीचे तारे हैं। उनसे १० योजन उपर सूर्य है। सूर्यसे ८० योजन उपर चन्द्रमा है। चन्द्रमासे चार योजन उपर २७ नक्षत्र है। नक्षत्रोसे ४ योजन उपर बुधका ग्रह, उससे ३ योजन उपर शुक्र, उससे ३ योजन उपर वृहस्पिति, उससे ३ योजन उपर मगल और उससे ३ योजन उपर शनि है। इस प्रकार पृथ्वीसे उपर ९०० योजन तक ज्योतिषी मडल है। इनका आवास मध्यलोकमे है। ये मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए मनुष्यलोकमे हमेशा गमन करते है।

(११) मनुष्यलोकके (अढाई द्वीपके) वाहर असख्यात द्वीप और समुद्र हैं, उनके उपर (सबसे अतिम स्वयभूरमण समुद्रतक) ज्योतिषी देव स्थिर हैं।

(१२) मनुष्यलोकमे (अढाई द्वीपमे) ज्योतिषी देवोके गमनागमनपर समय विभाग आधारित है।

(१३) समय एक परमाणुके, एक आकाश प्रदेशसे, दूसरे आकाश प्रदेशमे, मद गतिसे जानेका काल। अति सूक्ष्म काल।

१६ अढाई द्वीपमे समयका कोष्टक :

६० सेकन्ड (SECOND)	:	१ मिनिट (MINUTE)
४८ मिनिट (MINUTE)		१ मुहर्त (MUHOORTHA)
३० मुहर्त (MUHOORTHA)		१ दिन रात (DAY & NIGHT)

१५ दिन रात (DAY & NIGHT)	१ पक्ष (FORT NIGHT)
२ पक्ष (FORTNIGHT)	१ मास (MONTH)
२ मास (MONTH)	१ ऋतु (SEASON)
३ ऋतु (SEASON)	१ अयन (AYANA)
२ अयन (AYANAS)	१ वर्ष (YEAR)
५ वर्ष (YEARS)	१ युग (YUGA)
८४ लाख वर्ष	१ पूर्वान्ग
८४ लाख पूर्वान्ग	१ पूर्व

१७ **अढाई द्वीपमे मनुष्यो की पोदगलिक रचना :**

शरीर, वचन, मन उच्छ्वास और निश्वास (श्वासोच्छ्वास) ये पुदगलो की रचना ।

(१) उच्छ्वास (प्राण) : ENHALING THE BREATH

(२) निश्वास (अपान) : INHALING THE BREATH

(3) RESPIRATION IN THE SCIENTIFIC ACCEPTANCE OF THE TERM, IS SIMPLY THE EXCHANGE BY THE ORGANISM, OF THE CARBON-DI-OXIDE GAS WHICH HAS BEEN FORMED IN THE BODY IN THE PROCESS OF COMBUSTION, FOR THE OXYGEN GAS WHICH IS REQUIRED FOR THAT COMBUSTION, IT IS THEREFORE A DOUBLE FUNCTION, OXYGEN BEING TAKEN IN AND CARBON-DI-OXIDE GOT RID OF BY ONE AND THE SAME PROCESS

(४) $\frac{२८८०}{३७७३}$ सेकंड : १ उच्छ्वास

(५) ७८ ६ उच्छ्वास : १ मिनिट
(एक स्वस्थ व्यक्तिके)

(६) ३७७३ उच्छ्वास : १ मुहूर्त

१८ **अढ़ाई द्वीपादिकमे नापका कोष्टक ।**

६ अगुल : १ पाद

२ पाद (१२ अंगुल) : १ विलस्त

२ विलस्त	१ हाथ
२ हाथ	१ गज (ईपु)
२ गज	१ धनुष
२००० धनुष	१ कोस
४ कोस	१ योजन

ोट सभी अकृत्रिम वस्तुओंके मापमे २००० कोसका योजन लिया जाता है ।

१९ सस्थान विचय धर्म ध्यान सम्बन्धी अध्ययन अधो, मध्य और ऊर्ध्व लोकका किया । अब इसके (सस्थान विचयके) (१) पिण्डस्थ (२) पदस्थ (३)रूपस्थ और (४) रूपातीत ये चार भेद है ।

(१) पिण्डस्थ ध्यानकी पाच धारणायें हैं ।

(१) पार्थिवी (२) आग्नेयी (३) श्वसना (४) वारुणी और (५) तत्वरूपवती

(२) पदस्थ ध्यान वर्णमातृका अवलवन लेकर, अक्षर स्वरूप पदोका चितवन ।

(३) रूपस्थ ध्यान वीतरागदेवका ध्यान मनन-चितवन । और

(४) रूपातीत ध्यान जिस ध्यानमे चिदानन्दमय, शुद्ध, अमूर्त, परमाक्षररूप आत्माको आत्मासे ही स्मरण करे, ध्यावे ।

२० (अ) शुक्ल ध्यानका चतुष्टय

(१) शुक्ल ध्यान, धर्म ध्यानपूर्वक होता है । मनको निश्चल करके धर्म ध्यान होता है, इसमे सासारिक व्यापारीके प्रवर्तनका सर्वथा अभाव हैं । धर्मध्यानके अनन्तर धर्मध्यानसे अतिक्रान्त होकर (निकलकर) अत्यन्त शुद्धताको प्राप्त हुआ धीरवीर, अत्यन्त निर्मल शुक्ल ध्यानके ध्यावनेका प्रारम्भ करता है । जो निष्क्रिय (क्रिया रहित) है, इन्द्रियातीत है और ध्यानकी धारणासे रहित है (मै इसका ध्यान करू) ऐसी इच्छासे रहित है और जिसमे चित्त अन्तरमुख अर्थात अपने स्वरूपके ही सन्मुख है, उसको शुक्ल ध्यान कहते है ।

(२) जिसके प्रथम वज्रवृषभनाराच सहनन है, जो पूर्व अर्थात ग्यारह अग और चौदह पूर्वका जाननेवाला है और जिसकी पुण्यरूप चेष्टा हो (शुद्ध चारित्र हो) वही जीव चारो प्रकारके शुक्ल ध्यानोको धारण करने योग्य होता है ।

(३) आत्माके शुचिगुणके सम्बन्धसे इसका नाम शुक्ल पडा है । कषायरूपी रजके क्षय होनेसे अथवा उपशम होने से, जो आत्माके निर्मल परिणाम होते हैं, वही शुचिगुणका योग है और वह शुक्लध्यान वैडुर्यमणिकी शिखाके समान निर्मल और निष्कप (कपतासे) रहित है । कपायरूपी मलके क्षय होनेसे अथवा उपशम होनेसे यह शुक्ल ध्यान होता है ।

(४) शुक्लध्यानके (१) पृथक्त्ववितर्क (२) एकत्ववितर्क (३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और (४) व्युपरतक्रियानिवृत्ति ऐसे चार भेद है । उनमेसे पहिलेके दो (१) पृथक्त्ववितर्क और (२) एकत्ववितर्क तो छदमस्थ जीव (वारहवे गुणस्थान पर्यन्त अल्पज्ञानियोके) होते है और अन्तके दो शुक्लध्यान सर्वथा रागादि दोषोसे रहित ऐसे केवलज्ञानियोके होते हैं ।

(५) प्रथमके दो शुक्लध्यान, जोकि छदमस्थोके होते है, वे श्रुतज्ञानके अर्थके सवधसे श्रुतज्ञानके आलवनपूर्वक है अर्थात उनमे श्रुतज्ञान पूर्वक पदार्थका आलंबन होता है और अन्तमे दो शुक्लध्यान, जो अरहत भगवानके होते है, वे समस्त आलवन रहित होते है ।

(६) आदिके दो शुक्लध्यानोमे पहला शुक्लध्यान, वितर्कविचार पृथक्त्व सहित है, इसलिए इसका नाम पृथक्त्व-वितर्क विचार है और दूसरा इससे विपर्यस्त है ।

(७) दूसरा शुक्लध्यान वितर्क सहित है परन्तु विचार रहित है और

एकत्व पदसे लाञ्छित अर्थात सहित है, इस लिए इसका नाम एकत्व वितर्क-विचार है ।

(८) तीसरा शुक्ल ध्यान सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति है । इसमे उपयोगकी-क्रिया नही है परन्तु कायकी क्रिया है । यह कायकी क्रिया घटते घटते जब सूक्ष्म रह जाती है तब यह तीसरा शुक्लध्यान होता है ।

(९) चौथा समुच्छिन्नक्रिय, अर्थात व्युपरत क्रियानिवृत्ति है । इसमे कायकी क्रिया भी मिट जाती है ।

(१०) शुक्ल ध्यानके चारो भेदोमेसे पहला (१) पृथक्त्व-वितर्क-विचार मन, वचन, और काय योगवालोको होता है, क्योकि इसमे योग पलटते रहते हैं ।

दूसरा (२) एकत्व-वितर्क-विचार
किसी एक योगसे ही होता है, क्योकि इसमें योग पलटते नही । जिस योगमे जीव लीन है, वही योग रहता है ।

तीसरा (३) सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति
काययोगवालेको ही होता है, क्योकि केवली भगवानके केवल काययोगकी सूक्ष्मक्रिया ही है ।

चौथा (४) समुच्छिन्नक्रिया
अयोगकेवली के होता है, क्योकि अयोगकेवलीके योगोकी क्रियाका सर्वथा अभाव है

(११) जिस ध्यानमे पृथक पृथक रूपसे वितर्क, अर्थात श्रुतका वीचार अर्थात सक्रमण होता है । अर्थात जिसमे अलग अलग श्रुतज्ञान वदलता रहता है, उसको सवितर्क-सविचार-सपृथक्त्व ध्यान कहते हैं ।

(१२) जिस ध्यानमे वितर्कका विचार—"सक्रमण नही होता" और जो

एक रूपसे ही स्थित हो उसको "सवितर्क अविचार प एकत्व ध्यान कहते हैं।"

(१३) (१) नानात्व अर्थात अनेकपनेको पृथकत्व कहते है।
(२) श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। और
(३) अर्थ व्यजन और योगोके सक्रमणका नाम विचार कहा गया है।

(१४) एक अर्थ (पदार्थ) से दूसरे अर्थकी प्राप्ति होना, अर्थसक्रान्ति है। एक व्यन्जनसे दूसरे व्यन्जनमे प्राप्त होकर स्थिर होना, व्यन्जन सक्रान्ति है और एक योगसे दूसरे योगमे गमन करना, योगसक्रान्ति है। इस प्रकार विशुद्ध ध्यानके सामर्थ्यसे जिसका मोहनीयकर्म नष्ट हो गया है, ऐसे जीवको ये होते है।

(१५) एक अर्थसे दूसरे अर्थका चिन्तवन करे, एक शव्दसे दूसरे शद्वका और एक योगसे दूसरे योगका आश्रय ले, एक पर्यायसे दूसरे पर्यायका चिन्तवन करे, और द्रव्य रुप अणुसे अणुका चिन्तवन करे, इस प्रकार ी किया जाता है।

(१६) जो ध्यानी अर्थ व्यन्जन आदि योगोमे जैसे शीघ्रतासे सक्रमण करत है, वह ध्यानी अपने आप पु न उसी प्रकार लौटता है।

(१७) जिसके तीनो योग होते है और जो पूर्वका जाननेवाला होता है, वही जीव इस पहिले ध्यानको धारण करता है, इस लिए इस ध्यानका नाम सवितर्क (श्रुतज्ञान) सविचार (व्यन्जन और योगोका सक्रमण) सपृथक्त्व (अनेकपन नानात्व) कहा है।

(१८) इस अचिन्त्य प्रभाववाले ध्यानके सामर्थ्यसे जिसका चित्त शान्त हो गया है, ऐसा ध्यानी क्षणभरमे मोहनीय कर्मका मूलसे नाश करता है अथवा उपशम करता है।

(१९) इस ध्यानने अर्थादिकके पलटनेका तात्पर्य यह है कि श्रुतस्कन्ध अर्थात

द्वादशाग शास्त्रसे एक अर्थको लेकर उसका ध्यान करता हुआ दूसरे अर्थको प्राप्त होता है ।

(२०) यह ध्यान एक शब्दसे दूसरे शब्द पर जाता है और एक योगसे दूसरे योग पर जाता है, इस लिए इसका नाम सविचार सवितर्क है ।

(ख) (१) जीव द्वादशाग शास्त्रका अवगाहन करके, पहले इस पृथक्त्ववितर्क-विचार ध्यानको ध्यावे ।

(२) ध्यानी जिस समय पृथक्त्व ध्यानके द्वारा कषायमलसे रहित होता है, तब इस ध्यानीका पराक्रम गट होता है और तभी यह एकत्व ध्यानके योग्य होता है । जिसका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है और जो पूर्वका जाननेवाला है और जिसकी दीप्ति अपरिमित है । जिस ध्यानमे जीव खेद रहित होकर, एक द्रव्यको, एक अणुको अथवा एक पर्यायको एक योगसे चिंतवन करता है । ऐसी स्थितिमे ध्यानीके घातियाकर्म क्षण मात्रमे नष्ट हो जाते है । यह द्वितीय एकत्व-वितर्क-अविचार ध्यान है ।

(३) अब ध्यानीके (१) दर्शनावरण (२) ज्ञानावरण (३) मोहनीय और (४) अतराय ये चारो घातियाकर्म नष्ट हो जाते हैं, वह आत्म लाभको प्राप्त होता है और अत्यन्त उत्कृष्ट शुद्धताको पाकर, केवल ज्ञान और केवल दर्शनको प्राप्त करता है ।

(४) ये ज्ञान और दर्शन दोनो अलब्धपूर्व है, अर्थात पहिले कभी प्राप्त नही हुए थे, उनको पाकर, उसी समय वे केवली भगवान समस्त लोक और अलोकको यथावत देखते और जानते है ।

(५) जिस समय केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है, उस समय वे भगवान सर्व रात्मे उदयरूप सर्वज्ञदेव होते है और अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, आदि विभूतिके प्रथम स्थान होते हैं । यह भावमुक्तका स्वरूप है ।

(६) तव वे सर्वगत और शिव ऐसे भगवान अरहतपनेको पाकर सपूर्ण कर्मोंके समूह और जरामरणसे रहित हो जाते हैं। अरहतपना पाकर सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।

(७) केवली भगवानके अरहत भगवानके अवशेष चार अघातिया कर्म व्यक्ति रूपसे रहते हैं।

(८) कर्मोसे रहित और केवलज्ञान के सहित सर्वज्ञ (अरहत देव) जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु वाकी रह जाती है, तव तीसरे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति शुक्लध्यानके योग होते हैं।

(९) जो जिनदेव उत्कृप्ट छ महीनेकी आयु अवशेप रहते हुए केवली हुए हैं। वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और शेष अर्थात जो छ महीनेसे अधिक आयु रहते हुए केवली हुए हैं, वे समुद्घातमे विकल्प रूप हैं। समुद्घात करे और न भी करे।

(१०) जव अरहतपरमेष्ठीके आयुकर्म अन्तरर्मुहूर्तका अवशेष रह जाता है और अन्य तीनो (१) वेदनीय (२) नाम और (३) गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है तव समुद्घात की विधि साक्षात प्रयम ही आरभ करते हैं।

(११) अनन्त वीर्यके द्वारा, केवली भगवान क्रमसे (१) दड (२) कपाट और (३) प्रतर इन तीनो क्रियाओ को तीन समयमे करके चौथे समयमे इन समस्त लोकको पूर्ण करते हैं। आत्माके प्रदेश पहले समयमे दंडरूप लम्बे, द्वितीय समयमे कपाटरूप चौडे और तीसरे समयमे प्रतररूप मोटे होते हैं और चौथे समय मे इनके देश समस्त लोकमे भर जाते हैं, इसको लोकपूरण कहते हैं। ये सव क्रियाये चार समयमे होती है।

(१२) केवली भगवान जिस समय लोकपूर्ण होते हैं, उस समय उनके सर्वगत, सार्व, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, विश्वव्यापी, विभुभर्ता, विश्वमूर्ति और महेश्वर

ये नाम यथार्थ (सार्थक) होते है ।

(१३) यदि (१) वेदनीय (२) नाम और (३) गोत्र कर्मोकी स्थिति आयुकर्मसे अधिक हो, तो लोकपूरण अवस्थामे उनकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके समान कर लेते है ।

(१४) फिर लोकपूरण स्थितिसे केवली (अरहत) भगवान, उसी क्रमसे चार समयोमे लौट कर स्वस्थ होते है । (१) लोकपूर्ण से (२) प्रतर, प्रतरसे (३) कपाट, कपाटसे (४) डरुप होकर चौथे समयमे शरीरके समान आत्मप्रदेशोको करते है ।

(१५) फिर केवली भगवान उस समय वादर काययोग मे स्थिति करके, वादर (१) वचन योग और (२) मनोयोग को सूक्ष्म करते है ।

(१६) फिर केवली भगवान, काययोगको छोडकर (१) वचन योग और (२) मनोयोगमे स्थिति करके, व दर काययोगको सूक्ष्म करते है ।

(१७) तत्पश्चात केवली भगवान काययोगमे स्थिति करके, क्षगमात्रमे (१) वचन योग और (२) मनोयोग का निग्रह करते है ।

(१८) तव यह सूक्ष्मक्रिया ध्यान, सूक्ष्म एक काययोगमे स्थित हुआ । अन्त समयके, पहले समयमे, कर्मोकी वहत्तर प्रकृति नष्ट होती है । चौथे समुच्छिन्नक्रिय ध्यानके आरभमे, कर्मोकी शेष रही हुई तेरह प्रकृतियोके विलयके साथ, केवली भगवान मोक्ष प्राप्त करते है ।

(१९) शेष अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुमे केवली भगवान अतके,

(१) सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति और

(२) व्युतरत क्रिया निवृति ये दोनो ध्यान पूर्ण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

(२०) पश्चात वे भगवान ऊर्ध्व गमन कर, एक समयमे ही, अवरोध रहित लोकके अग्रभाग विशेप विराजमान होते हैं।

(२१) जो गतिस्वभाव है, गमन करनेमे हेतु है, सो धर्मास्तिकाय है जो और स्थिति लणक्षरूप है, पदार्थोंकी स्थितिमे कारण है, सो अधर्मास्थिकाग है। इन दोनोंके निमित्तसे पदार्थोंकी गति और स्थिति है। इन दोनोका प्रभाव केवल लोकाकाशमे है। इसलिए भगवान लोकाग्रभाग तक ही गमन करते हैं।

(२२) सिद्धातमा उस लोकाग्रमन्दिरमे स्थिति पाकर, स्वभावसे उत्पन्न हुए अनन्त गुण सहित विराजमान रहते है।

(२३) यह आकाश सर्वत अनन्त है और उसके (१) लोक और (२) अलोक ऐसे दो भेद हैं। उस समस्त आकाशमे सिद्ध परमेष्ठीका ज्ञान घनीभूत होकर भरा हुआ है और इनका विभव कल्पनातीत हैं।

(२४) इस प्रकार ध्यान और ध्यानका फल सक्षेपमे पूर्ण हुआ।

२१. मोक्षका वर्णन :

(१) मोक्ष याने लोकका (लोकाकाशका) अग्रभाग है। जो जीव आठ कर्मोसि रहित है तथा आठ गुणोंसे सहित है, उनका निवास स्थान हैं।

(२) ये जीव परमेष्ठी, परमज्योति, विराग, विमल, कृती (कृतकृत्य) सर्वज्ञ, निरजन, निराकार, ज्योतिस्वरूपी, अचलस्थिति, सत्-चित-आनन्दरूप हैं। परमेष्ठीकी स्थिति निरूपमेय है। वे स्वय ही उपमान उपमेयरूप हैं। उनका उपमान उपमेय भाव अपना अपनेही साथ है।

(३) जैसे आकाश और कालका अन्त नही जाना जा सकता, उसी तरह स्वभावसे उपन्न हुए परमेष्ठीके गुणोका अन्त भी नही जाना जा सकता।

(४) सर्वज्ञ देव (अरहत भगवान) परमेष्ठीके गुणोको जानते है परन्तु

यदि वे उन गुणोको समाधान सहित अच्छी तरह वाणी द्वारा कहे, तो वे भी उनका पार नही पा सकेंगे क्योकि वाणी जड है, वचनो की सख्या अल्प है और गुण (चेतन स्वरूप) अनन्त इस लिए वे वचनोसे (वाणीसे) नही कहे जा सकेगे ।

२२ लोकके विषयमे :

(१) अनन्त आकाशके (१) अलोकाकाश और (२) लोकाकाश ये ो भेद है । अलोकाकाशमे धर्मास्ति और अधर्मास्तिकायका अभाव है । वहा की स्थिति शुन्यके समान है । चूकि लोकाकाश धर्म और अधर्म द्रव्य सहित है, यहा जीवादिक समस्त पदार्थ है । लोक अथवा लोकाकाश, पर्यायवाची शद्व है ।

२३ परिभाषायें ·

(१) ससारी जीव पदार्थको देखकर जानता है । पीछे सात ग (भेद) वाली नयोसे निश्चयकर श्रद्धान करता है । इस प्रकार दर्शन ज्ञान और सम्यक्त्व ये तीन जीवके गुण होते है ।

(२) प्रकृति अर्थात कारणके बिना वस्तुका सहज स्वभाव । जैसे आगका स्वभाव उपरको जाना, पवनका तिरछा वहना और जलका नीचेको गमन करना है ।

(३) जीवका स्वभाव रागादिरूप परिणमने (हो जाने) का है और कर्मका स्वभाव रागादिरूप परिणमावनेका है ।

(४) मद (नशे) का स्वभाव मदोन्मत्त कर देनेका है और पीनेवाले (जीव) का स्वभाव मदोन्मत्त हो जानेका है ।

(५) भावकर्म तथा द्रव्यकर्म अर्थात सामान्यपनेसे कर्म एक ही है, उस में भेद नही है । लेकिन द्रव्य तथा भावके भेदसे उसके दो का र है- ज्ञानावरणादिरूप पुद्‌गल द्रव्यका पिंड द्रव्यकर्म है और उस द्रव्यपिंडमे फल जो देनेकी शक्ति है, वह भाव कर्म है ।

२४. तत्वार्थसूत्र के अध्याय ९ पर आधारित

(१) उत्तम सहननवालो का, एक अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त एकाग्रतासे, एक विषय मे, चित्तवृत्ति का रोकना, ध्यान है ।

DHYANA (CONCENTRATION) IS THE FIXING OF THE MIND IN CONTEMPLATION ON ONE PARTICULAR OBJECT FOR ONE ANTARMUHURTA (48 MINUTES MINUS ONE SAMAYA) BY THOSE WHO HAVE EXCELLENT SAMHANANA

(२) ध्यान की गति सहनन पर निर्भर है ।
THE CONCENTRATION OF MIND DEPENDS ON THE POWER OF BODY STRUCTURE

(३) सहनन (OSSEOUS STRUCTURE) केवल औदारिक शरीरोमे ही है ।

(४) सहनन के ६ भेद है ।

(१) वज्रवृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) सहनन (हड्डिया)
ADMANTINE BONES, JOINTS AND NERVES

(२) वज्र नाराच (कील) सहनन (हडिडया)
ADMANTINE BONES AND JOINTS

(३) नाराच (कील) सहनन (हडिडया)
BONES AND JOINTS FULLY NAILED

(४) अर्ध नाराच सहनन
BONES AND JOINTS PARTIALLY NAILED

(५) कीलित सहनन
JOINTS FULLY NAILED

(६) असप्राप्ता सृपाटिका सहनन
BONES, JOINTS AND NERVES WRAPPED BY FLESH

नोट मूहूर्त का अर्थ है ४८ मिनिट और अन्तर्मुहूर्त का अर्थ है ४८ मिनिट के भीतर का समय । ४८ मिनिटमे एक समय कम, सो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है– समय टाइम का न्यूनतम भाग है ।

चर्चासमाधान के अनुसार

देव, नारकी, एकेन्द्रिय, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, चौदहवे गुणस्थान वर्ती और सिद्धो के सहनन नही होते ।

(५) ध्यान के भेद या प्रकार चार है ।

(१) आर्त ध्यान PAINFUL CONCENTRATION / USELESS CONCENTRATION

(२) रौद्र ध्यान WICKED CONCENTRATION / HARMFUL CONCENTRATION

(३) धर्म्य ध्यान RIGHTEOUS CONCENTRATION / HARMLESS CONCENTRATION

(४) शुक्ल ध्यान PURE CONCENTRATION.

(१) आर्त ध्यान के (लक्षण) भेद चार है ।

(१) अनिष्ट सयोगज

WHEN UNDESIRABLE THINGS OR PERSONS COMB IN CONTACT WITH US, TO THINK

REPATEDLY AS TO HOW THEY CAN BE REMOVED IS SAID TO BE " ANISHTA-SA-MYOGAJA ", THE FIRST KIND OF ARTTA DHYANA

(२) इष्ट वियोगज

ON BEING SEPARATED FROM DESIRABLE THINGS OR PERSONS, TO THINK AGAIN & AGAIN, AS TO HOW THEY CAN BE GOT BACK IS SAID TO BE " ISHTA VIYOGAJA", THE SECOND KIND OF ARTTA DHYANA

(३) वेदनाजन्य

TO BE REPEATEDLY THINKING OF GETTING RID OF A DISEASE IS " VEDNA JANNYA ", THE THIRD KIND OF ARTTA DHYANA

(४) निदानज

TO THINK REPEATEDLY OF GETTING SENSUAL ENJOYMENTS IN THE FUTURE BIRTH IS " NIDA NAJA ", THE FOURTH KIND OF ARTTA DHYANA

(७) रौद्र ध्यान के (लक्षण) भेद चार हैं ।

(१) हिंसानन्दी

TO THINK REPEATEDLY OF DOING HIMSA (INJURY) AND FEEL DELIGHT IN IT

(२) मृषानन्दी

TO THINK REPEATEDLY OF SPEAKING FALSE- HOOD AND TO BE DELIGHTED IN IT

(३) चौर्यानन्दी

TO THINK REPEATEDLY OF COMMITTING THEFT AND TO TAKE DELIGHT IN IT

(४) परिग्रहानन्दी

TO THINK REPEATEDLY OF PRESERVING OBJECTS OF SENSE-ENJOYMENT AND FEEL DELIGHT IN IT

(८) धर्म ध्यान के (लक्षण) भेद चार हैं ।

(१) आज्ञाविचय

TO THINK AGAIN AND AGAIN OF THE TATTVAS AS BASED ON THE AUTHORITY OF THE SCRIPTURES (AGAMAS)

(२) अपाय विचय

TO THINK REPEATEDLY AS TO HOW THE WRONG BELIEF, KNOWLEDGE AND CONDUCT OF ONESELF AND OTHERS MIGHT BE REMOVED

(३) विपाक विचय

TO THINK REPEATEDLY OF THE FRUITION AND SHEDDING OF KARMAS.

(४) सस्थान विचय

TO THINK REPEATEDLY OF THE CONSTITUTION AND NATURE OF THE UNIVERSE

DHARMA DHYAN IS POSSIBLE ONLY FOR PERSONS WHO ARE IN THE 4TH, 5TH, 6TH AND 7TH GUNASTHANAS

(९) शुक्ल ध्यान के (लक्षण) भेद चार है ।

(१) पृथक्त्ववितर्क विचार

(२) एकत्ववितर्क विचार

(३) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और

(४) व्युपरतक्रियानिवृति

THE FIRST KIND OF SHUKLA DHYANA IS FOUND IN SAINTS HAVING THE ACTIVITIES OF MIND, SPEECH AND BODY THE SECOND IN SAINTS WITH ONLY ANY ONE OF THE ACTIVITIES THE THIRD IN SAINTS HAVING THE ACTIVITY OF BODY ONLY (SAYOGA-KEVALI) AND THE FOURTH IN SAINTS HAVING NO ACTIVITY AT ALL (AYOGA KEVALI)

२५ कुंदकुंदाचार्य के अष्टप्राभृत के, मोक्ष प्राभृत की, गाथा ७७ की सस्कृत के अनुसार

अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मन ध्यात्वा लभते इन्द्रत्व ।
लौकान्तिकदेवत्व तत च्युत्वा निर्वृति याति ॥

इस पचमकालमे भी, रत्नत्रय से शुद्ध, पवित्र ज्ञानियो, आत्म ध्यान द्वारा, इन्द्रपद अथवा लोकान्तिक देवो के पद पाकर, वहा से चय कर, मोक्ष पद की प्राप्ति करते है ।

२६ नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति द्वारा, द्रव्य सग्रह की, गाथा ५६ (सस्कृत) के अनुसार :

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिर ।
आत्मा आत्मनि रत इदं एव पर ध्यान भवति ॥

कुछ भी चेष्टा न करो । कुछ भी न बोलो । कुछ भी चिंतवन न करो । आत्मा को आत्मामे लीन होकर स्थिर होने ो । यही उत्कृष्ट ध्यान है ।

DO NOT ACT, DO NOT TALK, DO NOT THINK, SO THAT THE SOUL MAY BE ATTACHED TO AND FIXED IN ITSELF THIS ONLY IS EXCELLENT MEDITATION

27 TO ATTAIN EXCELLENT DHYANA MEDITATION), ONE SHOULD TURN ALL HIS FACULTIES INWARDS, AND RESTRAIN ALL OUTWARD MOVEMENT OF THE SAME FIRST OF ALL, IT IS NECESSARY TO STOP ALL ACTIONS AND REFRAIN FROM TALK AND THOUGHT OF ANYTHING ELSE THEN THE SOUL SHOULD TURN UPON ITSELF AND BEGIN TO MEDITATE ON ITS OWN NATURE THIS IS DHYANA TO REACH THIS STAGE, ONE MUST FIRST CHECK ALL ACTIVITIES OF BODY, MIND AND SPEECH WHICH PRODUCE DISQUIETUDE OF THE SOUL, FOR IT IS IMPOSSIBLE TO ARRIVE AT THE QUIET STAGE NECESSARY FOR MEDITATION,

IF WE DO NOT FIRST CHECK THE DISTURBING ELEMENTS.

२८. साधारण परिस्थिति में

(१) व्ययं की परिस्थिति पर विचार विनिमय — आर्त ध्यान

(२) क्रोधासक्त परिस्थिति पर विचार विनिमय — रौद्र ध्यान

(३) शुभ परिस्थिति पर विचार विनिमय — धर्म ध्यान

(४) आत्मिक परिस्थिति पर विचार विनिमय — शुक्ल ध्यान

२९. अनुप्रेक्षा ((MEDITATION) के बारह भेद :

(१) अनित्य : EVERYTHING IS TRANSITORY

(२) अशरण : THE SOUL IS UNPROTECTED

(३) ससार WORLDLY EXISTENCE.

(४) एकत्व THE SOUL IS LONELY, ALONE IT COMES, IT LIVES, AND GOES.

(५) अन्यत्व THE SOUL IS SEPARATE FROM ALL OTHER THINGS

(६) अशुच्या : THE BODY IN WHICH THE SOUL LIVES, IS IMPURE AND DIRTY.

(७) आस्रवा : INFLOW OF KARMIC MATTER INTO THE SOUL, DUE TO WRONG BELIEF, VOWLESSNESS ETC.

(८) सवर : STOPPAGE OF THE INFLOW.

(९) निर्जरा : SEPARATION OF KARMIC MATTER FROM THE SOUL

(१०) लोका THE UNIVERSE- ITS NATURE AND ITS COMPONENT PARTS.

(११) बोधिदुर्लभ : THE RARITY OF ACQUIRING RIGHT BELIEF, RIGHT KNOWLEDGE AND RIGHT CONDUCT.

(१२) धर्मस्वाख्याततत्वा THE TRUE NATURE OF THE TATTVAS

३०. मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र) और सर्वार्थसिद्धि पर आधारित

१ **अध्याय १, सूत्र ५**

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास ।

अ न्यास (निक्षेप) गहन विधि से अभ्यास करने योग्य ।

ब न्यास (निक्षेप) के भेद

१. नाम . NAME
२. स्थापान : INSTALLATION
३ द्रव्य : SUBSTANCE
४ भाव , MODIFICATION

क स्थापना निक्षेप और द्रव्य निक्षेपमे भेद

IN STHAPANA THE CONNOTATION IS NEARLY ATTRIBUTED IT IS NEVER THERE IT CANNOT BE THERE.

IN DRAVYA IT WILL BE THERE OR HAS BEEN THERE. THE COMMON FACTOR BETWEEN THE TWO IS THAT IT IS NOT THERE NOW AND TO THAT EXTENT CONNOTATION IS FICTITIONS IN BOTH

ड न्यास (निक्षेप) ASPECT FROM WHICH A THING CAN BE CONSIDERED

२.

अध्याय १, सूत्र ६

प्रमाणनयैरधिगम ।

अ सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्वो का ज्ञान प्रमाण और नयोंसे होता है ।

ब मति, अवधि, मनपर्यय और केवल ज्ञानमे नयके भेद नही होते

क सम्यग्ज्ञान

RIGHT BELIEF IS NOT IDENTICAL WITH BLIND FAITH IT'S AUTHORITY IS NEITHER EXTERNAL NOR AUTOCRATIC IT IS REASONED KNOWLEDGE. IT IS A SORT OF A SIGHT OF A THING ONE CANNOT DOUBT IT'S TESTIMONY SO LONG AS THERE IS DOUBT, THERE IS NO RIGHT BELIEF BUT DOUBT MUST NOT BE SURPRESSED, IT MUST BE DESTROYED THINGS HAVE NOT TO BE TAKEN ON TRUST. THEY MUST BE TESTED AND TRIED BY EVERY ONE HIMSELF THIS SUTRA LAYS DOWN THE MODE IN WHICH IT CAN BE DONE IT REFERS THE INQUIRER TO THE FIRST LAWS OF THOUGHT AND TO THE UNIVERSAL PRINCIPLES. OF ALL REASONING, THAT IS TO LOGIC UNDER THE NAMES OF **PRAMAN** AND **NAYA.**

१ प्रमाण	VALID AND FULL KNOWLEDGE OF THINGS
२ नय	VIEW-POINT THE PARTICULAR STAND-POINT FROM WHICH A PARTICULAR ASPECT OF A THING IS STUDIED

३. **अध्याय १, सूत्र १५**

अवग्रहेहावायधारणा

मतिज्ञान के भेद

१ अवग्रह	PERCEPTION
२ ईहा	CONCEPTION
३ आवाय	JUDGEMENT
४ धारणा	RETENTION

४. **अध्याय १, सूत्र ३२**

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत ।

THE SOUL WITH INCORRECT KNOWLEDGE AND LACK OF DISCRIMINATION DWELLS UPON OR SWINGS OVER UNCERTAINTIES AND WHIMSICALLY ROLLS UPON

५. **अध्याय १, सूत्र ३३**

नैगमसग्रह व्यवहारर्जुसूत्रशद्वसमभिरूढैवम्भूता नया ।

THIS SUTRA DIRECTS FOR CLEAR UNDERSTANDING THROUGH WAYS AND MODES

१ नैगमनय . FIGURATIVE.

२ सग्रहनय GENERAL COMMON

३ व्यवहारनय : DISTRIBUTIVE

४ ऋजुसूत्रनय . PRESENT CONDITION

५ शब्दनय DESCRIPTIVE

६ समभि-रुढनय : SPECIFIC

७ एवभूतनय ACTIVE.

८ द्रव्यार्थिकनय TO KNOW THE CONCRETE SUBSTANCE.

९ पर्यायार्थिकनय TO KNOW CHANGES AND THE MODIFICATION IN THE SUBSTANCE

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

पचम प्रकरण . 5TH CHAPTER

THE DOCTRINE OF JAINISM

1 THE GRADUAL STAGES OF DEVELOPMENT OF SOUL

The whole of the universe is full of very minute living beings, technically called Nigoda These infinite and conscious beings are not in an appreciable state of development From these beings come out the developing souls and, after passing the different stages of development, become liberated There is no chance of any soul in which development has once begun to go back to the original Nigoda state Nowhere in the universe can we find an inch of space which does not contain Nigoda beings These beings are therefore the source from which souls longing for development come out The stages of development are fourteen in number, and technically these are known as Gunasthana

THE FOURTELN GUNASTHANAS.

The following are the fourteen Gunasthanas ·

The first	Mithyatva,
The second	Sasadana,
The third	Misra,
The fourth	Avirata-Samyaktva,
The fifth	Desa
The sixth	Pramatta
The seventh	Apramatta,
The eighth	Apurva—Karana,
The ninth	Anivritti-Karana,
The tenth	Suksma-Samparaya,
The eleventh	Upasanta-Moha,
The twelfth	Ksina-Moha,
The thirteenth	Sayogi-Kevali-the Jina and
The fourteenth	Ayogi-Kevali-the Siddha

In the first stage, a person has no belief in the truth of Jaina doctrines Even when these are taught to him, he does not believe in them, but on the contrary holds false beliefs, whether taught or not The true doctrines appear to him as distasteful as sweet syrup to a man suffering from fever This stage is known as the Mithyatva Gunasthana

The second is a transitory stage When one loses true belief and comes to believe false doctrines as in the first stage, he passes through the second stage which is known as Sasadana This is an intermediate stage in the fall from the heights of Samyaktva (right belief) to the level of Mithyatva (false belief)

In the third or Misra stage, a person has true and false beliefs in_a mixed way That is to say, neither a desire to have true

beliefs nor a wish to give up false ones, appear in his mind Samyaktva and Mithyatva are mixed up, like curd and treacle

A person in the fourth Avirata-Samyaktva stage, controls excessive anger, pride, deceit and greed, and does not doubt the truth of right doctrines But, while in this stage, he is unable to control the moderate or slight degrees of anger, etc However an effort for self-control is made as the person appreciates the value of it, though the effort is successful only to a very limited extent

In the fifth Desa stage, a person becomes able to control, moderate degrees of passions like anger, etc , and succeeds in establishing self-control to a greter extent than in the fourth stage

In the sixth Pramatta stage, a person begins to refrain from injury, falsehood, taking any substance which is not given to him, lust and a desire to have worldly possessions But his attempts are *not always successful*

In the seventh Apramatta stage, a person succeeds in practising without any transgression, non-injury, truth, chastity, non-acceptance of things not presented and of possessions in general

In the eighth Apurva-Karana stage, mild states of passions still arise, but the person enjoys an inexpressible delight by either checking or destroying their consequences

A person in the ninth Anivritti-Karana stage, becomes void of the desire to have enjoyments which he saw, heard or partook of previously, and practises meditation about the true nature of his soul

In the tenth Suksma-Samparaya stage, a person by medita-

tion becomes capable of subducing or destroying the subtle forms of greed

In the eleventh Upasanta-Moha stage, a person gains the power to control all Mohaniya (intoxicating) Karmas, but these do not disappear altogether

In the twelfth Ksina-Moha stage, all the passions and mohaniya Karmas disappear altogether

A person in the thirteenth Sayogi-Kevali stage, destroys Karmas called Jnanavaraniya, Darsana-varniya and Antaraya and appears like the sun freed from clouds He attains knowledge of everything existing in the universe But in this stage, *Yoga* still remains

In the fourteenth Ayoga-Kevali stage, the Yoga disappears and the person attains Liberation

2· THE MARGANAS

The conditions in which, the Jivas (the Souls) are found. The Marganas are of fourteen kinds

1 Gati or Condition — Is of four kinds

(1) As inmates of hell,
(2) As inmates of heaven,
(3) As human beings and
(4) As lower animals

2 Indriya or Senses — Are of five kinds

(1) The senses of sight,
(2) The senses of hearing,

(3) The senses of touch,
(4) The senses of taste and
(5) The senses of smell

3 Kaya or Body

Is of six kinds
(1) The earth,
(2) The water,
(3) The fire,
(4) The air,
(5) The vegetable and
(6) The trasa

4 Yoga or Union

Is of three kinds .
(1) With respect to mind,
(2) With respect to speech and
(3) With respect to body

(1) Mind

Is of four kinds
Mind may be turned to
(1) Things which are true,
(2) Things which are false,
(3) Things which are both true or false and
(4) Things which are neither true nor false

(2) Speech

Is of four kinds
(1) Truth,
(2) Falsehood,
(3) Mixed (truth and falsehood) and
(4) Neither truth nor falsehood

(3) Unity in Body

Is of seven kinds

(1) As in the bodies of human beings and lower animals which are fixed in limits,
(2) A mixed state of the first,
(3) As in the bodies of the inmates of heaven and hell which can increase or diminish,
(4) A mixed state of *third*,
(5) As in the body which comes out of the head of a sage in the sixth stage of development to go to a Kevali,
(6) A mixed state of the fifth and
(7) As in the forms which result from the eight kinds of Karmas.

5. Veda or Sex

Is of three kinds :

(1) Male,
(2) Female and
(3) Eunuch

6. Kasaya or Passions

Are of four kinds :

(1) Anger,
(2) Pride,
(3) Deceit and
(4) Greed

Note —Each of these is, again, of four kinds, according to different degrees of intensity.

7	Jnana	Is of eight kinds (1) Mati, (2) Sruta, (3) Avadhi, (4) Manah-paryaya, (5) Kevala, (6) Kumati, (7) Kusruta and (8) Vibhangavadhi
8.	Samyama or Restraint	Is of five kinds (1) Keeping of Vratas (vows), (2) Observing the Samitis, (3) Checking the Kasayas or passions, (4) Giving up the Dandas and (5) Controlling the Indriyas (Senses)
9	Darsana	Is of four kinds (1) Chaksu, (2) Achaksu, (3) Avadhi and (4) Kevala
10	Lesya	Is of six Kinds (1) The Black, (2) The Blue, (3) The Pigeon, (4) The Golden, (5) The Lotus-like and (6) The White

Note —The Lesya is that by which a Jiva assimilates virtue and vice with itself Feeling arising from Yoga, coloured by passions, lead to Bhava-Lesya and the actual colours of bodies produced by such feelings are called Dravya-Lesya The first three are resultants of evil and the last three of good emotions

11 Bhavya — Is of two kinds

(1) Bhavyatva *Guna* and
(2) Abhavyatva *Guna*

Note —The quality by which a soul attains perfect faith, knowledge and conduct is known as Bhavyatva Guna and that by which these are obstructed is called Abhavyatva Guna. Bhavya Margana defines Jiva which possess each of these sets of qualities.

12. Samyaktva — Is of two kinds :

(1) Perfect faith in the Tattvas and
(2) Perfect faith in the Principal tenets of Jainism.

13 Samjni — Is of two kinds :

(1) Samjni Jiva and

(2) Asamjni Jiva

Note Samjni Jivas are those who with the help of mind are capable of teaching, of action, of giving advice and of conversation Asamjni Jivas are those who are incapable of these In Margana, each of these classes of Jivas are described

14 Aharatva — Is of two kinds

(1) Aharaka and

(2) Anaharaka

Notes —1 Ahara is the assimilation of material particles by Jivas to preserve bodies

2 Jiva which assimilate food for preservation of body is Aharaka

3 Jiva which does not assimilate food for preservation of body is Anaharaka

4 Sayoga Kevali, Ayoga Kevali and Siddha are Anaharaka and others are Aharaka.

Jivas may be viewed with reference to each of these Marganas or with reference to different Gunasthanas or stages of development But it must be remembered that all these characteristics are attributed to Jivas from the ordinary point of view, for none of them really exist in Jivas

3 THE JIVA

According to Dravya-Samgraha

1 **Verse : 7 :**

According to Nischaya Naya, Jiva is without form, because the five kinds of colours and taste, two kinds of smell, and eight kinds of touch are not present in it But according to Vyavahara Naya (Jiva) has form through the bondage (of Karma)

2 We to read the Verse 7 thus ·

(*a*) Jiva is naturally invisible, but " when the soul is attacked by the passions it takes on the Pudgala (material) particles fit for the bondage of the Karmas, just as a heated iron-ball takes up waterparticles in which it is immersed This is the bondage of the Karmas " Thus " the naturally invisible soul is compounded in a very subtle way with visible, tangible matter, and is in a sense thereby rendered visible, as lemon-juice is rendered sweet by the addition of sugar and water In its pure state the soul (Jiva) is invisible, just as in itself the lemon-juice is sour "

(*b*) We should therefore remember that, according to the Jaina belief, Jiva, in its natural or real state, is invisible. But it combines with Pudgala or matter This combination is the bondage (Bandha) which produces karmas When Jiva thus combines itself with Pudgala (matter), it leaves its invisible state and becomes visible to us It is Pudgala (matter) which has form and when Pudgala combines itself with Jiva, the taste, colour, smell and touch of the former which are the requisities of its form, are attributed to the really formless Jiva, and we say that Jiva has form Every form of mundane life which we see is a Jiva in its impure and visible state in combination with Pudgala Therefore, according to Vyavahara Naya, that is to say from the ordinary or common sense point of view, we may say that Jivas have form, but we must remember that according to Nischaya Naya or the realistic point of view Jiva are without form

(*c*) In bondage (Jiva) is one (with Pudgala), but really according to definition, it is separate (from Pudgala)

(*d*) Pudgala is said to possess touch, taste, smell and colour Colours are of five kinds, viz , Blue (Nila), Yellow (Pita), White (Sukla), Black (Krisna), and Red (Lohita) The varieties of taste are Bitter (Tikta), Sour (Katu), Acid (Amla), Sweet (Madhura) and Astringent (Kasaya) Smells are of two kinds, fragrance (Surabhi) and its opposite (Asurabhi). The eight kinds of touch are Soft (Mridu), Hard (Kathina), Heavy (Guru), Lihgt (Laghu), Cold (Sita), Hot (Usna), Smooth (Snigdha) and Rough (Ruksa).

4 THE CAUSATION

Upadana (The Substantial Cause)
and
Nimitta (The Determining Cause).
According to Dravya-samgraha

1 **Verse : 8 :**

According to Vyavahara Naya, Jiva is the doer of the Pudgala Karmas According to Nischaya Naya, (Jiva is the doer of) Thought Karmas — Sentient Karmas According to Suddha Naya, (Jiva is the doer) of Suddha Bhavas

2 We to read the Verse 8 thus

(a) In this verse the Jaina doctrine of causation as to the origin of the World is briefly treated Causes are generally accepted to be of two kinds Upadana (Substantial Cause and Nimitta (Determining Cause) Take the case of an earthen pot

The Upadana or the Substantial Cause of the earthen pot is the earth, and its Nimitta or Determining Cause is the potter and his implements

(b) First of all, the potter forms an idea of the shape, size, etcetera, of the pot which he is going to make This existence of the pot in the idea may be called the resultant in consciousness of the potter Then follows the existence of the pot which we can perceive by our senses

(1) The existence of a pot in the mind of a potter may be said to be a Bhava-Karma

(2) The material existence of the pot perceptible by our senses is known to be a Dravya-Karma

(3) The potter is directly the cause of the Bhava-Karma

(4) The Bhava-Karma is the cause of the Dravya-Karma

3 It should, therefore, be remembered that, according to Nischaya Naya, the potter is the agent of the Bhava-Karma (the pot existing in idea), and according to Vyavahara Naya, that of the Dravya-Karma (the pot perceptible by us)

4 Karmas are generally understood to be of two sorts — Dravya-Karmas and Bhava-Karmas

5 According to Jaina Metaphysics, Jivas are only possessed of infinite knowledge etcetera

(1) According to Vyavahara Naya, Jivas are also recognised as agents of even Pudgala-Karmas

(2) According to Nischaya Naya, Jivas are said to be causes of the thought Karmas which precede the Pudgala-Karmas perceptible by us

(3) According to Suddha Naya, Jivas are said to be agents of their own resultants, viz, infinite knowledge, bliss, etcetera

6 In the case of Jivas, they are really possessed of the characteristics, viz, infinite knowledge, bliss, etcetera Jivas, therefore may be said to be the agents of these characteristics according to Suddha Naya.

7 We may say that the Jivas are Agents of

(a) Mental attitudes and conditions which favour the influx of particles of matter

(b) Attachment, aversion, etcetera, may be mentioned as examples of such states of Jivas

(c) These are the thought Karmas, Sentient Karmas.

(d) According to Nischaya Naya, Jivas are said to be the agents of these classes of Karmas

(e) When the Jivas cause such *thought* Karmas-Sentient Karmas to be produced, these thought Karmas-Sentient Karmas, on the other hand, lead to the generation of the material Karmas or Dravya-Karmas

(f) The Jivas are not, therefore, the direct causes of Dravya-Karmas

8 It is according to Vyavahara Naya only that we can speak of Jivas as agents of Dravya-Karmas The very essence of Dravya-Karmas consists of particles of matter, and these are in no way akin to consciousness-the characteristic of Jivas

9 The Upadana or substantial cause of a Dravya-Karma is therefore Pudgala or matter, and their Nimitta or determining cause is the Bhava-Karma, viz , that condition of the Atma which render it capable of assimilating the particular Dravya-Karma

10. (1) Thus a Jiva is neither the Upadana nor the Nimitta cause of Dravya-Karmas, according to Nischaya Naya.

(2) It is only from the Vyavahara point of view that we say that the Jivas are causes of Dravya-Karmas

(3) But, in reality, (according to Nischaya Naya), Jiva is only the agent of its own attitudes (Bhavas)

11 In Panchastikaya-samayasara, we have "Atma is the agent of its own Bhavas, as it causes its own resultants. But it is not the agent of Pudgala-Karmas This should be understood to be the precept of the Jina "

12 The Universe is therefore made up of Jivas and Ajivas

(1) Pudgala or matter is the substantial cause (Upadana) of every material thing

(2) The different Bhava or Thought-Karmas — Sentient Karmas are the determining cause (Nimitta) of these

(3) Jivas cause these Bhava or Thought-Karmas to be produced

13 Thus two sorts of substances, material and spiritual, may be regarded to be the cause of all kinds of manifestations

14 There are many units of this spiritual substance possessed of qualities which are known as Jivas, and there are also many units of material substance (Pudgala), which again have their own characteristic qualities

15 These two kinds of substances act and re-act upon each other, and a constant state of activity is going on in this Universe.

5 THE STATE OF THE JIVA (THE SOUL)

According to Dravya-Samgraha

Verse : 9 :

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery, the fruits of Pudgala Karmas According to Nishchaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only

1 It has already been laid down that the Atma (or soul) is entirely distinct in its characteristics from Pudgala (or matter) The essence of Jiva or Atma is consciousness which is altogether absent from Pudgala or matter

2. In the previous verse it has been laid down that the spiritual substance (Jiva) cannot be the cause of Pudgala-Karmas (i e , Material-Karmas)

3 In this verse it is shown that the Jivas from their very nature are unaffected by the fruits of Pudgala-Karmas.

4 Jivas only enjoy eternal bliss which is their essential characteristic

We to read the Verse 9 thus .

(1) According to Nischaya Naya, a Jiva should only be regarded as an enjoyer of bliss resulting from its characteristic of consciousness.

(2) But through the generation of attachment, aversion, etcetera, Jivas attain such a condition that they become ready for the assimilation of matter.

(3) It is only in such states of Jivas that there is an influx of matter in them

(4) When there is such an influx of matter, the Jivas have to enjoy sorrow and delight, happiness and misery as these are the fruits of Pudgala-Karmas

(5) Really a Jiva through its characteristic consciousness is incapable of being affected by happiness or misery—the fruits of Material Karmas

(6) It is only when Matter assimilates itself with a Jiva

(7) We see the fruits of Material Karmas in the Jiva

(8) We say that the Jiva is enjoying happiness or misery, the fruits of Material Karmas

(9) It is to be remembered that this enjoyment of the fruits of Karma by a Jiva is only apparent, but not real

(10) As a Matter of fact the Jiva (the Soul) enjoys bliss only, which is the resultant of its characteristic consciousness

THE PANCHA PARAMESHTIS

According to Dravya-Samgraha.

1 That pure soul existing in an Audarika Sharira (Human body), possessed of infinite faith, happiness, knowledge and power which has destroyed the four Ghatiya Karmas, is an Arhat.

We to follow thus

(1) The four kinds of Karma, viz , Janavaraniya, Darasanavaraniya, Mohaniya and Antaraya destroy the natural characteristics of a soul For this reason, these are known as Ghatiya Karmas (Destroying Karmas)

(2) An Arhat is freed from these four kinds of Karmas, and consequently he possesses the following four excellent qualities, each of which appears at the disappearance of each of the four Ghatiya Karmas viz , perfect knowledge (arising from the destruction of Janavaraniya Karma), perfect faith (arising from the destruction of Darasanavaraniya Karma), infinite happiness (arising from the destruction of Mohaniya Karma) and infinite power (arising from the destruction of Antaraya Karma)

2 The Siddha — the Supreme Soul which has destroyede all the eight Karmas, which is the Seer and Knower of Loka and alloka, which has a Shape like a Human being and which stays at the summit of the Universe.

3 That sage who attaches himself and others to the practice of Jnana (Knowledge), Charitra (Conduct) and Tapa (Penance) in which faith and knowledge are eminent is Acharya (preceptor)

We to follow thus

(1) An Acharya is one who practises the five Acharas (kinds of conduct) and advises his disciples to do the same The five kinds of Acharas are Darasanachara, Jnanachara, Charitrachara, Tapachara and Viryachara

(a) Darasanachara is the turning of oneself to the faith that the soul, consisting of supreme consci-

ousness, is separate from everything else and is the only thing to be meditated on

(*b*) Jnanachara is the turning of oneself to attainment of the knowledge that the natural characteristics of the soul have no connection with delusion, etcetera, or attachment and aversion

(*c*) Charitrachara consists in making the soul tranquil after freeing it from all kinds of distrubances arising from attachment, etcetera, so that it may enjoy perfect bliss

(*d*) Tapachara consists in the practice of various kind of penances by which one can conquer reprehensible desires and attain a true conception of the soul

(*e*) Viryachara is giving full scope to one's inherent power, so that the first four Acharas might not be hindered or destroyed

(2) An Acharya is therefore one who is always engaged in all these five kinds of practices, and by precept as well as by example makes his disciples to perform the same

4 That being, the greatest of the great sages who being Possessed of (1) Samyagdarshana– Right view point, (2) Samyag-Jnana — Rig ht Knowledge and (3) Samyakcharitra — Right Conduct, (the three jewels) is always engaged in preaching the religious truths, is known as Upadhyaya (Teacher) Salutation to him

4 We to follow thus

Upadhyaya or Teacher is one who is always engaged in teaching others the tenets of Jainism He is a man possessed of perfect faith, perfect knowledge and perfect conduct From his preachings a person knows his duties and regulates himself by practicing what is desirable and avoiding what is undesirable The place of Upadhyaya is high among the Jaina sages, as he directly encourages practice of religion by continually preaching the principles of religion

5 That sage who practises well conduct — which is always pure and which is the path of liberation, with perfect faith and knowledge — is a Sadhu Obeisance to him

We to follow thus

(1) A sadhu is one who is always active in attaining perfect conduct with perfect faith and perfect knowledge, and practises penances

(2) The external effort of a Sadhu is seen when he tries to have perfect faith, knowledge and conduct, and practises excellent penances

(3) The internal effort of a Sadhu is made when he fixes his mind upon the soul itself, which is the only receptacle of perfect faith, knowledge and conduct and excellent penances

(4) A Sadhu is, therefore, one who is characterised by activity while moving in the path of liberation

(5) This activity is solely directed to the attainment of means to liberation

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

षष्ठक प्रकरण : 6TH CHAPTER

मोक्ष मूलम्

आचार्य श्री उमास्वामि द्वारा मोक्षशास्त्रमे आरम्भिक प्रतिपादन

१ त्रैकाल्य द्रव्य-षट्क नव-पद-सहित जीव-षट्काय-लेश्या ।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदा ॥
इत्येतन्मोक्षमूल त्रिभुवनमहितै प्रोक्तमर्हद्भिरीशै ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् य स वै शुद्धदृष्टि ॥१॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविहाराणाफल पत्ते ।
वदित्ता अरहते वोच्छ आराहणा कमसो ॥ २ ॥

उज्जोवणमुज्जवण णिव्वहण साहण च णिच्छरण ।
दसण-णाण-चरित्त तवाणमाराहणा भणिया ॥ ३ ॥

२ त्रैकाल्य–तीनो काल

(१) भूत, भविष्यत् और वर्तमान,

(२) प्रात , मध्याह्न और सूर्यास्त,

(३) वृद्धि, स्थिति और क्षय ।

३ षट्द्रव्य

गुणो के समूह को द्रव्य कहते है । जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और उसकी समस्त अवस्थाओमे रहता है, वह गुण है । अर्थात गुण और पर्याय सहित वस्तुको द्रव्य कहते है ।

लोक द्रव्योका समूह है और वे द्रव्य छह मुख्य जातियोमे विभाजित है गणनामे वे अनन्तानत है । परिणमन करते रहना उनका स्वभाव है, क्योकि विना परिणमनके अर्थक्रिया और अर्थक्रियाके विना द्रव्यके लोपका प्रसग आता है । यद्यपि द्रव्यमे एक समय एक ही पर्याय रहती है, पर ज्ञानमे देखनेपर वह अनन्तो गुणो व उनकी त्रिकाली पर्यायोका पिड दिखाई देता है । द्रव्य, गुण व पर्यायमे यद्यपि कथन क्रमकी अपेक्षा भेद प्रतीत होता है, पर वास्तवमे उनका स्वरूप एक रसात्मक है । द्रव्यकी यह उपरोक्त व्यवस्था स्वत सिद्ध है, कृतक नही है ।

(१) जीवद्रव्य,
(२) अजीवद्रव्य,
(३) धर्मद्रव्य,
(४) अधर्मद्रव्य,
(५) आकाशद्रव्य और
(६) कालद्रव्य

४ नव पदार्थ :

पद या शब्दका अर्थ, वह वस्तु जिसका किसी शब्दसे बोध हो, उन विषयोसे कोई एक, जिनके नाम, रूप आदिका कथन हो । कोई अभिधेय वस्तु

'व्यक्ति' 'आकृति', और जाति ये सब मिलकर पदका अर्थ (पदार्थ) होता है इस विश्वमे जो जाननेमे आनेवाला पदार्थ है, वह समस्त द्रव्यमय, गुणम और पर्यायमय है।

जीव और अजीव दो भाव (अर्थात मूल पदार्थ) तथा उन दोके पुण्य और पाप इस प्रकार निम्नोक्त नव पदार्थ होते हैं।

(१) जीव,
(२) अजीव,
(३) पुण्य,
(४) पाप,
(५) आस्त्रव,
(६) सवर,
(७) निर्जरा,
(८) वध और
(९) मोक्ष

५ षट्काय :

काय का प्रसिद्ध अर्थ शरीर हैं। शरीरवत् ही वहुत प्रदेशोके समूह रूप होनेके कारण कालातिरिक्त जीवादी पांच द्रव्य भी कायवान् कहलाते हैं। जो पचास्तिकाय करके प्रसिद्ध हैं। यद्यपी जीव अनेक भेद रूप हो सकते हैं, पर उन सबके शरीर या काय छह ही जाति की है -

(१) पृथिवी,
(२) अप्,
(३) तेज,
(४) वायु,

(५) वनस्पति और

(६) त्रस अर्थात् मासनिर्मित शरीर

उपरोक्त ही षट्काय जीवके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

५. **षट्काय :**

अन्य प्रकारसे .

(१) स्थावर जीव

(१) पृथ्वी काय,
(२) जल काय,
(३) अग्नि काय,
(४) वायु काय, और
(५) वनस्पति काय

२ त्रस जीव

(१) वादर (स्थूल) , और
(२) सूक्ष्म

६ **लेश्या :**

कषायसे अनुरंजित जीवकी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति भाव लेश्या कहलाती है । आगममे इनका कृष्णादि छह रंगो द्वारा निर्देश किया गया है । इनमेसे तीन शुभ व तीन अशुभ होती है । राग व कषायका अभाव हो जानेसे मुक्त जीवोंको लेश्या नही होती । शरीरके रंगको द्रव्यलेश्या कहते हैं । देव व नारकियोंमें द्रव्य व भाव लेश्या समान होती हैं, पर अन्य जीवोमे इनकी समानता का नियम नही है । द्रव्यलेश्या आयु पर्यन्त एक ही रहती है, पर भाव लेश्या जीवोंके परिणामोंके अनुसार बराबर बदलती रहती हैं ।

कषायके उदयसे अनुरंजित योग प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं ।

लेश्या निम्नोक्त छह है ।

शुभ :

(१) पीत ,

(२) पद्म, और

(३) शुक्ल

अशुभ

(१) कृष्ण

(२) नील और

(३) कापोत

७ **अस्तिकाय :**

जिन्हे विविध गुणो और पर्यायोके साथ अपनत्व है, वे अस्तित्वकाय है, कि जिनसे तीन लोक निष्पन्न हैं । जो तीनो कालके भावोरूप परिणमित होते हैं तथा नित्य हैं, ऐसे वे ही अस्तिकाय परिवर्तन लिंग सहित द्रव्यतत्वको प्राप्त होते हैं ।

काल छोडकर इन छह द्रव्योको जिनसमयमे 'अस्तिकाय' कहा गया है क्योकि उनमे जो वहुप्रदेशीपना है, वही कायत्व है ।

वहुप्रदेशो के समुहवाला हो वह काय है । 'काय' (शरीर) जैसे होते हैं । अस्तित्व सत्ताको कहते है । अस्तिकाय पांच हैं । अस्तित्व और कायत्वसे सहित पांच अस्तिकाय हैं ।

जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म, तथा आकाश, अस्तित्वमे नियत, अनन्यमय और वहुप्रदेशी है । ये काल, आकाश, धर्म , अधर्म, पुद्गल और जीव द्रव्य सज्ञाको प्राप्त करते हैं, परन्तु कालको कायपना नही है ।

जो द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्ययुक्त (सत्) होनेसे तथा शक्ति अथवा व्यक्ति अपेक्षासे विशाल क्षेत्रवाले होनेसे वें 'अस्तिकाय' हैं । काल द्रव्य

'अस्ति' है किन्तु काय नही है। पाँच द्रव्य अस्ति है और काय सहित होनेसे अस्तिकाय है।

निम्नोक्त 'अस्तिकाय पाँच है।

(१) जीवास्तिकाय, (जीव)
(२) पुद्गलास्तिकाय, (अजीव)
(३) धर्मास्तिकाय, (धर्म)
(४) आकाशस्तिकाय, (आकाश) और
(५) अधर्मास्तिकाय, (अधर्म)

८ व्रत :

अच्छे कामो के करनेका नियम करना अथवा बुरे कामोका छोडना व्रत कहलाता है।

ये व्रत १२ होते है – ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत।

(१) अणुव्रत – हिंसा, झूठ, चोरी वगैरह पाँच पापोका स्थूल रीतीसे एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

अणुव्रत ५ होते हैं :

(१) अहिंसाणुव्रत,
(२) सत्याणुव्रत,
(३) अचौर्य्याणुव्रत,
(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत, और
(५) परिग्रहपरिमाणुव्रत.

(२) गुणव्रत – गुणव्रत उन्हे कहते है, जो अणुव्रतो का उपकार करे।

गुणव्रत ३ होते हैं।

(१) दिग्व्रत,
(२) देशव्रत, और
(३) अनर्थदण्डव्रत

(३) शिक्षाव्रत – शिक्षाव्रत उन्हे कहते हैं, जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत ४ होते हैं

(१) देशावकाशिक,
(२) सामायिक,
(३) प्रोषधोपवास, और
(४) वैयावृत्य

यावज्जीवन हिंसादि पापोकी सर्वदेश निवृत्तिको महाव्रत कहते हैं।

(४) इन्हे भावनासहित निरतिचार पालनेसे साधकको साक्षात या परम्परा मोक्षकी प्राप्ति होती है, अत मोक्षमार्गमे इनका बहुत महत्त्व है।

महाव्रत ५ होते हैं

(१) अहिंसामहाव्रत,
(२) सत्यमहाव्रत,
(३) अचौर्यमहाव्रत,
(४) ब्रह्मचर्यमहाव्रत और
(५) परिग्रहत्यागमहाव्रत

९ समिति .

मुनिके किंचित राग होने पर गमनादि क्रिया होती है, वहाँ उस क्रियामे अति

आसक्तिके अभावसे उनके प्रमादरूप प्रवृत्ति नही होती, तथा दूसरे जीवोको दुःखी करके अपना गमनादिरूप प्रयोजन नही साधते, इसीलिये उनसे स्वय दया पलती है, इसी रूपमे यथार्थ समिति है ।

अभेद उपचाररहित जो रत्नत्रयका मार्ग है, उस मार्गरूप परम धर्म द्वारा अपने आत्म स्वरूपमे 'सम' अर्थात सम्यक् प्रकारसे 'इता' गमन तथा परिणमन है, सो समिति है ।

स्व आत्माके परम तत्त्वमे लीन स्वाभाविक परमज्ञानादि परम धर्मोकी जो एकता है, सो समिति है । यह समिति सवर-निर्जरारूप है ।

सम्यग्दृष्टि जीव जानता है कि आत्मा परजीवका घात नही कर सकता, परद्रव्योका कुछ नही कर सकता, भाषा बोल नही सकता, शरीरकी हलन-चलनादिरूप क्रिया नही कर सकता, शरीर चलने योग्य हो तब स्वय उसकी क्रियावती शक्तिसे चलता है, परमाणु भाषारूपसे परिणमनेके योग्य हो तब स्वय परिणमता है, पर जीव उसके आयुकी योग्यताके अनुसार जीता या मरता है, लेकिन उस कार्यके समय अपनी योग्यतानुसार किसी जीवके राग होता है, इतना निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, इसीलिये निमित्तकी अपेक्षासे समितिके पाँच भेद होते हैं, उपादान अपेक्षा तो भेद नही पडता ।

गुप्ति निवृत्ति स्वरुप है और समिति प्रवृत्ति स्वरूप है । सम्यग्दृष्टिको समितिमे जितने अशमे वीतरागभाव है, उतने अशमे सवर है और जितने अशमे राग है, उतने अशमे बन्ध है ।

जब साधु गुप्तिरूप प्रवर्तनमे स्थिर नही रह सकते तब वे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेप और उत्सर्ग इन पाँच समितिमे प्रवर्तते है, उस समय असयमके निमित्तसे बन्धनेवाला कर्म नही बन्धता सो उतना सवर होता है ।

यह 'समिति' मुनि और श्रावक (गृहस्थ) दोनो यथायोग्य पालते हैं ।

पांच समितिकी व्याख्या निम्नप्रकार है -

(१) ईर्यासमिति – चार हाथ आगे भूमि देखकर शुद्धमार्गमे चलना ।

(२) भाषासमिति – हित, मित और प्रिय वचन बोलना ।

(३) एषणासमिति – श्रावक के घर, विधिपूर्वक दिनमे एक ही बार निर्दोष आहार लेना

(४) आदाननिक्षेपणसमिति – सावधानी पूर्वक निर्जंतु स्थानको देखकर वस्तुको रखना, देना तथा उठना ।

(५) उत्सर्गसमिति (प्रतिष्ठापनासमिति) – जीव रहित स्थानमे मल-मूत्रादिका क्षेपण करना ।

१० गति :

गति शब्दका दो अर्थोमे प्राय प्रयोग होता है – गमन व देवादि चार गति। छहो द्रव्योमे जीव व पुद्गल ही गमन करनेको समर्थ है। उनकी स्वाभाविक व विभाविक दोनो प्रकारकी गति होती है। नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव ये जीवोकी चार प्रसिद्ध गतियो है, जिनमे ससारी जीव नित्य भ्रमण करता है। इसका कारणभूत कर्म गति, नामकर्म कहलाता है ।

एक देशसे दूसरे देशके प्राप्त करनेका जो साधन है उसे गति कहते है ।

बाह्य और आभ्यन्तर निमित्तके वशसे उत्पन्न होनेवाला कायका परि स्पन्दन गति कहलाता है ।

क्रिया प्रयोग बन्धाभाव आदिके भेदसे गति दस प्रकारकी है । बाण चक्र आदिकी प्रयोगगति है । एरण्डबीज आदिकी बन्धाभाव गति है । मृदग भेरी

शखादिके शब्द जो दूर तक जाते है, पुद्गलोकी छिन्नगति है । गेद आदिकी अभिघात गति है। नौका आदिकी अवगहनगति है । पत्थर आदिकी नीचेकी ओर (जानेवाली) गुरुत्वगति है । तुम्डी रूई आदिकी (ऊपर जानेवाली) लघुत्वगति है। सुरा सिरकाआदिकी सचारगति है । मेघ, रथ, मूसल आदिकी क्रमश वायु, हाथी तथा हाथके सयोगसे होनेवाली सयोगगति है। वायु, अग्नि, परमाणु, मुक्तजीव और ज्योतिर्देव आदिकी स्वभावगति है ।

वन्धसे सर्वांग मुक्त जीव ऊपरको जाता है । स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्ध्व गमन करता है।

अग्नि आदिमे भी ऊर्ध्वगति होती है, अत ऊर्ध्वगतित्व भी साधारण है । कर्मोके उदयादिकी अपेक्षाका अभाव होनेके कारण वह पारिणामिक है। इसी प्रकार आत्मामे अन्य भी साधारण पारिणामिक भाव होते है। क्योकि जीवोको ऊर्ध्वगौरव धर्मवाला बताया है, अत वे ऊपर ही जाते है । मुक्त होनेवाले जीवोकी ऊर्ध्व गति ही होती है ।

जीव ऊर्ध्वगौरवधर्मा वताया गया है । जिस तरह लोष्ट, वायु और अग्निशिखा स्वभाव से ही नीचे तिरछे और ऊपर को जाती है, उसी तरह आत्माकी, स्वभावत ऊर्ध्वगति ही होती है । क्षीणकर्मा जीवोकी स्वभावसे ऊर्ध्वगति ही होती है । जीव स्वभावसे ऊर्ध्व-गमन करनेवाला है । जीवोकी स्वभावक्रिया सिद्धिगमन है।

सिद्धशिलापर पहुँचनेके वाद, चूंकि मुक्त जीवमे ऊर्ध्वगमन नही होता, अत उष्णस्वभावके अभावमे अग्निके अभावकी तरह मुक्तजीवका भी अभाव हो जाना चाहिए – एक प्रश्न।

'मुक्तका ऊर्ध्व ही गमन होता है, तिरछा आदि गमन नही', यह स्वभाव है न कि उर्ध्वगमन करते ही रहना । जैसे अग्नि कभी ऊर्ध्वगमन नही करती,

तब भी अग्नि बनी रहती है । उसी तरह मुक्तमे भी लक्ष्यप्राप्तिके बाद ऊर्ध्वगमन न होनेपर भी ऊसका अभाव नही होता है।

जीवोंमे जो विकृति गति पायी जाती है, वह या तो प्रयोगसे है या फिर कर्मोके प्रतिघातसे है । जीवोके कर्मवश नीचे, तिरछे और ऊपर भी गति होती है ।

जीवोकी विभाव क्रिया (अन्य भवमे जाते समय) छह दिशामे गमन है । व्यवहारसे चार गतियोको उत्पन्न करनेवाले (भवान्तरोको ले जानेवाले) कर्मोके उदयवश जीव ऊँचा, नीचा तथा तिरछा गमन करनेवाला है ।

वायु, अग्नि, परमाणु, मुक्तजीव और ज्योतिर्देव आदिकी स्वभाव गति है। अकेली वायुकी तिर्यक् गति है। भस्त्रादिके कारण वायुकी अनियत गति होती है । अग्निकी स्वाभाविक ऊर्ध्वगति है । कारणवश उसकी अन्य दिशाओंमे भी गति होती है। परमाणुकी अनियत गति है । ज्योतिषियोका लोकमे नित्य भ्रमण होता है।

गति ४ प्रकारकी होती है

(१) नरकगति,
(२) तिर्यंचगति,
(३) मनष्यगति, और
(४) देवगति

क्षायिकी गति मोक्षगति है ।

११ ज्ञान .

ज्ञान जीवका एक विशेष गुण है, जो 'स्व' व 'पर', दोनोको जाननेमे समर्थ है । वह पाँच प्रकारका है – मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय व केवल ज्ञान। अनादि कालसे मोहमिश्रित होनेके कारण यह 'स्व' व 'पर' मे भेद नही

देख पाता। शरीर आदि परपदार्थोको ही निजस्वरूप मानता है, इसीसे मिथ्याज्ञान या अज्ञान नाम पाता है। जब सम्यक्त्वके प्रभावसे परपदार्थोसे भिन्न निज स्वरूपको जानने लगता है, तब भेदज्ञान नाम पाता है। वही सम्यग्ज्ञान है। ज्ञान वास्तवमे सम्यक् व मिथ्या नही होता, परन्तु सम्यक्त्व या मिथ्यात्वके सहकारी पनेसे सम्यक् व मिथ्या नाम पाता है। सम्यग्ज्ञान ही श्रेयोमार्गकी सिद्धि करनेमे समर्थ होनेके कारण जीवको इष्ट है। जीवका अपना प्रतिभास तो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उसको प्रकट करनेमे निमित्तभूत आगमज्ञान व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है। तहाँ निश्चय सम्यग्ज्ञान ही वास्तवमे मोक्षका कारण है, व्यवहार सम्यग्ज्ञान नही।

जो जानता है, वह ज्ञान है (कर्तृ साधन), जिसके द्वारा जाना जाय सो ज्ञान है (करण साधन), जाननामात्र ज्ञान है (भाव साधन)।

एव भूतनयकी दृष्टिमे ज्ञानक्रियामे परिणत आत्माही ज्ञान है, क्योकी, वह ज्ञान स्वभावी है।

सत्यार्थका प्रकाश करनेवाली शक्ति विशेषका नाम ज्ञान है। अथवा सद्भाव अर्थात् वस्तु स्वरूपका निश्चय करनेवाले धर्मको ज्ञान कहते है। शुद्धनयकी विवक्षामे वस्तुस्वरूपका उपलम्भ करनेवाले धर्मको ही ज्ञान कहा है। जिसके द्वारा द्रव्य गुण पर्यायोको जानते हैं, उसे ज्ञान कहते हैं।

जिससे यथार्थ रीतिसे वस्तु जानी जाय, उसे सवित् (ज्ञान) कहते है। सम्यग्ज्ञान की ही 'ज्ञान' सज्ञा है।

ज्ञान ५ प्रकारके होते है

(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, और केवलज्ञान।

१२. चारित्रः

चारित्र मोक्षमार्गका एक प्रधान अग है। अभिप्रायके सम्यक् व मिथ्या

होनेसे वह सम्यक् व मिथ्या हो जाता है। निश्चय, व्यवहार, सराग, वीतराग, स्व, पर आदि भेदोंसे वह अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट किया जाता है, परन्तु वास्तवमे वे सब भेद प्रभेद किसी न किसी एक वीतरागता रूप है। निश्चय चारित्रके पेटमे समा जाते हैं। ज्ञाता द्रष्टा मात्र साक्षीभाव या साम्यताका नाम वीतरागता है। प्रत्येक चारित्रमे उसका अश अवश्य होता है। उसका सर्वथा लोप होनेपर केवल बाह्य वस्तुओका त्याग आदि चारित्र सज्ञाको प्राप्त नही होता। परन्तु इसका यह अर्थ भी नही कि बाह्य व्रतत्याग आदि बिलकुल निरर्थक है, वह उस वीतरागताके अविनाभावी है तथा पूर्व भूमिका वालोको उसके साधक भी।

चारित्र व्यवहारनयसे पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार १३ भेद रूप है।

स्वस्वरूपमे रमना, सो चारित्र है। स्वसमयमे अर्थात स्वभावमे प्रवृत्ति करना, यह इसका अर्थ है। यह वस्तु (आत्मा) का स्वभाव होनेसे धर्म है।

क्योकि समस्त पापयुक्त मन, वचन, कायके योगोके त्यागसे सम्पूर्ण कषायोंसे रहित अतएव, निर्मल, परपदार्थोंसे विरक्तताख्प चारित्र होता है, इसलिए वह आत्माका स्वरूप है।

पांच महाव्रत और पांच समितिका निरूपण ऊपर कर चुके है। तीन गुप्तिके विषयमे निम्नोक्त विवरण है।

गुप्ति

मन, वचन व कायकी प्रवृत्तिका निरोध करके मात्र ज्ञाता, द्रष्टा भावमे निश्चयसमाधि धारना पूर्णगुप्ति है और कुछ शुभराग मिश्रित विकल्पो व प्रवृत्तियो सहित यथा शक्ति स्वरूपमे निमग्न रहनेका नाम आशिक गुप्ति है। पूर्णगुप्ति ही पूर्णनिवृत्तिरूप होनेके कारण निश्चयगुप्ति है और आशिकगुप्ति प्रवृत्ति अशके साथ वर्तनेके कारण व्यवहारगुप्ति है।

गुप्ति ३ प्रकारकी होती है

(१) मनोगुप्ति — मनको वशमे करना
(२) वचनगुप्ति — वचनको वशमे करना और
(३) कायगुप्ति — शरीरको वशमे करना ।

१३ भेद

(१) विदारण के अर्थमें

अन्तरग और वहिरग, इन दोनो प्रकारके निमित्तोंसे सघातो के विदारण करनेको भेद कहते है ।

जो भेदन करता है, जिसके द्वारा भेदन किया जाता है या भेदनमात्रको भेद कहते है ।

स्कन्धोका विभाग होना भेद है ।
अश, पर्याय, भाग, हार, विध, प्रकार, भेद, छेद, और भग ये एकार्थवाची है ।

(२) वस्तुके विशेषके अर्थ में :

गुण और गुणीमे सज्ञा भेद होनेसे भेद स्वभाव है ।
द्रव्य गुण पर्यायमे वचन भेदसे तो भेद है परन्तु द्रव्य रूपसे अभेद रूप है ।

विरूद्ध धर्मोका रहना और भिन्न-भिन्न कारणोका होना यही भेद है और भेदका कारण है ।

(३) भेदके दो भेद है :

(१) अताद्भाविक और
(२) प्रादेशिक ।

(४) भेद अनेकों प्रकारसे समझने जैसा है ·

(१) द्रव्यमे कथचित् भेदाभेद,
(२) द्रव्यमे अनेक अपेक्षाओंसे भेदाभेद,
(३) उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे भेदाभेद,
(४) भेद सापेक्ष वा भेद निरपेक्ष (द्रव्यार्थिक नय),
(५) भिन्न द्रव्यमे परस्पर भिन्नता, और
(६) परके साथ एकत्व कहनेमे भेदाभेद ।

सौधर्म इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति (गौतम) आदि गणधारो की प्राप्ति

१ महाश्रवण महावीरके छद्मस्थ अवस्थामे विहार करते हुअे बारह वर्ष पूर्ण हुए ।

२ जृम्भिक गाव के समीप ऋजकुला नदीके किनारे (तटपर) सालवृक्षके नीचे निश्चेष्ट काय क्षपक श्रेणिपर आरोहन कर घातिया कर्मोंको नष्ट कर वैशाख शुक्ल दशमीको केवल ज्ञान प्राप्त किया ।

३ इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने समवसरण धर्म सभाकी (धर्म देशनाकी) रचना की । भगवान् महावीर उसके मध्यभागमे विराजमान हुए । धीरे-धीरे समवसरणकी बारहो सभाए भर गईं ।

४ सभी लोग सतृष्ण लोचनोसे भगवानकी ओर देख रहे थे और कानोसे उनके दिव्य उपदेशकी क्षण क्षण प्रतीक्षा कर रहे थे । किन्तु भगवान महावीर विना कुछ बोले सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान थे । केवल ज्ञान होनेपर भी छयासठ(६६) दिन तक उनकी दिव्यध्वनी नही खिरी।

५ सौधर्म-इन्द्रने अवधि द्वारा (अवधि बलसे) यह समझा कि सभाभूमिमे कोई गणधर नही है और विना गणधरके तीर्थङ्करकी वाणी खिरती नही है ।

६ सौधर्म-इन्द्रने यह भी जान लिया कि गौतम ग्राममे जो इन्द्रभूति नामके ब्राम्हण हैं, वे ही इनके प्रथम गणधर होगे । ऐसा जानकर सौधर्म इन्द्र, इन्द्रभूति को लानेके लिए गौतम ग्रामको गये ।

७ इन्द्रभूति वेद वेदागोको जानने वाले प्रकाण्ड विद्वान थे । उन्हे अपनी विद्याका भारी अभिमान था । उनके पाचसौ शिष्य थे । जब इन्द्र उनके पास पहुचे तब वे अपने शिष्योको वेद वेदागोका पाठ पढा रहे थे । इन्द्र भी एक शिष्य के रूपमे उनके पास पहुचे और नमस्कार कर जिज्ञासुभावसे बैठ गये । इन्द्रभूतिने नये शिष्यकी ओर गम्भीर दृष्टिसे देखकर कहा कि तुम कहासे आये हो ? किसके शिष्य हो ? उनके वचन सुनकर शिष्य वेषधारी इन्द्रने कहा कि मै सर्वज्ञ भगवान महावीर का शिष्य हूँ ।

८ मुझे इस एक श्लोकका अर्थ पूछना है अतएव हे गुरो ! मुझे आप इन छात्रो जैसाही समझकर अर्थ बतावे । क्यो कि मेरे गुरु मौन धारण कर ध्यानमग्न हो गये हैं । अब आपके शिवाय और कौन अर्थ बता सकता है ? मैने आपकी परम कीर्ति सुनी है और यही मेरे आनेका कारण है और मुझे इस श्लोक समझने की उत्कट्-जिज्ञासा है ।

९ स्वभावत किसी शिष्यको मैं निराश नही करना किन्तु मुझे अभी अवकाश नही है, इन्द्रभूतिने कहा । एक बात मानो तो मैं अर्थ तुम्हे तुरन्त बता दूं, यदि तुम जीवनपर्यंत मेरे शिष्यबनकर रहो ।

१० यह सुनकर इन्द्रने निवेदन किया कि मैं यह आपका आदेश लोप नही करूगा । यदि आप उस श्लोकको तात्पर्य नही बतला सके तो, या भ्रान्त अर्थ समझाकर मुझे बहका दें तो आपको भी मेरे गुरूका शिष्य होना पडेगा ।

११ इन्द्रभूति भी शिष्य बनानेका लोभ सवरण नही कर सके । प्रतिबन्धको स्वीकार कर लिया, और श्लोक सुनाने को कहा ।

१२. इन्द्रने उल्लासित होकर श्लोकका पढना आरभ किया
त्रैकाल्य द्रव्य-षट्क नव-पद सहित जीव-षट्काय-लेश्या ।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदा ॥

१३ इन्द्रभूति श्लोकको सुनतेही उलझनमे पड़ गये। जिसे शिष्य बनाना था उससेही उनकी हार हुई। उनने सोचा यदि मै अर्थ नहीं बनाता हूँ तो मेरा उपहास होगा। उनने इन्द्रसे कहा कि मुझे अपने गुरुके पास ले चलो। और वे अपने पाच शिष्योंसहित समवसरणमे गये।

१४ समवसरणमे प्रवेश करते, समय मानस्तम्भ को देखते सबही विप्र चकित हुए। जो उनके हृदयमे ज्ञानका गर्व था वह नष्ट हुआ। वहा सबही को परम शान्ति मिली। उनके हृदयने प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इस मण्डपकी कृति मानवके वशकी नही। उन्होने देखा कि इस सब रचनाए नयनभिराम और अलौकिक है। सबके सब अति विस्मित हुए।

१५ उस समय सौमिलाचार्य एक धनाड्य ब्राह्मणने अपापामे (मध्यमामे) महायज्ञ रचाया था, अनेको वेदाङ्गविज्ञ पण्डितोको बुलवाया था। इनमे ग्यारह तो ऐसे प्रज्ञाशाली प्रतिभायुक्त महान विद्वान थे कि जिनकी छाप सभी पर पडती थी। वे सर्व सरस्वती रूप लगते थे। स्वय बृहस्पति की प्रज्ञा उन्हे अलकृत करती थी। इनमे इन्द्रभूतिका सर्वाधिक आदर होता था।

१६ ग्यारह प्रज्ञाशाली विप्रोके विषयमे

प्रथम प्रज्ञाशाली श्री इन्द्रभूति द्विज थे। गौतम गामनिवासी होने के कारण ये गौतम नामसे प्रसिद्ध थे। इनके पाँचसौ शिष्य थे।

द्वितीय श्रीअग्निभूति थे। इनके भी पाचसौ शिष्य थे। ये भी गौतम ग्रामनिवासी थे।

तृतीय श्रीवायुभूति थे। इनके भी पाचसौ शिष्य थे। ये भी गौतम ग्रामनिवासी थे।

चतुर्थ श्रीव्यक्त थे। इनके भी पाचसौ शिष्य थे। ये कोल्लागवासी थे।

पन्चम श्री-सुधर्मा थे। इनके भी पाचसौ शिष्य थे। ये भी कोल्ला-गवासी थे।

षष्ठक श्रीमडित थें। इनके भी साडेतीनसौ शिष्य थे। ये मौर्यवासी थे।

सप्तम श्रीमौर्यपुत्र थे। इनके भी साडेतीनसो शिष्य थे। ये भी मौर्यवासी थे।

अष्टम श्री अकपित थे। इनके तीनसौ शिष्य थे। ये मिथिलावासी थे।

नवम श्रीअचलभ्राता थे। इनके भी तीनसौ शिष्य थे। ये कौसल वासी थे।

दशम श्रीमेतार्य थे। इनके भी तीनसौ शिष्य थे। ये तुङ्गिकपूरवासी थे।

एकादश श्रीप्रभास थे। इनके भी तीनसौ शिष्य थे। ये राजगृही वासी थे।

१७. ये ग्यारह के ग्यारह परमविज्ञ वेद-ज्ञान-के-परमवेत्ता, पूर्व भवकी गणधर नामकर्म की पुण्याई को लिए हुए, ज्ञानावरण कर्मोका अति क्षयोपशम जिनके सन्मुख, वेद ज्ञानकी पक्तियो द्वारा, प्रत्येकमे उत्पन्न हुई एकएक शका, एक दूसरे से निवारण करानेमे ख्यातिके वश सकुचित, भगवान महावीरके समवसरणमे, एक दूसरेके पश्चात पहुँचे।

१८ ज्योही इन दिव्यात्माओने समवरणमे प्रवेश किया, त्योही भगवान महा-वीरकी दिव्यधीनि खिरी।

(१) इन्द्रभूतिको, आत्माके अस्तित्वकी,

(२) अग्निभुतिको, कर्मके विषयकी,

(३) वायुभूतिको, जीव और पुद्गलके पृथक्ताके विपयकी,

(४) आर्यव्यक्तको, सत् और असत्के विषयकी,

(५) सुधर्माको, योनि परिवर्तन के विषयकी,

(६) मण्डिकको, बधमोक्षके विषयकी,

(७) मौर्यपुत्रको, देव और स्वर्ग के विषयकी,

(८) अकम्पिकको, नरकके विषयकी,

(९) अचलभ्राताको पुण्य तथा पाप के विषयकी,

(१०) मेतार्य को परलोक के विषयकी, और

(११) प्रभासको मोक्ष के विषयकी।

१९ भगवानकी दिव्यध्वनिद्वारा सबो की शकाए दूर हुई। सवही के सव दीक्षा द्वारा शिष्यों समेत मुनि हो गये।

२० दीक्षा लेनेके कुछ समय पश्चात इन्द्रभूतिको सात ऋद्धिया और मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया। वे भगवानके प्रथम गणधर हुए। कालक्रमसे भगवान महावीरके गौतमके अतिरिक्त अन्य दसो भी गणधर हो गये।

२१ भगवान, अर्द्धमागधी भाषामे पदार्थोंका उपदेश करते थे, और गौतम (इन्द्रभूति) गणधर उसे ग्रन्थरूपमे-अङ्ग और पूर्व द्वारा सकलित करते जाते थे।

२२ सौधर्म इन्द्र गणधर देवोंकी स्तुति, पूजा आदि की।

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

सप्तम् प्रकरण 7TH CHAPTER

विश्व The Universe

३ जम्बूद्वीप :

(१) जम्बूद्वीप छह पर्वतो (जो पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हैं) द्वारा सात क्षेत्रोंमे विभाजित हैं। क्षेत्रो और पर्वतोका प्रकार (योजनोमे) निम्नोक्त हैं।

नोट – इस द्वीपके विदेह क्षेत्रमे विद्यमान उत्तरकुरु भोग भूमिमे अनादिनिधन पृथ्वीकायरूप अकृत्रिम परिवार सहित जम्बू वृक्ष है, इसलिये इस द्वीपका नाम जम्बूद्वीप है।

अ न	क्षेत्र और पर्वत	विस्तार	ऊँचाई	चौडाई
१	भरतक्षेत्र	५२६.३१५	—	—
२	हिमवत पर्वत	१०५२.६३१	१००	२५
३.	हैमवत् क्षेत्र	२१०५.२६३	—	—
४.	महा हिमवत पर्वत	४२१०.५२६	२००	५०
५	हरिक्षेत्र	८४२१.०५२	—	—
६	निषध पर्वत	१६८४२.१०५	४००	१००
७	विदेह क्षेत्र	३३६८४.२१०	—	—
८	नील पर्वत	१६८४२.१०५	४००	१००
९	रम्यक क्षेत्र	८४२१.०५२	—	—
१०	रुक्मिपर्वत	४२१०.५२६	२००	५०
११	हैरण्य क्षेत्र	२१०५.२६३	—	—
१२	शिखरी पर्वत	१०५२.६३१	१००	२५
१३	ऐरावत क्षेत्र	५२६.३१५	—	—

इन पर्वतोंके ऊपर क्रमसे (१) पद्म, (२) महापद्म, (३) तिगिञ्छ, (४) केशरि (५) महापुण्डरीक और (६) पुण्डरीक नामके सरोवर हैं।

एक पल्योपम आयुवाली और सामानिक तथा पारिषद जातिके देवो सहित श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी देवियाँ क्रमसे उन सरोवरो के कमलो पर निवास करती है ।

(भरतमे) गगा, सिन्धु, (हैमवतमे) रोहित, रोहितास्या, (हरिक्षेत्रमे) हरित, हरिकान्ता, (विदेहमे) सीता, सीतोदा, (रम्यक्मे) नारी, नरकान्ता, (हैरण्यवत्मे) स्वर्णकूला, रूप्यकूला और (ऐरावतमे) रक्ता-रक्तोदा इस प्रकार ऊपर कहे हुए सात क्षेत्रोमे चौदह नदियाँ बीचमे बहती है ।

पहिले पद्म सरोवरमेसे पहिली तीन, छट्ठे पुडरीक नामक सरोवरसे अतिम तीन तथा वाकीके सरोवरोमेसे दो दो नदियाँ निकली है ।

(ये चौदह नदियाँ दोके समूहमे लेना चाहिये) हर एक दोके समूहमेसे पहिली नदी पूर्वकी ओर वहती है (और उस दिशाके समुद्रमे मिलती है ।)

वाकी रही सात नदियाँ पश्चिमकी ओर जाती है (और उस तरफके समुद्रमे मिलती है ।)

भरत और ऐरावत क्षेत्रके बीचमे पूर्व पश्चिम तक लवा विजयार्ध पर्वत है,
जिनसे गगा-सिन्धु और रक्ता-रक्तोदा नदियोके कारण दोनो क्षेत्रोके छह छह
खड हो जाते है उनमे बीचका आर्यखड और वाकीके पाँच म्लेच्छ खड है ।
तीर्थंकरादि पदवीधारी पुरुष भरत-ऐरावतके आर्य खडमे, तथा विदेह क्षेत्रोमे ही जन्म लेते है ।

४. (अ) भरत और ऐरावत क्षेत्रोमे कालकी विधि :

बीस कोड़ा कोड़ी (२० करोड x २० करोड) सागरका एक कल्प काल होता है ।

कल्पकाल (१) उत्सर्पिणी और (२) अवसर्पिणी मे विभाजित है ।

उत्सर्पिणीके छह भेद हैं

(१) दुषम दुषमा २१ हजार वर्षका है ।
(२) दुषमा २१ हजार वर्ष का है ।
(३) दुषम सुषमा
एक कोडा कोडी सागरमे ४२ हजार वर्ष कमका है ।
(४) सुषम दुषमा दो कोडा कोडी सागर का है ।
(५) सुषमा तीन कोडा कोडी सागर का है और
(६) सुषमा सुषमा चार कोडा कोडी सागरका है ।

अवसर्पिणीके छह भेद हैं

(१) सुषम सुषमा चार कोडा कोडी सागर का है ।
(२) सुषमा तीन कोडा कोडी सागरका है ।
(३) सुषम दुषमा दो कोडा कोडी सागरका है ।
(४) दुषम सुषमा एक कोडा कोडी सागरमे ४२ हजार वर्ष कम का है ।
(५) दुषमा २१ हजार वर्षका है । और
(६) दुषम दुषमा २१ हजार वर्षका है ।

भरत-ऐरावत क्षेत्रमे यह छह भेद सहित परिवर्तन हुआ करता है । असख्यात अवसर्पिणी बीत जानेके बाद एक हुडावसर्पिणीकाल आता है । इस समय हुडावसर्पिणीकाल चलता है ।

भरत-ऐरावत क्षेत्रके, म्लेच्छखडो तथा विजयार्धपर्वतकी श्रेणियोमे अवसर्पिणी कालके चतुर्थ (दुषम सुषमा) कालके प्रारम्भसे अवसर्पिणी कालके अततक परिवर्तन हुआ करता है और उत्सर्पिणीकालके तीसरे (दुषम सुषमा) कालके आदिसे उत्सर्पिणीके अततक परिवर्तन हुआ करता है, इनमे आर्यखण्डोकी तरह छहो कालोका परिवर्तन नही होता और उनमे प्रलयकाल भी नही होता ।

४. (ब) भरत और ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योकी आयु, ऊँचाई और आहार :

काल	आयु		ऊँचाई		आहार
	प्रारभमे	अन्तमे	प्रारभमे	अन्तमे	
१	३ पल्य	२ पल्य	३ कोस	२ कोस	चौथे दिन बेरके बराबर
२	२ पल्य	१ पल्य	२ कोस	१ कोस	एक दिनके अतरसे बेहडा (फल) के बराबर
३	१ पल्य	१ कोटी पूर्व	१ कोस	५०० धनुष	एक दिनके अतरसे आवला बराबर
४	१ कोटी पूर्व	१२० वर्ष	५०० धनुष	७ हाथ	रोज एक बार
५	१२० वर्ष	२० वर्ष	७ हाथ	२ हाथ	कई बार
६	२० वर्ष	१५ वर्ष	२ हाथ	१ हाथ	अति प्रचुरवृत्ति

ोट – तीसरे काल तक भरत-ऐरावत क्षेत्रमे भोगभूमि रहती है ।

भरत और ऐरावत क्षेत्रको छोडकर दूसरे क्षेत्रोंमे एकही अवस्था रहती है-उनमे कालका परिवर्तन नही होता ।

हैमवत्क, हरिवर्षक और देवकुरु (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के मनुष्य, तिर्यच क्रमसे एक पल्य, दो पल्य, और तीन पल्यकी आयुवाले होते हैं ।

इन तीन क्षेत्रोके मनुष्योकी ऊँचाई क्रमसे एक, दो, और तीन कोस की होती है । शरीरका रग नील, शुक्ल और पीत होता है ।

उत्तरके क्षेत्रोमे रहनेवाले मनुष्य भी हैमवतकादिक के मनुष्योंके समान आयुवाले होते है ।

हैरण्यवतक क्षेत्रकी रचना हैमवतकके समान, रम्यकक्षेत्रकी रचना हरि क्षेत्रके समान और उत्तरकुरु (विदेहक्षेत्रके अतर्गत स्थान विशेप) की रचन देवकुरुके समान है ।

भोगभूमि-इस तरह उत्तम, मध्यम, और जघन्यरूप तीन भोगभूमिके दो दो क्षेत्र है । जम्बूद्वीपमे छह भोगभूमियां और अढाई द्वीपमे कुल ३० भोगभूमियाँ है, जहाँ सर्वप्रकारकी सामग्री कल्पवृक्षोसे प्राप्त होती है, उन्हे भोगभूमि कहते है ।

विदेहक्षेत्रोमे मनुष्य और तिर्यंचोकी आयु सख्यात वर्पकी होती है ।
विदेहक्षेत्रमे ऊँचाई पाँचसौ धनुष्य और आयु एक करोड वर्प पूर्वकी होती है ।

५. धातकी खण्ड द्वीप

धातकीखड नामके दूसरे द्वीपमे क्षेत्र, कुलाचार, मेरु, नदी इत्यादी सब पदार्थोंकी रचना जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है ।

धातकीखड लवणसमुद्रको घेरे हुए है । उसका विस्तार चार लाख योजन है । उसके उत्तरकुरु प्रान्तमे धातकी (आँवले) के वृक्ष है इसलिये उसे धातकीखण्ड कहते है ।

६. पुष्करार्द्ध द्वीप

पुष्करार्द्ध द्वीपमे भी सव रचना जम्बूद्वीपकी रचनासे दूनी दूनी है ।

पुष्करवर द्वीपका विस्तार १६ लाख योजन है, उसके वीचमे चूडीके आकार मानुषोत्तर पर्वत पडा हुआ है । जिससे उस द्वीपके दो हिस्से हो गये

है। पूर्वार्धमे सारी रचना धातकी खडके समान है और जम्बूद्वीपसे दूनी है। इस द्वीपके उत्तर कुरुप्रान्तमे एक पुष्कर (कमल) है। इसलिए उसे पुष्करवरद्वीप कहते हैं।

७ **अढाई द्वीपमे मनुष्यक्षेत्र**

मानुषोत्तर पर्वत तक, अर्थात अढाई द्वीपमे ही मनुष्य होते है, – मानुषोत्तर पर्वतसे परे ऋद्धिधारी मुनि या विद्याधर भी नही जा सकते।

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्ध इतना क्षेत्र अढाई द्वीप है, इसका विस्तार ४५ लाख योजन है।

केवल समुद्घात और मारणातिक समुद्घातके प्रसगके अतिरिक्त मनुष्यके आत्मप्रदेश ढाई द्वीपके बाहर नही जा सकते।

८ **नन्दीश्वर द्वीप**

आगे चलकर आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है, उसकी चारो दिशामे चार अजनगिरी पर्वत, सोलह दधिमुख पर्वत और बत्तीस रतिकर पर्वत है। उनके उपर मध्यभागमें जिन मदिर है।

नन्दीश्वर द्वीपमे इसप्रकार बावन जिन मदिर है। बारहवाँ कुण्डलवर द्वीप है, उसमे चार दिशाके मिलाकर चार जिनमदिर ह। तेरहवा रुचकवर नामका द्वीप है उसके बीचमे रुचक नामका पर्वत है, उस पर्वत के उपर चारो दिशामे चार जिन मन्दिर हैं वहाँपर देव जिन पूजनके लिए जाते है, इस पर्वतके ऊपर अनेक कूट है, उनमे अनेक देवियोंके निवास है। वे देविया तीर्थंकर प्रभूके गर्भ और जन्मकल्याणकमे प्रभूकी माताकी अनेक प्रकारसे सेवा करती है।

९ **मनुष्योके भेद**

आर्य और म्लेच्छके भेदमे मनुष्य दो प्रकार के है।

आर्यों के दो भेद है – ऋद्धिप्राप्त आर्य और अनऋद्धिप्राप्त आर्य ।

म्लेच्छ मनुष्य दो प्रकारके है – कर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज, (१) पाच भरतके पाँच खड, पाँच ऐरावतके पाँच खड और विदेहके आठसौ खड, इसप्रकार (२५+२५+८००) आठसौ पचास म्लेच्छ क्षेत्र है, उनमे उत्पन्न हुए मनुष्य कर्मभूमिज है, (२) लवणसमुद्रमे अडतालीस द्वीप तथा कालोदधि समुद्रमे अड्तालीस द्वीप, दोनो मिलकर छियानवे द्वीपोमे कुभोगभूमियाँ मनुष्य है उन्हे अतर्द्वीपज म्लेच्छ कहते है । उन अतर्द्वीपज म्लेच्छ मनुष्योके चेहरे विचित्र प्रकारके होते है, उनके (मनुष्योके) शरीर (धड) और उनके ऊपर हाथी, रीछ, मछली इत्यादिओका सिर, वहुत लम्वे कान, एक पग, पूछ इत्यादि होती है । उनकी आयु एक पल्यकी होती है और वृक्षोंके फल मिट्टी इत्यादि उनका भोजन है ।

१०. कर्मभूमिका वर्णन

पाँच मेरु सबधी पांच भरत, पाँच ऐरावत, देवकुरु, तथा उत्तरकुरु ये दोनों छोडकर पाँच विदेह, इसप्रकार अढाईद्वीपमे कुल पन्द्रह कर्मभूमियाँ है ।

जहाँ असि, मसि, कृषि, वाणिज्य विद्या और शिल्प इन छह कर्मकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभुमि कहते है । विदेहके एक मेरू सबधी बत्तीस भेद है, और पाँच विदेह है, उनके ३२x५=१६० क्षेत्र पाँच विदेहके हुए और पाँच भरत तथा पाँच ऐरावत ये दस मिलकर कुल पन्द्रह कर्मभूमियोके १७० क्षेत्र है । ये पवित्रताके धर्मके क्षेत्र है अंर मुक्ति प्राप्त करनेवाले मनष्य वहाँ ही जन्म लेते है ।

एक मेरुसम्बधी हिमवत्, हरिक्षेत्र, रम्यक, हिरण्यवत, देवकुरु और उत्तरकुरु ऐसी छह भोगभूमियाँ है। इसप्रकार पाँच मेरु सम्बन्धी तीस भोगभूमियाँ है उनमेसे दस जघन्य, दश मध्यम और दस उत्कृष्ट है। उनमे दस प्रकारके कल्प वृक्ष है। उनके भोग भोगकर जीव सक्लेश रहित — साताम्प रहते है।

सर्वार्थसिद्धि पहुँचनेका शुभकर्म और सातवे नरक पहुँचने का पापकर्म, इन क्षेत्रोमे उत्पन्न हुए मनुष्य उपार्जन करते है। असि, मसि, कृषि आदि छह कर्म भी इन क्षेत्रोमे ही होते है, तथा देवपूजा, गरु उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान ये छह प्रकार के शुभ (प्रशस्त) कर्म भी इन क्षेत्रोमे ही उत्पन्न हुए मनुष्य करते है, इसीलिये इन क्षेत्रोको ही कर्मभूमि कहते है।

११ मनुष्योंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य आयु

मनुष्योकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अतर्मुहूर्त की है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि—मनुष्यभव एक प्रकारकी त्रसगति है, दो इद्रियसे लेकर, पचेन्द्रिय तक त्रसगति है। उसका एक साथ उत्कृष्टकाल, दो हजार सागरोपमसे कुछ अधिक है। उसमे सज्ञी पर्याप्तक मनुष्यत्वका काल तो वहुतही थोडा है। मनुष्यभवमे जो जीव सम्यग्दर्शन प्रगट करके धर्मका प्रारभ न करे, तो मनुष्यत्व मिटने के वाद कदाचित त्रसमेही रहे, तो भी नारकी-देव-तिर्यंच और वहुत थोडे मनुष्यभव करके अतमे त्रस पर्यायका काल (दो हजार सागरोपम) पूरा करके एकेद्रियत्व पावेगा। वहा अधिकसे अधिक काल (उत्कृष्ट रूपसे असख्यात पुग्दलपरावर्तन काल) तक रहकर एकेन्द्रिय-पर्याय (शरीर) धारण करेगा।

१२. तिर्यंचोकी आयुस्थिति

तिर्यंचोकी आयु की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति उतनी ही (मनष्यो जितनी) है। तिर्यंचोकी आयुके उपविभाग निम्नप्रकार है –

अ. न	जीवकी जाति	उत्कृष्ट आयु
(१)	पृथ्वीकाय	२२००० वर्ष
(२)	वनस्पतिकाय	१०००० वर्ष
(३)	अपकाय	७००० वर्ष
(४)	वायुकाय	३००० वर्ष
(५)	अग्निकाय	३ दिवस
(६)	दो इन्द्रिय	१२ वर्ष
(७)	तीन इन्द्रिय	४९ दिवस
(८)	चतुरिन्द्रिय	६ मास
(९)	पचेन्द्रिय	
	१ कर्मभूमिके पशु असज्ञी पचेन्द्रिय मछली इत्यादि	१ करोड पूर्व वर्ष
	२ परिसर्र जातिके सर्प	९ पूर्वांग वर्ष
	३ सर्प	४२००० वर्ष
	४ पक्षी	७२००० वर्ष
	५ भोगभूमिके चौपाये प्राणी	३ पल्य

भोगभूमियोको छोडकर इन सब की जघन्य आयु एक अतर्मुहूर्तकी है ।

१३ मध्यलोकके वर्णन का सक्षिप्त अवलोकन

(१) जम्बूद्वीप

मध्य लोकके अत्यन्त वीचमे एक लाख योजन चौडा, गोल (थाली जैसा) जम्बूद्वीप है । जम्बूद्वीपके वीचमे एक लाख योजन सुमेरुपर्वत है, जिसकी एक हजार योजन जमीनके अन्दर जड है, निन्यानबे हजार योजन जमीनके ऊपर है और उसकी चालीस योजन की चुलिका (चोटी) है ।

जम्बूद्वीपके वीचमे पश्चिम पूर्व लम्बे छह कुलाचल (पर्वत) है, उनसे जम्बू द्वीपके सात खण्ड हो गये हैं, उन सात खण्डोंके नाम (१) भरत (२) हैमवत, (३) हरि, (४) विदेह, (५) रम्यक, (६) हैरण्यवत और (७) ऐरावत हैं ।

(२) उत्तरकुरु-देवकुरु

विदेहक्षेत्र मे मेरुके उत्तरदिशामे उत्तरकुरू तथा दक्षिणदिशा मे देवकुरुक्षेत्र हैं ।

(३) लवणसमुद्र :

जम्बूद्वीपके चारो तरफ खाईके माफक घेरे हुए दो लाख योजन चौडा लवणसमुद्र है ।

(४) धातकीखण्डद्वीप

लवणसमुद्रके चारो ओर घेरे हुए चार लाख योजन चौडा धातकी खण्डद्वीप है । इस द्वीपमे दो मेरु पर्वत है, इसलिये क्षेत्र तथा कुलाचल (पर्वत) इत्यादि की सभी रचना जम्बूद्वीपसे दूनी है ।

(५) कालोदधिसमुद्र

धातकीखण्डके चारो ओर घेरे हुए आठ लाख योजन चौडा कालोद समुद्र है ।

(६) पुष्करद्वीप

कालोदधिसमुद्रके चारो ओर घेरे हुए सोलह लाख योजन चौ पुष्करद्वीप है । इस द्वीपके बीचोबीच वलय (चूडी) के आकार, पृथ्वी प एक हरजा बावीस (१०२२) योजन चौडा, सत्रहसौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊँचा और चारसो सत्तावीस (४२७) योजन जमीनके अन्द जडवाला, मानुषोत्तर पर्वत है और उससे, पुष्करद्वीपके दो खण्ड हो गये हैं पुष्करद्वीपके पहिले अर्धभागमे जम्बूद्वीपसे दूनी अर्थात धातकी खण्ड बराब सब रचना है ।

(७) नरलोक (मनष्यक्षेत्र)

जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करार्ध (पुष्करद्वीपका आधा भाग लवणसमुद्र और कालोदधिसमुद्र इतना क्षेत्र नरलोक कहलाता है ।

(८) दूसरे द्वीप तथा समुद्र

पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एक दूसरेसे घिरे हुए, दूने दूने विस्तारवाले मध्यलोकके अन्ततक द्वीप और समुद्र है ।

(९) कर्मभूमि और भोगभूमिकी व्याख्या

जहां असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प, और वाणिज्य, इन छह कर्मोकी प्रवृत्ति हो, वे कर्मभूमियां है। जहांपर उनकी प्रवृत्ति न हो, वे भोगभूमियां कहलाती हैं ।

(१०) पन्द्रह कर्मभूमियाँ

पाँच मेरुसम्बन्धी पाँच भरत, पाँच ऐरावत और (देवकुरु उत्तरकुरुको छोडकर पाँच विदेह, इसप्रकार कुल प्रन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं ।

(११) तीस भोगभूमियाँ

पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत, ये दस क्षेत्र जघन्य भोगभूमियाँ है । पाँच हरि और पाँच रम्यक, ये दश क्षेत्र मध्यम भोगभूमियाँ है और पाँच देवकुरु और पाँच उत्तर कुरु, ये दस क्षेत्र उत्कृष्ट भोगभूमियाँ है ।

(१२) भोगभूमि और कर्मभूमि जैसी रचना

मनुष्यक्षेत्रसे वाहर के सभी द्वीपोंमे जघन्यभोगभूमि जैसी रचना है परन्तु स्वयभूरमणद्वीपके उत्तरार्धमे तथा समस्त स्वयभूरमण समुद्रमे और चारो कोनेकी पृथ्वियोमे कर्मभूमि जैसी रचना है। लवणसमुद्र और कालोदधिसमुद्रमे ९६ अन्तर्द्वीप हैं । वहाँ कुभोग भूमिकी रचना है और वहाँ पर मनुष्य ही रहते है। उन मनुष्योंकी आकृतियाँ अनेक प्रकारकी कुत्सित है।

स्वयभूरमणद्वीपके उत्तरार्धकी, स्वयभूरमणसमुद्रकी और चारो कोनोकी रचना कर्मभूमि जैसी कही जाती है, क्योकि कर्मभूमिमे और वहाँ विकलत्रय (दो इन्द्रियसे चार इन्द्रिय) जीव है, और भोग भूमिमे विकलत्रय जीव नहीं है । तिर्यक लोकमे पचेन्द्रिय तिर्यच रहते है किंतु जलचर तिर्यच लवणसमुद्र कालोदधिसमुद्र, और स्वयभूरमणसमुद्रको छोडकर अन्य समुद्रोमे नहीं हैं । स्वयभूरमण समुद्रके चारो ओर के कोनेके अतिरिक्त भागको तिर्यकलोक कहा जाता है ।

१३ सुमेरु पर्वत

जम्बूद्वीपके मध्य, पृथ्वीतलपर १० हजार योजन विस्तारवाला, १ हजार योजन गहरा और ९९ हजार योजन उत्सेध (ऊँचाई) का सुमेरु पर्वत है। निश्चय

चूलिका (चोटी) चालीस योजन की है । इसकी चोटीसे एक बाल मात्र अन्तरसे ऊर्ध्व लोक प्रारम्भ होता है ।

यह पर्वत तीर्थंकरोके जन्माभिषेकका आसनरूप माना जाता है । इसके शिखरपर पाण्डूकवनमे स्थित पाण्डूक आदि चार शिलाओपर भरत, ऐरावत तथा पूर्व व पश्चिम विदेहोके सर्व तीर्थंकरोका देव लोग जन्माभिषेक करते हैं ।

यह तीनो लोकोका मानदण्ड है तथा इसके मेरु, सुदर्शन, मंदर आदि अनेको नाम हैं ।

यह पर्वत गोल आकार वाला है ।

पृथिवीतलसे ५०० योजन ऊपर जानेपर नन्दनवन है ।

नन्दनवनसे ६२५०० योजन ऊपर जानेपर सौमनस वन है ।

सौमनस वनसे ३६००० योजन ऊपर जानेपर पाण्डुक वन है ।

इस पर्वतके शीश पर पाण्डुक वनके बीचोबीच ४० योजन ऊँची तथा १२ योजन मूल विस्तार युक्त चूलिका है ।

१६ द्वीपोमें कालवर्तन सम्बन्धी विशेषताएँ

असख्यात द्वीपोमे से, मध्यके अढाई द्वीपोमे भरत, ऐरावत आदि क्षेत्र व कुलाचल पर्वत आदि हैं। वहाँ सभी भरत व ऐरावत क्षेत्रोमे षट्काल वर्तन होता है।

हैमवत व हैरण्यवत क्षेत्रोमे जघन्य भोगभूमि, हरि व रम्यक क्षेत्रोमे मध्यम भोगभूमि तथा विदेह क्षेत्रके मध्य उत्तर व देवकुरुमे उत्तम भोग-भूमियोकी रचना है।

विदेहके ३२,३२ क्षेत्रोमे तथा सर्व विद्याधर श्रेणियोमे दुषमादुषमा नामक एक ही काल होता है।

भरत व ऐरावत क्षेत्रोमे एक-एक आर्य खण्ड और पाँच-पाँच म्लेच्छ-खण्ड है। वहाँ सर्व ही आर्य खण्डोमे तो षटकालवर्तन है, परन्तु सभी म्लेच्छ-खण्डोमे केवल एक दुषमा सुषमाकाल रहता है।

सभी अन्तर्द्वीपोमे कुभोगभूमि अर्थात् जघन्य भोगभूमिकी रचना है।

अढाई द्वीपोसे आगे नागेन्द्रपर्वत तकके असख्यात द्वीपमे एकमात्र जघन्य भोगभूमिकी रचना है।

नागेन्द्र पर्वतसे आगे अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीपमे एकमात्र दुखमा काल अवस्थित रहता है।

१७ ऊर्ध्वलोक

पृथ्वितलसे ७९० योजन की ऊँचाईसे प्रारभ करके ९०० योजन ऊँचाई तक के मध्यलोकमे (१) सूर्य, (२) चन्द्रमा, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) प्रकीर्णक रहते है।

सुमेरु पर्वतकी चोटी से एक वाल मात्र अन्तरसे उर्ध्वलोक ारम्भ होकर लोक-शिखर पर्यन्त एक लाख चालीस योजनकम सात राजू प्रमाणऊर्ध्वलोक है।

स्वर्गलोकमे ऊपर ऊपर स्वर्ग पटल स्थित है। इन पटलोमेदो विभाग हैं – कल्प व कल्पातीत। इन्द्र सामानिक आदि १० कल्पनाओ युक्त देवकल्प वासी हैं और इन कल्पनाओसे रहित अहमिन्द्र कल्पवतीतमिानवासी है।

आठ युगलो, रूपसे अवस्थित कल्प पटल १६ है – सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ शुक्र, महाशुक्र, शतार सहस्त्रार, अनात, प्राणत, आरण, और अच्युत।

इनसे ऊपर ग्रैवेयेक, अनुदिश व अनुत्तर ये तीन पटल कल्पातीत है।

प्रत्येक पटल लाखो योजनोंके अन्तरालसे ऊपर-ऊपर अवस्थित है। प्रत्येक पटलमें असख्यात योजनोंके अन्तरालसे अन्य क्षुद्र पटल हैं। सर्वपटल मिलकर ६३ है। प्रत्येक पटलमे विमान है। ये विमान इन्द्रक, श्रेणिवद्ध व प्रकीर्णकके भेदसे तीन प्रकारोमे विभक्त है।

प्रत्येक क्षुद्र पटलमे एक-एक इन्द्रक है और अनेको श्रेणीवद्ध व प्रकीर्णक हैं। प्रथम महापटलमें ३३ और अन्तिममे केवल एक सर्वार्थसिद्धि नामका इन्द्रक है।

सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्डसे २१ योजन ४२५ धनुप ऊपर जाकर सिद्धलोक है। जहाँ मुक्तजीव अवस्थित हैं। तथा इसके आगे लोकका अन्त हो जाता है।

१८. लोक :

१ लोकका लक्षण :

आकाशके जितने भाग मे जीव पुद्‌गल आदि षट् द्रव्य देखे जायें सो लोक है और उसके चारो तरफ शेष अनन्त आकाश अलोक है, ऐसा लोकका निरुक्ति अर्थ है । अथवा षट् द्रव्योका समवाय लोक है ।

जन्म-जरामरणरूप यह ससार भी लोक कहलाता है ।

जहाँ पुण्य व पापका फल जो सुख-दुख वह देखा जाता है सो लोक है इस व्युत्पत्तिके अनुसार लोकका अर्थ आत्मा होता है । जो पदार्थोंको देखे व जाने सो लोक इस व्युत्पत्तिसे भी लोकका अर्थ आत्मा है । आत्मा स्वय अपने स्वरूपका लोकन करता है अत लोक है । सर्वज्ञ के द्वारा अनन्त व अप्रतिहत केवलदर्शन से जो देखा जाये सो लोक है, इस प्रकार धर्म आदि द्रव्योंका भी लोकपना सिद्ध है ।

२. लोकका आकार :

उपरोक्त से अधोलोकका आकार स्वभावसे वेत्रासनके सदृश है, और मध्यलोकका आकार खडे किये हुए आधे मृदगके ऊर्ध्वभागके समान है । ऊर्ध्वलोकका आकार खड़े किये हुए मृदगके सदृश है । यह लोक ताल-वृक्षके आकारवाला है ।

३. लोकका विस्तार :

(१) दक्षिण और उत्तर भाग मे लोकका आयाम जगश्रेणी प्रमाण अर्थात सात राजू है । पूर्व और पश्चिम भाग मे भूमि और मुखका व्यास क्रमसे सात, एक, पांच और एक राजू है । तात्पर्य यह है कि लोककी मोटाई सर्वत्र सात राजू है, और विस्तार क्रमसे लोकके नीचे सात राजू, मध्य लोकमे एक राजू, ब्रह्म स्वर्गपर पांच राजू और लोकके अन्तमें एक राजू है ।

(२) सपूर्ण लोककी ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है । अर्धमृदग सदृश अधो-

लोक जैसे सात राजू ऊँचा है उसी प्रकार ही पूर्ण मृदगके सदृश ऊर्ध्वलोक भी सात ही राजू ऊँचा है । क्रमसे अधोलोककी ऊँचाई सात राजू, मध्यलोककी ऊँचाई १,००,००० योजन, और ऊर्ध्व-लोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है ।

(३) तीनो लोकोमेसे अर्धमृदगाकार अधोलोकमे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा वालुप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातमप्रभा, ये सात पृथिवियाँ एक राजूके अन्तरालसे है । घर्मा, वशा, मेघा, अजना अरिष्टा, मघवी और माघवी ये इन उपर्युक्त पृथिवियोंके अपर-नाम है । मध्यलोकके अधोभागसे प्रारभ होकर पहला राजू शर्करा-प्रभा पृथिवीके अधोभागमे, समाप्त होता है । इसके आगे दूसरा राजू प्रारम्भ होकर वालुका प्रभाके अधोभागमें समाप्त होता है । तथा तीसरा राजू पकप्रभाके अधोभागमे, चौथा धुमप्रभाके अधोभागमें, पाँचवां तम प्रभाके 'अधोभागमे और छठा राजू महातम प्रभाके अन्तमे समाप्त होता है । इससे आगे सातवां राजू लोकके तलभागमे समाप्त होताहै ।

(४) रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भागोमे से खरभाग १६००० योजन पकभागमे ८४००० योज़न और अब्बुहुल भाग ८०,००० योजन मोटे है । लोकमे मेरुके तलभागसे उसकी चोटी पर्यन्त १००,००० योजन। ऊँचा व १ राजू प्रमाण विस्तार युक्त मध्यलोक है । इतनाही तिर्यक् लोक है ।

(५) मनुष्यलोक चित्रा पृथवीके ऊपरसे मेरुकी चोटी तक ९९,००० योजन विस्तार तथा अढाई द्वीप प्रमाण ४५,००,००० योजन विस्तार युक्त है । चित्रा पृथिवीके नीचे खर व पक भागमे १,००,००० योजन तथा चित्रा पृथिवीके ऊपर मेरुकी चोटी तक ९९,००० योजन ऊँचा और एक राजू प्रमाण विस्तार युक्त भावनलोक है । चित्रा पृथिवीसे ७९० योजन ऊपर

जाकर ११० योजन वाहल्य व १ राजू युक्त ज्योतिष लोक है।

(६) मध्यलोकके ऊपरी भागसे सौधर्म विमानका ध्वजदण्ड १,००,००० योजन कम $1\frac{1}{2}$ राजू प्रमाण ऊँचा है। इसके आगे $1\frac{1}{2}$ राजू माहेन्द्र व सनत्कुमार स्वर्गके ऊपरी भागमे, $\frac{1}{2}$ राजू ब्रह्मोत्तरके ऊपरी भागमे, $\frac{1}{2}$ राजू महाशुक्रके ऊपरी भागमे, $\frac{1}{2}$ राजू सहस्रारके ऊपरी भागमे, $\frac{1}{2}$ राजू आनतके ऊपरी भागमे और $\frac{1}{2}$ राजू आरण अच्युतके ऊपरी भागमे समाप्त हो जाता है। उसके ऊपर एक राजूकी ऊँचाईमे नवग्रैवेयक, नव अनुदिशा, और ५ अनुत्तर विमान है। इस प्रकार अर्ध्वलोकमे ७ राजूका विभाग कहा गया है।

(७) अपने-अपने अन्तिम इन्द्रक विमान सम्बन्धी ध्वजदण्डके अग्रभाग तक उन-उन स्वर्गोका अन्त है और कल्पातीत भूमिका जो अन्त है वही लोकका भी अन्त है। लोक शिखरके नीचे ४२५ धनुष और २१ योजन मात्र जाकर अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इद्रक स्थित है। सर्वार्थसिद्धि इद्रकके ध्वजदण्डसे १२ योजन मात्र उपर जाकर अष्टम पृथिवी है। वह ८ योजन मोटी व एक राजू प्रमाण विस्तृत है। उसके मध्य ईषत् प्राग्भार क्षेत्र है। वह ४५,००,००० योजन विस्तार युक्त है। मध्यमे ८ योजन और सिरोपर केवल अगुलप्रमाण मोटा है। इस अष्टम पृथिवीके ऊपर ७०५० धनुष जाकर सिद्धलोक है।

तीन लोक की रचना
अ . लो का का श

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

अष्टम् प्रकरण 8TH CHAPTER

क्षेत्र और कालप्रमाण

क्षेत्रप्रमाण Length-wise Measures,

पुद्गल द्रव्यके उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म भागको परमाणु कहते हैं, जिसका पुन विभाग न हो सके, जो इन्द्रियो द्वारा ग्राह्य नही और जो अप्रदेशी तथा अत, आदि व मध्य रहित है।

एक अविभागी परमाणु जितने आकाशको रोकता है, उतने आकाशको एक क्षेत्रप्रदेश कहते हैं।

(१) अनन्तानन्त अविभागी परमाणुओका : १ अवसन्नासन्न स्कध।

(२) ८ (आठ) अवसन्नासन्न स्कधका १ सन्नासन्न स्कध

(३) ८ (आठ) सन्नासन्न स्कंधका १ तृटरेणु

(४) ८ (आठ) तृटरेणुका १ त्रसरेणु

(५) ८ (आठ) त्रसरेणुका १ रथरेणु

(६) ८ (आठ) रथरेणुका : १ उत्तम भोगभूमि बालाग्र

(७) ८ (आठ) उत्तम भोगभूमि वालाग्रका : १ मध्यमभोग भूमि बालाग्र

(८) ८ (आठ) मध्यम भोगभूमि वालाग्रका १ जघन्य भोगभूमि बालाग्र

(९) ८ (आठ) जघन्य भोगभूमि बालाग्रका १ कर्मभूमि बालाग्र

(१०) ८ (आठ) कर्मभमि वालाग्रका . १ लिक्षा

(११) ८ (आठ) लिक्षाका : १ जू

(१२) ८ (आठ) जूका : १ यव

(१३) ८ (आठ) यवका : १ अगुल (उत्सेधांगुल)

नोट – अगुल तीन प्रकारके लिये गये है .–

(१) उत्सेधागुल, (२) आत्मागुल और (३) प्रमाणागुल ।

उत्सेधागुल, वर्तमान कालके एक धनुषकी, मनुष्योंकी ऊँचाई के अनुसार लिया गया है ।

आत्मागुल, समय समय के भरत और ऐरावत क्षेत्रोकी ऊँचाई के अनुसार लिये गये है ।

प्रमाणागुल, अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्तीकी ५०० धनुष की ऊँचाई के अनुसार लिया गया है ।

(१४) ६ (छह) अगुलका १ पाद

(१५) २ (दो) पाद (१२अगुल) का : १ विहस्ति (वलिस्त)

(१६) २ (दो) विहस्तिका १ हाथ

(१७) २ (दो) हाथका १ किष्कु, गज, ईषु

(१८) २ (दो) किष्कु, गजका · १ दड, युग, धनु, मुसल या नाली

(१९) २००० (दो हजार) दड, युग, धनुका १ कोस

(२०) ४ (चार) कोसका १ योजन

उत्सेधांगुल पर आधारित प्रमाणागुल (५०० उत्सेधागुल = १ प्रमाणागुल)

(१) २ (दो) हाथ १ गज

(२) २ (दो) गज : १ दण्ड

(३) २००० (दो हजार) दण्ड १ कोस

(४) ४ (चार) कोस : १ योजन

(५) ४००० (चार हजार) गज १ कोस

(६) १६००० (सोलह हजार) गज १ योजन (मानव योजन अथवा व्यवहार योजन)

(७) (१६०००×५००) = ८०००००० गज · १ प्रमाण ोजन

(८) १७६० गज १ माइल

(९) ९ ०९०९ माईल : १ मानव योजन

(१०) ४५४५ ४५ माईल १ प्रमाण योजन

तीन लोकका प्रमाण लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई और फैलाव आदि राजूद्वारा प्रदर्शित होनेसे एक राजूका प्रमाण

According to Colebrook, the distance which a Deva flies in Six months at the rate of 20,57,152 yojans in one क्षण i e. instant of time (refer Der Jainism by Von Glassnappin).

तद्नुसार :

(१) महिने x दिन x घटे x मिनिट = मिनिट

६ x ३० x २४ x ६० = २,५९,२००

(२) मिनिट x प्रतिविपलाश (क्षण) = क्षण

२,५९,२०० x ५,४०,००० = १,३९,९६,८०,००,०००

(३) १ योजन ४,५४५ ४५ माइल

(४) योजन x माईल = माइल चाल प्रतिक्षण

२०,५७,१५२ x ४,५४५ ४५ = ९,३५,०६,८१,५५८ ४०

(५) क्षण x माइल

१,३९,९६,८०,००,००० x ९,३५,०६,८१,५५८.४० = १ राजू

माइल

१,३०,८७,९६,१९,६३,६६,१३,१२,००,००० = १ राजू

२ काल प्रमाण Time-wise Measures:

समय – एक परमाणुको मदगतिसे एक आकाशप्रदेशसे दूसरे आकाशप्रदेश जानेके लिये जो काल लगता है, वह समय कहलाता है ।

समयका परिमाण – समय कालका सबसे छोटा, अविभागी परिमाण हैं । असख्यात (अर्थात जघन्य युक्तासख्यात प्रमाण) समयोंकी एक आवली होती है ।

(१) सख्यात आवली $\frac{२८८०}{३७७३}$ सैकेण्ड : १ उच्छ्वास या प्राण

(२) ७ (सात) उच्छ्वास ५ $\frac{१२९५}{३७७३}$ सैकेण्ड १ स्तोक

(३) ७ (सात) स्तोक : ३७ $\frac{१५१९}{३७७३}$ सैकेण्ड लव

(४) ३८½ (साढे अडतीस) लव १४४० सैकेण्ड २४ मिनिट
१ नाली (घडी)

(५) २ (दो) नाली (घडी) ४८ मिनिट १ मुहूर्त

नोट: (१) एक सामान्य स्वस्थ प्राणीके (मनुष्यके), एक बार श्वास लेने और निकालनेमे, जितना समय लगता है, उसे उच्छ्वास कहते हैं।

(२) एक मुहूर्तमे इन उच्छ्वासोकी सख्या ३७७३ है, जो उपर्युक्त प्रमाणानुसार इस प्रकार है –

२ x ३८½ x ७ x ७ = ३७७३

(३) उपरोक्त गणना के अनुसार मनुष्य के एक मिनिटमे ७८ ६ उच्छ्वास होते हैं, ज्यो कि आधुनिक मान्यता के अनुसार है।

दूसरे प्रकारसे कालप्रमाण

(१) असख्यात समय १ निमेष

(२) १५ निमेष १ काष्ठा (२ सैकेण्ड)

(३) ३० काष्ठा १ कला (६० सैकेण्ड) (१ मिनिट)

(४) १ सैकेण्ड ९,००० प्रतिविपलाश

(५) १ मिनिट ५,४०,००० प्रतिविपलाश

(६) ६० मिनिट १ घटा

(७) २४ घटे १ दिन-रात (अहोरात्र)

(८) १५ दिनरात (अहोरात्रि) १ पक्ष

(९) २ पक्ष : १ मास

(१०) २ मास : १ ऋतू

(११) ३ ऋतू १ अयन

(१२) २ अयन १ वर्ष (सवत्सर)

(१३) ५ वर्ष १ युग

(१४) ८४ लाख वर्ष १ पूर्वांग

(१५) ८४ लाख पूर्वांग · १ पूर्व

(१६) ८४ पूर्व · १ पर्वांग

(१७) ८४ लाख पर्वांग · १ पर्व

अन्य प्रकार से कालप्रमाण ·

(१) असंख्यात समय · १ निमेष

(२) १५ निमेष १ काष्टा (२ सैकण्ड)

(३) ३० काष्ठा १ कला (६० सैकण्ड) (१ मिनिट)

---

(४) ६० प्रतिविपलाश · १ प्रतिविपल

(५) ६० प्रतिविपल ; १ विपल

(६) ६० विपल १ पल (२४ सैकण्ड)

(७) ६० पल १ घडी (२४ मिनिट)

नोट :–

६० प्रतिविपलाश X ६० प्रतिविपल X ६० विपल बराबर २,१६,००० प्रतिविपलाश बराबर २४ सैकण्ड १ सैकण्ड बराबर ९००० प्रतिविपलाश

(८) १ मिनिट	५,४०,००० प्रतिविपलांश
(९) ६० मिनिट	१ घंटा
(१०) २४ घंटे	१ दिन-रात (१ अहोरात्रि)
(११) १५ दिनरात (अहोरात्रि)	१ पक्ष
(१२) २ पक्ष	१ मास
(१३) २ मास	१ ऋतु
(१४) ३ ऋतु	१ अयन
(१५) २ अयन	१ वर्ष (सवत्सर)
(१६) ५ वर्ष	१ युग
(१७) ८४ लाख वर्ष	१ पूर्वांग

पूर्वांग आदि – पूर्वांग से अचलप्र (अचलात्म), इस श्रेणी में ३१ सख्यायें है, प्रत्येक ८४ लाख की है। ८४ को इकतीस वार परस्पर गुणा करनेसे अचलप्रकी वर्षोंका प्रमाण आता है, जो नब्बे शून्याकोका होता हैं।

३ व्यवहार पल्य

एक प्रमाण योजन (अर्थात दो हजार कोस) लम्बा चौडा और गहरा कुड बनाकर उसे उत्तम भोगभूमिके सात दिनके भीतर उत्पन्न हुए मेढ़ेके रोमाग्रो (जिनके और खड कैंचीसे न हो सके) से भर दें, और उनमेसे एक एक रोमखडको सौ सौ वर्षमे निकालें। इस प्रकार उन समस्त रोमोको निकालनेमे जितना काल व्यतीत होगा, वह व्यवहारपल्य हैं।

इस व्यवहारपल्यको असख्यात कोटि वर्षों के समयोसे गुणित करनेपर उद्धारपल्यका प्रमाण आता है, जिससे द्वीप-समुद्रोकी गणना की जाती हैं। इस उद्धारपल्यको असख्यात कोटि वर्षोंके समयोसे गुणित करनेपर अद्धापल्यका प्रमाण आता है। कर्म, भव, आयु और काय, इनकी स्थितिके प्रमाणमे इसी अद्धापल्यका उपयोग होता है। जीवद्रव्यकी

प्रमाण-प्ररूपणामे, भी यथावश्यक इसी पल्योपमका उपयोग किया गया है ।

४. कल्पकाल :

एक करोडको, एक करोडसे गुणा करने पर जो लब्ध आता है उसे कोडाकोडी कहते है ।

दस कोडाकोडी, अद्धापल्योपमोका एक अद्धासागरोपम और दस कोडाकोडी, अद्धासागरोपमोकी एक उत्सर्पिणी और इतने ही कालकी एक अवसर्पिणी होती है । इन दोनोको मिलाकर एक कल्पकाल होता है ।

एक उत्सर्पिणी या एक अवसर्पिणी छह काल – सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा, दुषमा दुषमा ।

अवसर्पिणी कालके भेद:

सुषमा सुषमा काल	४ कोडा कोडी, अद्धासागर
सुषमाकाल	३ कोडा कोडी, अद्धासागर
सुषमा दुषमा काल	२ कोडा कोड़ी, अद्धासागर
दुषमा सुषमा काल	१ कोडाकोडी, अद्धासागर ४२००० वर्ष कमका
दुषमाकाल	२१००० वर्ष
दुषमा दुषमा काल	२१००० वर्ष

卐

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

नवम् प्रकरण . 9TH CHAPTER

बीजाक्षर और मङ्गलमन्त्र णमोकार

१ कुछ पूजामें (पूजनमें) बोले जानेवाले मन्त्रोंके (बीजाक्षरोंके) विषयमें

अ असामान्य पूजा-पाठमें आनेंवाले मन्त्र बीजाक्षर

(१) सवौषट् आमन्त्रणवाचक ।

(२) वषट् आव्हानवाचक ।

(३) स्वाहा शातिवाचक, हवनवाचक ।

(४) ओ (ओम्, ॐ) पचपरमेष्ठी वाचक । आत्मवाचक, सुखवाचक, सारतत्त्व ।

(५) ह्री (ह्रीम्) कल्याणवाचक ।

(६) श्री (श्रीम्) कीर्तिवाचक ।

(७) क्षी (क्षीम्) शातिवाचक ।

ब पर्व, नैमित्तिक और तीर्थंकर पूजा-पाठमें आनेवाले बीजाक्षर :

(१) मनके साथ जिन ध्वनियोंका घर्षण होनेसे जो दिव्य ज्योति प्रकट होती है, उन ध्वनियोंके समुदाय को मन्त्र कहा जाता है ।

(२) मन्त्र और विज्ञान दोनोंमे अन्तर है, क्योंकि विज्ञानका प्रयोग जहा भी किया जाता है, फल एक ही होता है । परन्तु मन्त्रमे यह बात नही है, उसकी सफलता साधक और साध्यके ऊपर निर्भर है ।

(३) ध्यानके अस्थिर होने से भी मन्त्र असफल हो जाता है । मन्त्र तभी सफल होता है, जब श्रद्धा, इच्छा और दृढ सकल्प ये तीनो ही यथावत् कार्य करते हो ।

(४) मनोविज्ञानका सिद्धान्त है कि मनुष्यकी अवचेतनामे वहुत-सी आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी रहती है । इन्ही शक्तियोको मन्त्र-द्वारा प्रयोगमे लाया जाता है । मन्त्रकी ध्वनियोंके सघर्षद्वारा आध्यात्मिक शक्तिको उत्तेजित किया जाता है ।

(५) इस कार्य मे अकेली विचार शक्ति ही काम नही करती हैं, इसकी सहायता के लिए उत्कट इच्छा - शक्तिके द्वारा ध्वनिसचालनकी भी आवश्यकता है ।

(६) मन्त्र-शक्तिके प्रयोगकी सफलताके लिए मानसिक योग्यता प्राप्त करनी पडती है, जिसके लिए नैष्ठिक आचारकी आवश्यक्ता है ।

(७) मन्त्रनिर्माण के लिए ओ ह्रा ह्री हू ह्रौं ह्व हा ह स क्ली क्लूं द्रा द्रीं द्रू द्र, श्री क्षी क्ष्वी क्ली हुं अ फट् वषट् सवौषट, घे घै य ठ ख ह ल्वर्यं प व य क्ष त थ द आदि बीजाक्षरोकी आवश्यकता होती है । साधारण व्यक्तिको ये बीजाक्षर निरर्थक प्रतीत होते है, किन्तु हैं ये सार्थक और इनमे ऐसी शक्ति अन्तर्निहित

रहती है, जिसमे आत्मशक्ति या देवताओको उत्तेजित किया जा सकता है। अत ये बीजाक्षर अन्त करण और वृत्तिकी शुद्ध प्रेरणाके व्यक्त शब्द हैं, जिनसे आत्मिक शक्तिका विकास किया जा सकता है।

(८) इन बीजाक्षरोकी उत्पत्ति प्रधानत णमोकारमन्त्रसे ही हुई है क्योकि मातृ का ध्वनियाँ इसी मन्त्रसे उद्भूत हैं। इन सबमे प्रधान 'ओ' बीज है, यह आत्मवाचक मूलभूत है। इसे तेजोविज कामबीज और भवबीज माना गया। पचपरमेष्ठि वाचक होनेसे ओको समस्त मन्त्रोका सारतत्त्व बताया गया है। इसे प्रणववाचक भी कहा जाता है। श्रीको कीर्तिवाचक, ह्रीको कल्याणवाचक, क्षीको शान्तिवाचक, हंको मगलवाचक, ॐ को सुख वाचक, क्ष्वीको योगवाचक, ह्र को विद्वेष और रोषवाचक, प्रो प्रीको स्तम्भनवाचक और क्लीको लक्ष्मीप्राप्तिवाचक कहा गया है। सभी तीर्थंकरोके नामाक्षरोको मगलवाचक एव यक्ष-यक्षिणियोके नामोको कीर्ति और प्रीतिवाचक कहा गया है।

२ **बीजाक्षरोका वर्णन :**

१ ओ—प्रणव, ध्रुव, ब्रह्मबीज या तेजोबीज है।
२ ऐं—वाग्भव बीज,
३ लृ—कामबीज,
४ क्री—शक्तिबीज,
५ ह-स — विषापहार बीज, ह — स — विषापहार बीज
६ क्षी—पृथ्वी बीज,
७ स्वा—वायुबीज,
८ हा — आकाशबीज,
९ ह्रा — मायाबीज या त्रैलोक्यनाथ बीज,
१० क्रो — अकुशबीज,

११. जं – पाशबीज,

१२ फट् – विसर्जनात्मक या चालन – दूरकरणार्थक,

१३ वौषट् – पूजाग्रहण या आकर्षणार्थक.

१४ सवौषट् – आमन्त्रणार्थक,

१५ ब्लूं – द्रावणबीज,

१६ क्लीं – आकर्षणबीज,

१७ ग्लौं – स्तम्भन बीज,

१८ ह्रो – महाशक्तिवाचक,

१९ वषट् – आव्हानन वाचक्,

२० र — ज्वलनवाचक,

२१ क्ष्वी – विषापहारबीज,

२२ ठ – चन्द्रबीज,

२३ घे घै – ग्रहणबीज,

२४ द्र – विद्वेषणार्थक, रोषबीज,

२५ स्वाहा – शान्ति और हवनवाचक,

२६ स्वधा – पौष्टिक वाचक,

२७ नम – शोधनबीज,

२८ ह – गणनबीज,

२९ ह – ज्ञानबीज,

३० य – विसर्जन या उच्चारण वाचक,

३१ नु – विद्वेपणबीज,

३२ झ्वी – अमृतबीज,

३३ क्ष्वी – भोगबीज,

३४ हूं – दण्डबीज,

३५ ख – स्वादनबीज,

३६ झ्रौं – महाशक्तिबीज,

३७ ह् – ल्व्यं – पिण्डवीज,

३८ क्ष्वी – हं – मगल और सुखवीज,

३९ श्री – कीर्तिवीज या कल्याणवीज,

४० क्ली– धनबीज या कुवेरबीज, तीर्थंकरके नामाक्षर शान्तिवीज,

४१ ह्रौ – ऋद्धि और सिद्धिवीज,

४२ ह्रां–ह्रीं–ह्रं, ह्रौं, ह्र – सर्वशान्ति, मागल्य, कल्याण विघ्नविनाशक, सिद्धिदायक,

४३ अ – आकावशवीज या धान्यवीज,

४४ आ – सुखवीज या तेजोवीज,

४५ ई – गुणबीज या तेजोवीज या वायुवीज,

४६ क्षा–क्षी–क्षू–क्षें–क्षैं–क्षो–क्षौं–क्ष – सर्वकल्याण, या सर्वशुद्धिवीज,

४७ व – द्रवणवीज,

४८ य – मगलवीज,

४९ स – शोधनवीज,

५० य – रक्षावीज,

५१ झ – शक्तिवीज और

५२ त–थ–द– कालुष्यनाशक, मगलवर्धक और सुखकारक ।

३ बीजाक्षरोकी उत्पत्ति

इन समस्त वीजाक्षरोकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्र तथा इस मन्त्रमे प्रतिपादित पचपरमेष्ठीके नामाक्षर, तीर्थंकर और यक्ष-यक्षिणियोके नामाक्षरोपर–से हुई है ।

४ मन्त्र के अग

मन्त्रके तीन अग होते हैं, रूप, वीज और फल । जितने भी प्रकारके मन्त्र हैं, उनमे वीजरूप यह णमोकार मन्त्र या इससे निष्पन्न कोई सूक्ष्मतत्व रहता है ।

५ ध्वनिसमूहका मूलश्रोत

जितने सूक्ष्म वीजाक्षर अन्य मन्त्रोमे निहित किये जाते है, उन मन्त्रोकी उतनी ही शक्ति वढती जाती है । अन्तिम ध्वनिसमूहका मूलश्रोत णमोकार मन्त्र है ।

६. सिद्धो वर्ण समाम्नाय· नियम

'सिद्धो वर्णसमाम्नाय' नियम वतलाता है कि वर्णोका समूह अनादि है । णमोकार मन्त्रमे कण्ठ, तालु, मूर्धन्य, अन्तस्थ, ऊष्म, उपध्मानीय, वर्त्स्य आदि सभी ध्वनियोंके वीज विद्यमान है । वीजाक्षर मन्त्रोके प्राण हैं । ये वीजाक्षर ही स्वय इस वातको प्रकट करते है कि इनकी उत्पत्ति कहीसे हुई है ।

७ वीजकोश

वीजकोशमे वताया गया है कि ॐ वीज समस्त णमोकार मन्त्रसे, ह्रींकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम पदसे, श्रींकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके द्वितीयपदसे, क्षी और क्ष्वीकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम, द्वितीय, और तृतीय पदोसे, क्लीकी उत्पत्ति प्रथमपदमे प्रतिपादित तीर्थंकरोकी यक्षिणियोंसे, अत्यन्त शक्तिशाली सकल मन्त्रोमे व्याप्त 'ह्रँ' की उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम पदसे, द्रा-द्रीकी उत्पत्ति उक्त मन्त्रके चतुर्थ और पचमपदसे हुई है । ह्रा ह्री ह्रौ ह्रँ ह्र ये वीजाक्षर प्रथम पदसे, क्षा क्षी क्षू क्षें क्षैं क्षौं क्ष वीजाक्षर प्रथम, द्वितीय और पचमपदसे निष्पन्न हैं । णमोकार मन्त्रकल्प, भक्तामर, यन्त्र-मन्त्र, कल्याणमन्दिर यन्त्र-मन्त्र, यन्त्र-मन्त्र संग्रह, पद्मावती मन्त्र कल्प आदि मान्त्रिक ग्रन्थोंके अवलोकनसे पत्ता लगता है कि समस्त मन्त्रोंके रूप, वीज पल्लव इसी महामन्त्रसे निकले हैं । ज्ञानार्णवमे षोडशाक्षर, षडक्षर, चतुरक्षर, द्व्यक्षर, एकाक्षर, पचाक्षर, त्रयोदशाक्षर, सप्ताक्षर, अक्षरपक्ति इत्यादि नाना प्रकारके मन्त्रोकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे मानी है ।

८ षोडशाक्षरी महाविद्या पचपदो और पंचगुरुओंके नामोसे उत्पन्न हुई है' इसका ध्यान करनेसे सभी प्रकारके अभ्युदयोकी प्राप्ति होती है । यह सोलह अक्षरका

मन्त्र यह है " अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नम । " ज्यो व्यक्ति एकाग्र मन होकर इस सोलह अक्षर के मन्त्रका ध्यान करता है, उसे चतुर्थ तप – एक उपवासका फल प्राप्त होता है ।

१ एकाक्षरी मन्त्र – ॐ ओ, ओम्, अ, सि । जो जीव (प्राणी) मन, वचन और काय द्वारा इनमेके कोई भी एक वर्णका चितवन करे तो कर्मोकी निर्जरा-रूप फलको प्राप्त होता है ।

२ द्वयाक्षरी मन्त्र – ॐ ह्रीं । सिद्ध । अ सि ।

यह मन्त्र दो अक्षरोका युग्म है। श्रुतस्कन्ध (द्वादशाग शास्त्र) का सारभूत है, मोक्षको देनेवाला है, ससारसे उत्पन्न हुए समस्त क्लेशोको नाश करनेमे समर्थ है ।

४ चतुराक्षरी मन्त्र – अरिहत । अ सि साहू ।

यह चार अक्षरोका मन्त्र है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलको देनेवाला है ।

५ पंचाक्षरी मंत्र – अ सि आ उ सा । णमो सिद्धाणं ।

यह मन्त्र कर्मकलकोके समूहरूप अधकारका विध्वसन करनेको सूर्यके समान है, पवित्र है और पुण्यशासन है।

६ षडाक्षरी मंत्र – अरिहतसिद्ध। अरिहत सि सा। ॐ नम सिद्धेभ्य । नमोर्हत्सिदेभ्य ।

यह मन्त्र पुण्यको उत्पन्न करनेवाला तथा पुण्यसे शोभित है ।

७ सप्ताक्षरी मन्त्र – ॐ ह्रीं श्री अह नम ।

यह मन्त्र सकल ज्ञानके साम्राज्य (केवलज्ञान) के देखनेमे प्रवीण है और जगत्त्रयके नाथोके चूडारत्न समान है तथा कृपाका स्थान है ।

१३ त्रयोदशाक्षरी मन्त्र – ॐ अर्हंत सिद्ध सयोगकेवलीस्वाहा ।

यह मन्त्र अतिशयरूप मोक्ष प्राप्तिके लिए सीढियो के समान है ।

१६ षोडशाक्षरी मन्त्र – अरिहत–सिद्ध–आइरिय–उवज्झाय–साहू अथवा अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नम. ।

यह मन्त्र पञ्च पदो और पच परमगुरुके नामोसे उत्पन्न है । और पच परमेष्ठी रूप है । सिद्धपद पाने मे सहायक है ।

९ णमोकार मंत्र

णमो अरिहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्व - साहूण ॥

यह णमोकार मन्त्र, जिसमे पचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है, सभी प्रकारके पापोको नष्ट करनेवाला है ।

इस महामन्त्रके गुण अचिन्त्य हैं । इसमे इस प्रकारकी विद्युत् शक्ति वर्तमान है, जिससे इसके उच्चारणमात्रसे पाप और अशुभका विध्वस हो जाता है तथा परम विभूति और कल्याणकी प्राप्ति होती है । इसकी अचिन्त्य महिमाका वर्णन निम्नोक्त है –

मन्त्र ससारसार त्रिजगदनुपम सर्वपापारिमन्त्र
ससारोच्छेदमन्त्र विपमविषहर कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ।
मन्त्र सिद्धिप्रदान शिवसुखजनन केवलज्ञानमन्त्र
मन्त्र श्रीजैनमन्त्र जप जप जपित जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥१॥

आकृष्टि सुरसम्पदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता
उच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मैनसाम् –
स्तम्भ दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहन
पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥२॥

अपवित्र पवित्रो वा सुस्थितो दु स्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत् पञ्चनमस्कर सर्वपापै प्रमुच्यते ॥३॥

अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा ।
य स्मरेत्परमात्मान स वाह्याभ्यन्तरे शुचि ॥४॥

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशन ।
मङ्गलेपु च सर्वेपु प्रथम मङ्गल मत ॥५॥

विघ्नौघा प्रलय यान्ति शाकिनीभूतपन्नगा ।
विष निर्विपता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥६॥

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥७॥

यह महामन्त्र ससारका सार है। जन्म-मरणरूप ससारसे छूटनेका सुकर अवलम्वन और सारतत्त्व है, तीनो लोकोमे अनुपम है – इस मन्त्रके समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मन्त्र नही है, अत यह तीनो लोकोमे अद्भूत है, समस्त पापोका अरि है ।

यह मन्त्र सभी प्रकारकी सिद्धियोको देनेवाला है । यह मन्त्र केवल ज्ञानमन्त्र कहलाता है अर्थात इसके जपसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, तथा यही मन्त्र निर्वाण सुखका देनेवाला भी है ।

पवित्र या अपवित्र अथवा सोते, जागते, चलते, फिरते, किसी भी अवस्थामे इस णमोकार मन्त्रका स्मरण करनेसे आत्मा सर्व पापोसे मुक्त हो जाती है ।

इसका स्मरण किसी भी अवस्थामे किया जा सकता है । यह णमोकार मन्त्र अपराजित है, अन्य किसी मन्त्र-द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत – अवरुद्ध नही की जा सकती है, इसमे अद्भूत सामर्थ्य निहित है ।

यह मन्त्र सम्पत्ति प्राप्त करनेका एक प्रधान साधन है, तथा सम्यक्त्वकी वृद्धिमे सहायक होता है ।

इस महामन्त्रके महत्वके विषयमे निम्नोक्त गाथा (४६) ज्ञानार्णव मे है –

कृत्वा पापसहस्त्राणि हत्वा जन्तुशतानि च ।
अमु मन्त्र समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिवं गता ॥

भैया भगवतीदासजी कहते है –

जहाँ जपे णमोकार वहाँ अघ कैसे आवे ।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ वितर भग जावे ॥
जहाँ जपें णमोकार वहाँ सुख सम्पति होई ।
जहाँ जपें णमोकार वहाँ दुख रहे न कोई ॥

णमोकार जपत नवनिधि मिलै, सुख समुह आवे निकट ।
'भैया' नित जपवो करो, महामन्त्र णमोकार है ॥

यह णमोकार मन्त्र सभी प्रकारकी आकुलताओको दूर करनेवाला और सभी प्रकारकी शान्ति एव समृद्धियोका दाता है ।

एसो पच - णमोयारो सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसिं पढम होई मगल ॥

यह पञ्च नमस्कार मन्त्र सब पापोका नाश करनेवाला और सब मगलो मे पहलामगल है ।

अर्हमित्यक्षर ब्रह्मवाचक परमेष्ठिन ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज सर्वत प्रणमाम्यहम् ॥

'अर्हम्' ये अक्षर परब्रह्म परमेष्ठीके वाचक हैं और सिद्धसमूहके सुन्दर बीजाक्षर है, हमारा इनको मन, वचन और कायसे नमस्कार हो ।

— कविवर दौलतरामजी कहते हैं

"प्रात काल मन्त्र जपो णमोकार भाई ।
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदयमे धराई ॥

नर भव तेरो सुफल होत पातक टर जाई ।
विघन जासो दूर होत सकटमे सहाई ॥१॥

कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि जाई ।
ऋद्धि सिद्धि पारहस तेरो प्रकटाई ॥२॥

मन्त्र जन्त्र तन्त्र सव जाहीसे वनाई ।
सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई ॥३॥

तीन लोक माहि सार वेदनमे गाई ।
जगमे प्रसिद्ध धन्य मगलीक भाई ॥४॥"

१० वीजाक्षर और ऋषि मडल

ऋषिमडलका वीजमन्त्र

पूर्वं प्रणवत सात सरेफो द्वित्रिपचपान् ।
सप्ताष्टदशसूर्याकान् श्रितो विदुस्वरान् पृथक् ॥

पूज्यनामाक्षराद्यस्तु पञ्च दर्शनवोधक ।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये ह्री सातसमलकृतम् ॥

नोट :— देवनागरी वर्णमालाके वर्ण

(१) ओ प्रणव, ध्रुव, व्रह्मवीज या तेजोवीज हैं ।

(२) ह शान्ति, पौष्टिक और मागलिक कार्योका उत्पादक, साधनाके लिए परमोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मीकी उत्पत्तिमे साधक

सन्तान प्राप्तिके लिए अनुस्वार युक्त होनेपर जाप्यमे सहायक, आकाश तत्त्वयुक्त, कर्मनाशक, सभी प्रकारके बीजोका जनक ।

(३) र अग्निबीज, कार्यसाधक, समस्त प्रधान बीजोका जनक, शक्ति का प्रस्फोटक और वर्द्धक।

(४) आ अव्यय, शक्ति और बुद्धिका परिचायक सारस्वतबीजका जनक, माया बीजके साथ कीर्ति, धन और आशाका पूरक ।

(५) इ गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्तिका साधक, कोमल कार्य साधक, कठोर कर्मोका बाधक, वह्निबीजका जनक ।

(६) उ उच्चाटन बीजोका मूल, अद्‌भुत शक्तिशाली, श्वासनलिका-द्वारा जोरका धक्का देनेपर मारक ।

(७) ऊ उच्चाटक और मोहक बीजोका मूल, विशेष शक्तिका परिचायक कार्यध्वसके लिए शक्तिदायक ।

(८) ए निश्चल, पूर्ण, गतिसूचक, अरिष्ट निवारण बीजोका जनक, पोषक और सवर्द्धक ।

(९) ऐ उदात्त, उच्चस्वरका प्रयोग करनेपर वशीकरणबीजोका जनक, पोषक और सवर्द्धक । जलबीजकी उत्पत्तिका कारण , सिद्धिप्रद कार्योका उत्पादकबीज, शासन देवताओका आव्हानन करनेमे सहायक, क्लिष्ट और कठोर कार्योके लिए प्रयुक्त बीजोका मूल, ऋण विद्युत्का उत्पादक ।

(१०) ओ मारण और उच्चाटनसम्बन्धी बीजोमे प्रधान, शीघ्र कार्य साधक, निरपेक्षी अनेक बीजोका मूल ।

(११) अ शान्तिबीजोमे प्रधान, निरपेक्षावस्थामे कार्य असाधक, सहयोगीका अपेक्षक ।

११ स्वर ध्वनियो पर प्रकाश

स्वर "अ, ई, ओ, और अ" के ध्वनियोकी शक्तिपर प्रकाश –

(१) अ अव्यय, व्यापक, आत्माके एकत्वका सूचक, शुद्ध-बुद्ध ज्ञानरूप, शक्ति द्योतक, प्रगव बीजका जनक ।

(२) ई अमृतबीजका मूल, कार्यसाधक, अल्पशक्तिद्योतक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भक मोहक, जृम्भक ।

(३) अ। अनुदात्त निम्न स्वरकी अवस्थामे माया बीजका उत्पादक, लक्ष्मी और श्रीका पोषक, उदात्त, उच्च स्वरकी अवस्थामे कठोर कार्योंका उत्पादक बीज, कार्यसाधक, निर्जराका हेतु, रमणीय पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए प्रयुक्त होनेवाले बीजोंमे अग्रणी, अनुस्वरान्त बीजोका सहयोगी।

(४) अं स्वतन्त्र शक्तिरहित, कर्माभावके लिए प्रयुक्त ध्यानमन्त्रोमे प्रमुख, शून्य या अभावका सूचक, आकाश बीजोका जनक, अनेक मृदुल शक्तियोका उद्घाटक, लक्ष्मी बीजोका मूल ।

१२ बीज सज्ञक .

ककारसे लेकर हकार पर्यन्त व्यजन बीजसज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्तिरूप हैं । मन्त्रबीजोकी निष्पत्ति बीज और शक्ति सयोगसे होती है ।

१३ मन्त्र विधि

प्रणव–अक्षर 'ओ।'

रेफसहित 'ह्‌कार 'र्ह'

(१) उपरोक्त 'र्ह विंदुसहित और 'आ'कार की मात्रासे युक्त 'र्हा'

(२) उपरोक्त 'र्ह विंदुसहित और 'इ' कार की मात्रासे युक्त 'र्हि'

(३) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'उ'कार की मात्रासे युक्त 'ह्रुः

(४) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'ऊ'कार की मात्रासे युक्त 'न्ह

(५) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'ए'कार की मात्रासे युक्त 'न्हें'

(६) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'ऐ'कार की हमात्रा से युक्त 'न्हैं'

(७) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'औ'कार की मात्रासे युक्त 'न्हौं'

(८) उपरोक्त 'न्ह्' बिंदुसहित और 'अ' कार की मात्रासे युक्त 'न्ह'

ओ न्हा न्हि न्हु न्हू न्हे न्हैं न्हौं न्ह अब

पचपरमेष्ठियोके नामके आद्याक्षरोंको (अ-सि-आ-उ-सा को) जोड दें। अब सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्येभ्यो को सम्मिलित कर दें। अब 'न्हीं' बीजाक्षर को जोड दें, पश्चात 'नम' शब्द जोड दें। अब यह सम्पूर्ण मन्त्र निम्न प्रकार हो गया –
"ओ न्हा न्हि न्हु न्हू न्हें न्हैं न्हो न्ह अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र्येभ्यो न्हीं नम
इसमे शुभ बीजाक्षर नौ है। और शुद्ध अक्षर अठारह हैं। कुल २७ अक्षर वाला यह महामन्त्र है। प्रथम उच्चारणीय (ओ) प्रणव बीजाक्षर सर्व मन्त्रो के लिए मूल है, वह गिनतीमे नही है।

१४ श्री की उत्पत्ति

श् निरर्थक, सामान्य बीजोका जनक या हेतु, उपेक्षाधर्मयुक्त शान्तिका पोषक।

र् अग्निबीज, कार्य साधक, समस्त प्रधान बीजोका जनक, शक्तिका प्रस्फोटक और वर्द्धक।

ई अमृतबीजका मूल, कार्यसाधक, अल्पशक्ति-द्योतक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भक मोहक, जृम्भक।

श् + र् + ई + श्री

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

दशम् प्रकरण : 10TH CHAPTER

चौबीस तीर्थङ्कर

५ भगवान महावीरके मोक्ष के पश्चात आचार्य परम्परा –

चतुर्थ कालके ३ वर्ष ८½ मास शेष रहने पर भगवान महावीर के मोक्ष होने के पश्चात पचम कालमे निम्नाकित केवली, श्रुतकेवली आदि हुए

अ न	आचार्य	वर्ष पश्चात	स्थिति
१	गौतम	१२	केवली
२	सूधर्म	२४	"
३	जम्बूस्वामी	६२	"
४	विष्णु	७६	श्रुतकेवली
५	नन्दिमित्र	९२	"
६	अपराजित	११४	"
७	गोवर्धन	१३३	"
८	भद्रबाहु	१६२	"
९	विशाखाचार्य	१७२	दशपूर्वधारी
१०	प्रोष्ठिल	१९१	"
११	क्षत्रिय	२०८	"
१२	जयसेन	२२९	"
१३	नागसेन	२४७	"
१४	सिद्धार्थ	२६४	"
१५	धृतिषेण	२८२	"
१६	विजय	२९५	"
१७	बुद्धिलिंग	३१५	"

अन	आचार्य	वर्ष पश्चात	स्थिति
१८	देव	३२९	दश पूर्वधारी
१९	धर्मसेन	३४५	"
२०	नक्षत्र	३६३	ग्यारह अगधारी
२१	जयपाल	३८३	"
२२	पाडव	४२२	"
२३	ध्रुवसेन	४३६	"
२४	कस	४६८	"
२५	सुभद्र	४७४	दश, नव, व आठ अगधारी
२६	यशोभद्र	४९२	"
२७	भद्रवाहु	५१५	"
२८	लोहाचार्य	५६५	"
२९	अर्हद्वलि	५९३	एक अगधारी
३०	माघनन्दि	६१४	"
३१	धरसेन	६३३	"
३२	पुष्पदन्त	६६३	"
३३	भूतवलि	६८३	"

स्वामि धरसेनाचार्य को यह भय हुआ की कही अग श्रुतका (श्रुतस्कन्धका) विच्छेद न हो जाय, उन्होंने आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि को शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार मे ग्रन्थ का पढ़ाना प्रारम्भ किया। इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान से उन दोनोने आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के पूर्वान्हि काल मे ग्रन्थ समाप्त किया। आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतवलि भी श्रुत के कर्ता कहे जाते हैं।

द्वादशांगके चार महा अधिकार वर्णित किये गये हैं उनमे पहले अनुयोगका नाम प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोगमे तीर्थंकर आदि सत्पुरुषोंके चरित्रका वर्णन होता है। दूसरे महाधिकारका नाम करणानुयोग है। इसमे तीनो लोकका वर्णन है। तीसरे महाधिकारका नाम चरणानुयोग है। इसमे मुनि और श्रावकोके चारित्रकी शुद्धिका निरूपण होता है। चौथा महाधिकार द्रव्यानुयोग है। इसमे प्रमाण नय निक्षेप तथा सतसंख्या क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व, निर्देश,, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान आदि के द्वारा द्रव्योका निर्णय किया जाता है।

इस तरह मूलग्रन्थकर्ता वर्द्धमान भट्टारक हैं। अनुग्रन्थकर्ता गौतमस्वामी है और उत्तरग्रन्थकर्ता राग, द्वेष और मोह से रहित पुष्पदन्त, भूतबलि इत्यादि अनेक आचार्य है।

कुन्दकुन्द आचार्य देव विक्रम सम्वत के आरंभ मे हुए। विक्रम सम्वत भगवान महावीर के मोक्ष के ४७० वर्ष पश्चात शुरु हुआ। इसके अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द देव का स्थान सुभद्राचार्य के पहिले होना चाहिये। याने भगवान महावीर के ८७० वर्ष पश्चात। किन्तु इनके पूर्व आचार्य धरसेन का कथन आता है, इस कथन के अनुसार भगवान महावीर के करीब ६४० वर्ष पश्चात आचार्य कुन्दकुन्द देव जो भी हो, दिगम्बर जैन परम्परामे भगवान कुन्दकुन्द देव का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। जैसे —

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

आचार्य कुन्दकुन्द देव कलिकाल सर्वज्ञ है। 'पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्दपिच्छाचार्य' इन पाँचो नामोंसे सुशोभित आकाश गमन ऋद्धिके धारक थे। आचार्य श्री पूर्व विदेह मे जाकर भगवान सीमंदर के दर्शन कर श्रुतज्ञान प्राप्त कर लौटे थे।

६ वीरनिर्वाण, विक्रम सम्वत और इस्वी सन मे अन्तर :—

भगवान महावीर को मोक्ष गये के २५०० वाँ वर्ष, दिनाक कार्तिक (आश्विन) कृष्ण चतुर्दशी/अमावस को पूर्ण होता है।

उत्तर भारत मे विक्रम सम्वत चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे बदलता है और दक्षिण भारत मे कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से बदलता है। तद्नुसार उक्त दिन उत्तर भारत के अनुसार विक्रम सम्वत २०३१ रहेगा। और दक्षिण भारत के अनुसार विक्रम सम्वत २०३० रहेगा।

उत्तर भारत मे मास का आरंभ कृष्ण दक्ष की प्रतिपदा से होता है और दक्षिण भारत मे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदासे होता है गिनती मे यह अन्तर रहेगा। उत्तर भारत के अनसार २५०० वाँ वर्ष कार्तिक कृष्ण चवदस/अमावस, विक्रम सम्वत २०३१ रहेगा और दक्षिण भारत के अनुसार आश्विन कृष्ण चवदस/अमावस विकम २०३० रहेगा। पहिले उत्तर भारतमे आगेका विक्रम सम्वत चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आता है और पश्चात विक्रम सम्वत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदासे दक्षिण भारत मे आता है।

भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के दिन कार्तिक (आश्वीन) कृष्ण चवदश/अमावस विक्रम सम्वत २०३१/२०३० को ईस्वी सन १९७४ के नवम्बर मासकी तेरह तारीख है और भगवान महावीरके २५०० वर्ष पूर्ण होते हैं।

इस प्रकार भगवान महावीर के ४६९/४७० वर्ष पश्चात विकम सम्वत आरंभ होता है और ५२६/५२७ वर्ष पश्चात ईस्वी सन आरंभ होता है। विक्रम सम्वत के ५७ वर्ष पश्चात ईस्वी सन आरंभ होता है। मास और दिनोंका अन्तर यहाँ छोड दिया गया है।

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

एकादश प्रकरण : 11TH CHAPTER

BHAGWAN VAHUVALI

AN IMAGE OF VAHUVALI BY CHAMUNDA RAYA

1 In 981 A D the 57 feet high colossal image of Bhagwan Vahuvali was established and consecrated on the summit of the Vindhyagiri Hill at Sravana Belgola, Mysore State now Karnatak

2 The Colossus is about 56-1/2 feet in height, with a width of 13 feet across the hips and is cut out of a solid block of *Gneiss apparently wrought in Situ*

3 The image is on the top of the very steep Hill Vindhyagiri It is nude and stands erect facing the north The figure has no support above the thighs Up to that point it is

represented as surrounded by ant-hills from which emerge serpents a climbing plant twines itself round both legs and both arms terminating at the upper part of the arm in a clustre of fruit or berries The pedestal on which the feet stand is carved to represent an open lotus

4 The above image of Vahuvali or Bhujabali more commonly known as Gommat Svami or Gommatesvara was erected by Chamunda Raya Later on imitating, Chamunda Raya, the chief Vira-Pandya erected another statue of Gommatesvara at Karkala (Karnatak) in A D 1432, and afterwards a similar figure of Gommatesvara was established by the chief Timmaraja at Yenur (Karnatak), in A D. 1604.

5 The image erected by Chamunda Raya "is not only the most ancient in date and considerably the highest of the three, but from its striking position on the top of the very steep hill and consequently the greater difficulty involved in its execution, is by far the most interesting"

6 These "colossal monolithic nude Jain statues are among the wonders of the world" These are "undoubtedly the most remarkable of the Jain statues and the largest free-standing statues in Asia All three being set on the top of eminences, are visible for miles around, and, in spite of their formalism, command respectful attention by their enormous mass and expression of dignified serenity
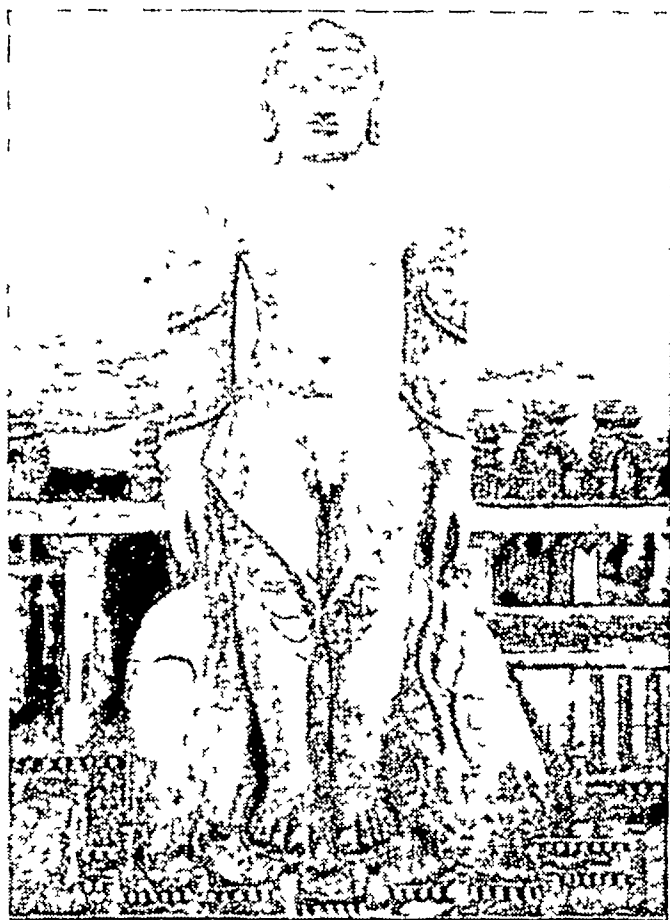
VAHUVALI GOMATESHWARA.

7. Vahuvali or Bhujavali, also known as Gommatesvara, who was the son of Adijina Risabhanatha, the first Tirthankara of the Jainas Risabhadeva, according to tradition, was a king, and had two wives, Nanda (some say Sumangala) and Sunanda Nanda or Sumangala gave birth to the twins Bharata and Brahmi, a boy and a girl, the former of whom was placed on the throne by Risabhadeva, when he retired to seek absolute knowledge Vahuvali and his sister, Sundari, were born of Sunanda, and the former ascended the throne of Taksa-sila (modern Taxila), when his father distributed his kingdom among his sons.

8 Bharata had possession of a wonderful Chakra (discus), which could not be withstood by any warrior in fight With the help of his Chakra, Bharata conquerred the earth and returned to his capital But the discuss would not enter the capital (or, according to another account, the armoury) Bharata then took this as a sign that there was still another territory on earth which had not been conquerred by him, and after reflection, came to the conclusion that there was only the kingdom of Taksa-sila, ruled by his brother, Bhujavali, which had not been subdued by him

9 Bharata then eclared war on his brother, Bhujavali, and in the terrible fight that followed, Bhujavali was victorious Even the discuss of Bharata could do no harm to Bhujavali But Bhujavali, though victorious, suddenly became lost in meditation, thinking of the vanity of this world

10 Bharata made obeisance to Bhujavali and returned to his place, but Bhujaval went to the summit of Kailasa mountain, remained standing there (or, according to another account, stood on the very field of battle) in a statuesque posture for one year and "the creepers, wreathing round the boughs of the trees on the bank clung to his neck and crowned his head with their canopy and the blades of Kusa-grass grew between his feet, and he became in appearance like an ant-hill" Subsequently, Bhujavali obtained absolute knowledae and became one of the Kevalis

AN IMAGE OF VAHUVALI BY BHARAT

11 In an inscription, however we read that Puru was the father of Vahuvali or Bhujavali and Bharata Then the inscription goes on to say that "Bharata, the son of Puru Deva, surrounded by all the kings conquerred by him, erected, in glee, an image, representing the victorious Vahuvali Kevali, which was 525 bows in height, near Podanapura After a long time, innumerable Kukkuta-sarpa (dragons having the body of a fowl and the head and neck of snake, terrifying the world, grew up in the place surrounding (the image of) that Jina for which the image became known as Kukkutesvara"

ABSORPTION IN PENANCE

12 In the light of these traditions, we shall be able to understand the significance of the sculptured ant hills, from which serpents are issuing, and the climbing plant which twines round the legs and arms of the images of Gommatesvara at Sravana Belgola, Karkala and Yenur "These details are identical in all three, and supposed to represent so rigid and complete

an absorption in penance that ant-hills had been raised around his feet and plants had grown over his body, without disturbing the profoundness of the ascetic's abstraction from mundane affairs "

THE EXACT TIME OF THE ESTABLISHMENT OF THE IMAGE OF VAHUVATI BY CHAMUNDA RAYA

12-A According to Vahuvali Charitra, the exact Naksatra was Mrigasira, Sunday 2nd of April 980 A D

CHAMUNDARAYA OR CHAMUNDARAJA. GANGA-DYNASTY

13 Chamundaraya or Chamundaraja was the worthy minister of king Marshimha II of the Ganga Dynasty

14 Among the ancient royal Dynasties of India, the Gangas of the West were devoted followers of Jainism. There is a tradition that a Jaina Acharya, named Simhanandi, belonging to the Nandigana, helped Sivamara, the first king of the Ganga Dynasty, to rise to the throne The kings of the Ganga Dynasty were the promoters and protectors of Jainism.

15 During the period from the fourth to the twelfth Century A D, the kings of the Ganga Dynasty built Jaina temples, consecreated Jaina images of worship, hollowed out caves for Jaina ascetics and made grants for their protection

16 The heroism of Chamundaraya enabled the king Marshimha II to win his great battles against Vajjala and those fought at Gonur and Uchchangi

17 After the death of Marasimha II of the Ganga Dynasty Panchaladeva ascended the throne, and he was succeeded by king Rachamalla or Rajamalla II Chamunda Raja was Mahamatya (highest Minister) of Rachamalla or Rajamalla II He was second in glory to king Rachamalla or Rajamalla

18 According to Vahuvali-Charitra, king Rachmalla or Rajamalla was a devotee of the great sage Simhanandi

19 Chamundaraya composed a work called Chamunda Raya Purana, containing an epitome of the history of the 24 Tirthankaras

20 With the advance of his age, Chamundaraja devoted himself mostly to religion, under his spiritual teacher, Ajitasena

21 By erecting tne colossal images of Gomateswara and Neminatha in Vindhyagiri and Chandragiri respectively at Sravana Belgola, Mysore, now Karnataka, and devoting the greater part of his welath to the maintenance of worship of these images, Chamundaraya became immortal as one of the greatest promoters of Jaina religion

" DEVI KUSMANDINI "

1 On Chandragiri Hill at Sravana Belagola, Mysore State, now Karnatak, Chandragiri derives its name from the Emperor Chandra gupta Maurya, who was the disciple of the Sage Bhadrabahu

2 On this Hill, Chamunda Raya erected a magnificent temple containing the image of the twentysecond Jaina Tirthankara Neminath

श्री कुष्माँडिनि देवी

3 Subsequently, the upper storey of the building was added by the son of Chamunda Raya and an image of the Twenty-third Jaina Tirthankar, Parsvanatha, was placed in it

4 Both these storeys were built in the Tenth Century A D and give a fine idea of the beautiful architecture of that age

5 The Jaina Goddess Kusmandini, the Yaksini attendant on Bhagwan Neminath, who was the cause of Dream to Chamunda Raya, Nemichandra and Kalika (the mother of Chamunda Raya) about the image of Bhagwan Vahuval[1] which was formerly established by Ravan in the Vindhyagiri

6 The photo image of Devi Kusmandini is of Shri Jain Math, Shravanabelagola, Mysore State now Karnataka

'DEVI PADMAVATI'

1 The Jaina Goddess Padmavati, the Yaksini attendant on Parsvanatha, the twenty third Jaina Tirthankara, who was a cause of Dream to the mother of Chamunda Raya, according to the story Rajavali - Kathe Chamunda Raya was a feudatory chief of King Rajamalla His mother learnt from Adi-purana, when this work was being read to her that in Pondanpura there was an image of Vahuvali

2 There upon she set out with her son to see this image, but on her way on the hill where Bhadrabahu Swami died, she dreamt one night that Padmavati Devi appeared to her and said that there is an image of Vahuvali on that very hill, covered by stones, which was formerly worshipped by Rama, Ravana and Mandodari On the next morning an arrow was shot and the image of Vahuvali became visible

3 There is one more legend connected with the image of Gommatesvara which describes how the pride of Chamunda Raya for establishing such a figure was humbled The story is as follows

4 " Chamunda Raya after having established the worship of this image became proud and elated, at placing this God by his own authority at so vast an expenses of money and labour Soon after this, when he performed in honour of the God the ceremony of Panchamrita Snana (or washing the image with five liquids — milk, curds, butter, honey and sugar), vast quantities of these things were expended in many hundred pots, but, through the wonderful power of the God, the liquor descended not lower than the navel, to check the pride and vanity of the worshipper

5 Chamunda Raya, not knowing the cause, was filled with grief that his intention was frustrated of cleaning the image completely with this ablution While he was in this situation, the celestial nymph, Padmavati, by order of the God, having transformed herself into the likeness of an aged poor woman, appeared, holding in her hand the five amritas in a Beliya Gola (or small silver pot) for washing the statue and signified her intention to Chamunda Raya, who laughed at the absurdity of this proposal, of accomplishing what it had not been in his power to effect

6 Out of Curiosity, however, he permitted her to attempt it, when, to the great surprise of the beholders, she washed the image with the liquor brought in the little silver vase
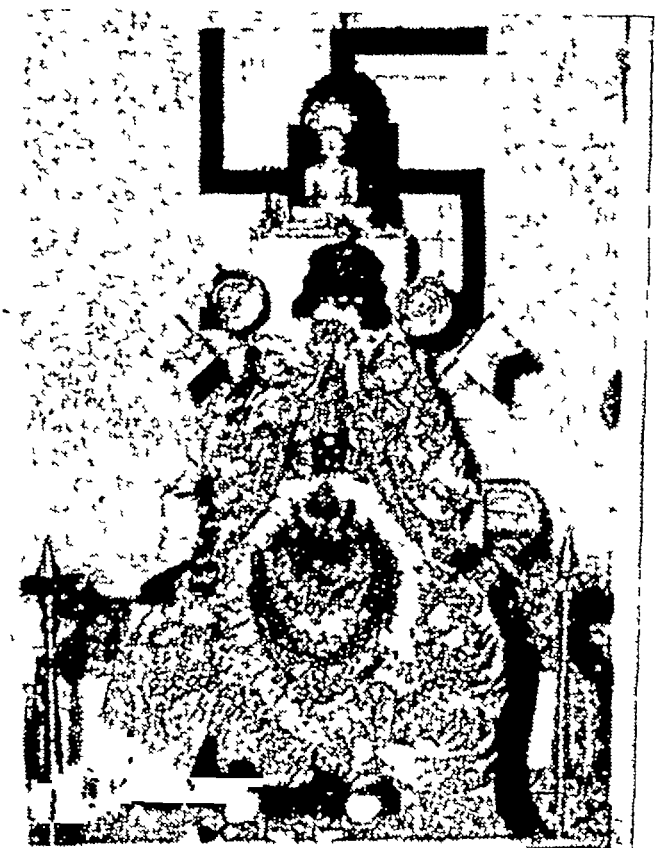
श्री पदमावती देवी

7 Chamunda Raya, repenting his sinful arrogance, performed a second time, with profound respect, his ablution, on which they formerly wasted so much valuable liquids, and washed completely the body of the image

8 From that time this place is named after the silver vase (or Beliya Gola), which was held in Padmavati's hand

9 The photo image of Devi Padmavati is of Shri Jaina Jagadguru Peeta — Shri Hombuja Jaina Math, Humcha, (District Shimoga) Karnatak State

THE BHATTARAK DYNASTY AT SRAVANBELGOLA

THE DYNASTY

1 The present dynasty of Bhattaraka appears to be in existence even before Acharya Nemichandra Sidhanta Chakravarti According to the legendry accounts of Jainas, there used to be the High Priest at Sravanbelgola Abhayanandi, Indranandi, Viranandi and Kanakanandi were some of High Priests

2 Acharya Nemichandra described them as his preceptors In Chandraprabha Charitam, composed by Viranandi, at the end of which it is written that Viranandi was the disciple of Abhayanandi and that Abhayanandi was the disciple of Gunanandi

STHALA PURANA

3 According to the story in Sthala-purana, Chamundaraja set out with his family with a view of visting the God Gommatesvara at Paudanpuri and the 1,254 other Gods scattered throughout the surrounding country

4 Enroute he came to Sravana Belagola Ksetra, having heard a good deal about the God Gommatesvara He repaired the ruined temples and among other ceremonies, had that of sprinkling the God performed

5 He appointed Siddhantacharya as Guru of the Math to conduct the daily, monthly, annual and other processions He established in the Math a Chattram, where food, medicine and education were provided for pilgrims

6 He appointed men of his caste to receive with due respect the devotees and pilgrims of all three castes who should resort to the place from Delhi, Kanakadri, Svitpura, Sudhapura, Champapuri, Sammida-giri, Ujjayanta-giri, Jayanagara, etc

7 For this purpose, certain villages were made over to the temple

ACHARYA NEMICHANDRA

8 Acharya Nemichandra Siddhanta Chakravarti, the Guru of Minister Chamunda Raya was the first pontiff of Sravana-belgola Shree Matha and his holiness wrote many monumental Jaina Philosophical wroks such as Gomatasara, Trilokasara, Labdisara, Dravyasangraha, etc In his great line came many other illustrious Acharyas and the same line continues till this day

ACHARYA PRABHACHANDRA

9 One of the great Acharya of this thone Prabhachandra cured a very dangerous disease of King Ballala I His fame extended far and wide in all the four directions that he was praised as Charukeerti Panditha harya Varya

स्वामी श्री चारुकीर्तिजी भट्टारक
श्रवणबेलगोल
कर्नाटक

Swamigal Since then the pontiffs of Shree Matha are known as Charukeerti Pandithacharya Vaya Swamigal,

THE PRESENT BHATTARAK

10 The present Bhattarak, His Holiness Shri Charukeertiji Pandithacharya Varya Swamiji, Shri Jain Math, Sravana-b.lgola, is bcrn on 8th of June 1950 and was initiated on 19th of April 197

11 His Holiness is of very impressive pe sonality and is a great religious head

THE BHATTARAK DYNASTY AT HUMCHA-PADMAVATI

THE DYNESTY

1 Shri Jaina Jagadgurupeeta-Shri Hombuja Jaina Math appears to have been established by the Acha ya Samantha Bhadra of Nandi Sangha of Shri Kunda Kunda Acharya Deo There after there were Acharya Vidyanandi, Vishal Kirti Muni Nemichandra and Bhattarak Devendrakirti The successor to Bhattarak Devendrakirti is now hereditarily named as Devendrakirti

DEVI PADMAVATI

2 In the 7th century A D, Prince Jinadatta Raya forced by circumstances, under advice from his family Guru, left Mathura, on horse back, with the image of Devi Padmavati on his back, for the South He reached Humcha, a place which is now 58 Kilometres from Shimoga Thirtahalli road via Ripponpet

3 According to the local tale, down below the valley of Shri Bahubali Gudda (Hillock), there is a well by name Halubavi The idol of Devi Padmavati, installed by Jinadatta Raya in the temple was found in that well as revealed to him in a dream

4 Accordingly there were two images of Devi Padmavati, one brought by Jinadatta Raya on his back from Mathura and another found by him in the well Halubavi

5 However, it was the goddess Padmavati, the Yakshini attendant on Bhagwan Parshwanath who in a dream to Prince Jinadatta Raya told to establish his Kingdom with the help of the surrounding people and make his Capital at Humcha She also told that any piece of ferrous metal touched to her feet (the feet of the idol installed) by him shall become gold Hommu, means the Goldand Ja, means to Produce Thus the place is known as Hombuja

6 The descendents of this King Jinadatta Raya ruled over the territory for centuries

BHAGWAN KUND-KUND DEO

7. Nearby Hombuja (Humcha) there is a mountain known as Kundadri, after the name of the Great Acharya Kund-Kund Swami

8 He was known in five different names (1) Padma - Nand Acharya, (2) Kund-Kund Acharya, (3) Vakra-Griva Acharyai (4) Ela Charya and (5) Cridha-Pichha Charya

9 Now the Veer Nirwan Samvat is 2500 The Vikram Samvat is 2031 and the Christian Era is 1974 A. D

10 About 469 years after Bhagwan Mahabir, that is in the beginning of Vikram Era, Kund-Kund Swami practiced penance at the Kundadri Swami Kund-Kund had power to fly To gain knowledge be flew from Kundadri to East Videha, where TirthankarSimandhar was

11 After his return he wrote Panchastikaya, Pravachansara, Samavasar and many other

12 At Kundadri there is a Temple, a Dharmashala and a Rest House There is also Kund-Kund Vidya Peeth established by the Late Bhattarak Shri Devendra Kirti Swamiji

13 All these Institutions are being managed by the Math

14 The Kshetra Hombuja is linked with Bhagwan Kund-Kund Deo and has all its sanctity and Charm

THE PRESENT BHATTARAK

15 The present Bhattarak His Holiness Shri Devendrakirtiji Pattacharyavarya Swamiji Shri Jain Jagadgurupeeth, Hombuja Jain Math, is born on 25th of May 1949 and was initiated on 29th of September 1971

16. His holiness is of very impressive personality and is a great religious head

स्वामी श्री देवेन्द्रकीर्तिजी भट्टारक
होम्बुजा (हुमचा)
कर्नाटक

॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

द्वादश प्रकरण 12TH CHAPTER

कुछ मेरे विषयमें

१ मेरा जन्म सोमवार दिनांक १८ जुलाई सन १८९८, तद्‌नुसार मिति श्रावण कृष्ण अमावस, सम्वत् १९५५ मे, सेठ सूरजमलजी कासलीवाल के पुत्र के रूपमें सिहोर नगर (भोपाल राज्य) मे हुआ।

२. मेरी धर्म के प्रति रूचि, मेरी शिशु अवस्था मे ही, मेरी पूज्य नानी सौभाग्यवती प्यारीवाई, धर्मपत्नी सेठ श्री कन्वरलालजी चौधरी, हाटपीपल्या (ग्वालियर राज्य) की देन है।

३ मेरी धर्मपत्नी सौभाग्यवती मूलीवाई की रूचि के अनुसार सन १९३० मे, ५।२०, स्नेहलतागज, इन्दौर मे श्री महावीर जिन चैत्यालय की स्थापना की।

४ सन १९४४ मे, एलक श्री मल्लिसागरजी का चातुरमास श्री महावीर जिन चैत्यालय मे होनेसे, हमारी प्रवृत्ति, देवपूजा, उपासना, स्वाध्याय आदि पर विशेष हुई।

एलक श्री कहा करते थे "स्वाध्याय आत्मसाधन की पूर्ती है"
"चित्तवृत्ती को टिकाने के लिए सामायिक रूप है" "साहित्य का अध्ययन परमार्थ का साधन है ।"

यात्रा (जीवन यात्रा), सल्लेखना अथवा समाधि पूर्वक ही पूर्ण करना है।

"चारित्र ही जीवन का सार है। दर्शन और ज्ञान चारित्र मे समाये हुए है ।"

५ मेरे प्रथम दर्शन मुनिश्री विद्यानन्दजी के सोमवार दिनाक २८-१२-१९६४ को, अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी मे हुए । मुझे उस समय मुनिश्री से आचार और विचार रूप ऐसी प्रेरणा मिली कि जो दिन-प्रतिदिन मुझे फलित होती दिखती है ।

६ पश्चात अनेको स्थानपर परमपूज्य मुनिश्री के दर्शन हुए और प्रतिसमय मुझे मूक प्रेरणा मिलती रही । मुझे तो ऐसा लगता है कि उनकी प्रेरणाओ से मेरा इह और परलोक सदा सन्मार्गपर आता रहेगा ।

७ उस समय मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी सौभाग्यवती चन्द्रावती, चिरू अशोक, चिरू विजया, और चिरू आलोक थे । पश्चात चिरजीवी शभूराजा, सौभाग्यवती राजकुमारी, चिरू स्नेह, और मेरे पौत्र चिरू विकास, चिरू नितीन और श्री नरसिंग वावू भी दिनाक ३१-१२-१९६४ को श्री महावीरजी पहुँच गये ।

८ वन्दनार्थ गुरूवार दिनाक २४-१२-१९६४ को मोटर MRW 3184 द्वारा इन्दौर से श्याम को ५। वजे हम निकले । ड्रायव्हर श्री गोविन्द नन्दराम पचाल और अटेण्डण्ट श्री रामकृष्ण थे ।

९ दिनाक २५-१२-१९६४को हम ने झालरापाटन मे श्री शान्तिनाथ भगवान के दर्शन किये । दिनाक २६-१२-१९६४ को चान्दखेडी (खानपूर) मे श्री आदि-
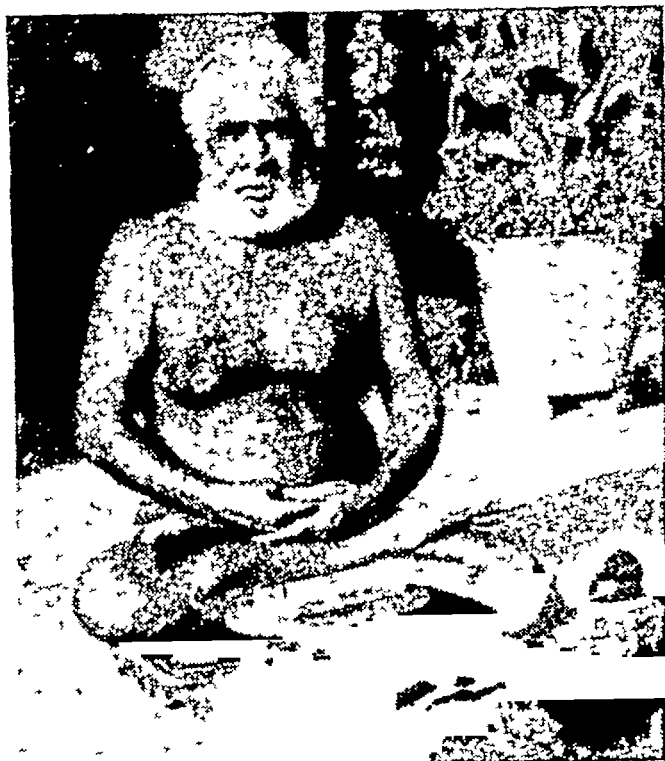
Indore

21 - 8 - 1944

नाथ भगवान के दर्शन किये । पश्चात् हम वारां पहुँचे । वहाँ से कुन्दकुन्द स्वामी मोक्ष गये थे । उनकी चरण पादुका और भगवान श्री नेमिनाथ के दर्शन किये।

उसी दिन हम केशोराय पाटन पहुँचकर भगवान श्री मुनिसुव्रत की दिव्य प्रतिमा के दर्शन किये ।

१० दिनाक २७-१२-१९६४ को, पदमपुरामे भगवान पदमप्रभु के दर्शन करते हुए अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी पहुँचे । ऊपर लिखे अनुसार दिनाक २८-१२-१९६४ को हमने प्रथम दर्शन मुनिश्री विद्यानन्दजी के किये ।

११ पश्चात दिनाक २९-१२-१९६४ को हम जयपूर पहुँचकर वहाँ के मन्दिर के दर्शन किये ।

१२ दिनाक ३१-१२-१९६४ को चिरजीवी शम्भूकुमार आदि वम्बई से फ्रॉन्टीयर मेल द्वारा गगापूर स्टेशन आनेवाले थे । वास्ते हम जयपूर से निकलकर गगापूर रेल्वे स्टेशन पहुँचे और वहाँ से उपरोक्त लिखे अनुसार सवो को लेकर महावीर जी आ गये।

१३ चि शम्भुराजा आदि वम्वई लौट गये । चिरू स्नेह हमारे साथ रह गयी। हम दिनाक १-१-१९६५ को दुधु पहुँच गये और वहाँ पर मेरे पिताश्री के ननिहाल मे रह गये । वहाँ पर सव से वडे श्री रतनलालजी वोहरा और अन्य कुटुवीजन हैं ।

१४ पुष्करमे श्री ब्रह्मा और वागडजीका मदीर देखते हुए दिनाक २-१-१९६५ को हम दुधु से ब्यावर पहुँचे और वहाँ सेठ रामनिवासजी मालपाणी के साथ ठहरे ।

१५ दिनाक ३-१-१९६५ को हम चारभुजा होते हुए राणकपूर पहुँचे । भगवान श्री आदिनाथजी के दर्शन किये । फिर काकरोली होते हुए नाथद्वारा मे ठहरे ।

१६ दिनाक ४-१-१९६५ को धुलेवा (रिखबदेवजी) पहुँचे । भगवान

आदिनाथ – श्री केसरियाजी के दर्शन किये । पश्चात दिनाक ५-१-१९६५ को श्री रिखवदेवजी छोडते हुए पारडा (वडोदा) होते हुए बुधवार दिनाक ६-१-१९६५ को वम्बई पहुँचे ।

१७ समय बीता, रविवार दिनाक ६-८-१९६७ को, मेरी धर्मपत्नी सौभाग्यवती चन्द्रावतीका वियोग हुआ । चर्चाका साधन कुछ कम हुआ । मेरे पुत्र चिरजीवी अशोक कुमार ने मेरे लिए मगलवार दिनाक १७-९-१९६८ को, एक Solid State Portable Tape Recorder Model R Q 401 S. National का खरीदा ।

१८ मैंने प्रथम टेप दिनाक २०-९-१९६८ को भक्तामर और देव शास्त्र गुरुकी पूजन से शुरु की । ग्यारहवी टेप पर दिनाक ८-१०-१९६८ को उपादान और निमित्त रिकार्ड किया । फिर १३ वी टेप पर मृत्यु महोत्सव । २५ और २६ टेपो पर मगल मन्त्र णमोकार पश्चात टेप नवर ७६ पर १० धर्म रिकार्ड किये ।

१९ मेरे प्रथम दर्शन आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी के शनिवार दिनाक १०-१-१९७० को श्री सिद्धक्षेत्र मागीतुगीपर हुए । मेरे साथ श्री नरेन्द्र पाटोदी, उनकी पत्नी सौ पाटोदी, सौ तारावाहिन पाटणी, चिरू विजया, उमग, योजना, भावना, आलोक और शान्तावाई थे । हमारे साथ दो कारे MRC 9104 और MPF 2404 थी । श्री गोविन्द और श्री वावू वनसोडे ड्रायव्हर और श्री दत्ता दार्जी सोगम थे ।

२० हम इन्दौर, शुक्रवार दिनाक ९-१-१९७० को छोडकर ऊन, वडवानी, होते हुए मागीतुगी पहुँचे । पश्चात् रविवार दिनाक ११-१-१९७० को श्री सिद्धक्षेत्र गजपथा की वन्दना करते हुए हम वम्बई ५ वजे पहुँचे । चिरू अशोक, सौ नानी, सौ हन्सा और चिरू पकज हमारे साथ कार नम्बर २३६५ मे ऊन, वडवानी की वन्दना करते हुए शनिवार दिनाक १०-१-१९७० को प्रात ६ वजे जुलवानीयासे इन्दौर लौट गये ।

२१ मेरे दूसरी दफे के दर्शन आचार्य श्री के मांगीतुंगी पर सोमवार दिनाक १३-४-१९७० को हुए । हम वम्बई से ५।।। वजे प्रात MRF 3250 मोटरसे नकले । मेरे अलावा चिरू विजया, स्नेह, उन्नती, स्नेह की सहेली मिस इला, शान्तावाई और ड्रायव्हर श्री गोविन्द थे । हम सब सातो व्यक्ति मगलवार दिनाक १४-४-१९७० को डोलियो द्वारा पहाडपर गये । वहाँ भी आचार्य श्री के दर्शन हुए ।

२२ मेरे तिसरी दफे के दर्शन आचार्य श्री के, श्रीसिद्ध क्षेत्र मांगीतुंगीपर मगलवार दिनाक ९-६-१९७० को हुए । मेरे साथ चिरू अशोक, सौ हन्सा, चिरू स्नेह, उन्नती, योजना, पकज, शान्तावाई और श्री गोविन्द ड्रायव्हर थे । हमारे साथ कारें MPF 2404 और MPF 3250 थी । हमने इन्दौर, सोमवार दिनाक ८-६-७० को छोडा। वुधवार दिनाक १०-६-१९७० को मांगीतुंगी से रवाना होकर श्रीसिद्ध-क्षेत्र गजपथा होते हुए हम वम्बई गुरूवार दिनाक ११-६-१९७० को पहुँचे ।

२३ मेरे चौथे दफे के दर्शन आचार्य श्री के, श्रीसिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीपर रविवार दिनाक ४-१०-१९७० को हुए । चिरू अशोक, सौ हन्सा, चिरू पकज, आलोक, शान्तावाई और ड्रायव्हर श्री वावू वनसोडे को मिलाकर हम सव सात व्यक्ति थे । आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी द्वारा वोला हुआ श्री मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर भगवान श्री पार्श्वनाथ का अभिषेक पाठ प्रात ६ वजे सोमवार दिनाक ५-१०-१९७० को मैंने टेप नम्वर ७७ पर रिकार्ड किया । पश्चात् आचार्य श्री का दोपहर का प्रवचन टेप नम्वर ७७,७८ और ७९ पर मैंने रिकार्ड किया ।

२४ मेरे पाँचवे दफे के दर्शन आचार्य श्री के, श्रीसिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीपर शनिवार दिनाक १०-१०-१९७० को हुए हम सव MRF 3250 और MRD 4646 इन, दो गाडियो द्वारा वम्वई से शुक्रवार दिनाक ९-१०-१९७० की दोपहर को चार वजे निकले और रात्रि के दो वजे श्री मांगीतुंगी पहुँचे । पहुँचने के साथ ही आचार्य श्री के दर्शन मदीर मे हुए ।

२५ हम सव (१) मैं, (२) चिरू अशोक, (३) सौ हन्सा, (४) चिरू विजया (५) चिरू स्नेह, (६) चिरू उन्नति, (७) चिरू भावना, (८) चिरू साधना

(९) चिरू पकज, (१०) सौ शातावाई और (११) श्री भैयालालजी तथा दो ड्रायव्हर (१) श्री गोविन्द और (२) श्री वालकृष्ण इस प्रकार कुल १३ व्यक्ति थे ।

२६ शनिवार दिनाक १०-१०-१९७० के प्रात कई मुनि और आर्यकाओ की दीक्षा विधि मैंने टेप नम्बर ८० पर रिकार्ड की । दिक्षाविधि के पश्चात श्री को मैंने नवीन पिछी दी । मुनि और आर्यकाओ के केस गाजेव जे के साथ चिरू विजयाने क्षीर सागरमे समर्पण किये । पश्चात आचार्य श्री का दोपहर का प्रवचन टेप नम्बर ८१ और ८२ पर रिकार्ड किया । टेप नम्बर ८३ और ८४ पर इसी समारोह पर वोले हुए भाषण आदि है ।

२७. आचार्य श्री के दर्शन के लिए मेरे पुत्र चिरजीवी शम्भुराजा, मेरी पुत्रवधु सौ. राजकुमारी, मेरे पौत्र चिरू त्रारिज, चिरू विकास, चिरू नितीन और चिरू मुकुन्द भी वम्बई से सिद्धक्षेत्रपर रविवार दिनाक ११-१०-१९७० को पहुँचे ।

२८ वडी धूमधाम के साथ रविवार दिानक ११-१०-७० के दोपहर का भोजन सव यात्रि और ग्रामवासियो को क्षेत्र के प्रागण मे हमारी और से कराया गया ।

२९ कार्तिक शुक्ल ९, शनिवार दिनाक ७-११-१९७० को हम मागीतुगी ३ वजे पहुँचे । आचार्य श्री वोले कि मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था । श्री सिद्धचक्र विधान करनेका है । श्री वर्धमानजी शास्त्री यहा पर है । आचार्य श्री ने श्री सिद्धचक्र विधान का सकल्प चिरू विजया से करवाकर हमे जानेकी परवानगी दे दी । यह मेरे छठे दफे के दर्शन थे ।

३० इस समय मेरे साथ (१) चिरू अशोक (२) सौ हसा (३) चिरू विजया (४) चिरू स्नेह और (५) चिरू पकज थे । गाडी MRD 4646 और ड्रायव्हर श्री वालकृष्ण विष्णु शेठ्ठी थे ।

३१ मेरे सप्तम दर्शन आचार्य श्री के शुक्रवार दिनाक १३-११-१९७० को सिद्धक्षेत्र मागीतुगीपर हुए । उस दिन कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा थी । वह मागीतुगी

के मेले का दिन था । उस दिन आचार्य श्री और तीन मुनियो के केस लौच हुए । आचार्यश्री को नवीन पिछी देने और क्षीर सागर मे केस समर्पण करने की विधि मैने की । उद्यान मे पचामृत द्वारा भगवान का अभिषेक भी हुआ । इस समय मै, चिरू अशोक, चिरू विजया, चिरू स्नेह, सौ हन्सा और चिरू पकज घुलियासे मोटर द्वारा १२॥ वजे श्री मागीतुगी पहुँचे थे और वहाँसे रात्रि के ९॥ वजे घुलिया लौट आये थे ।

३२ फिर हम घुलिया से रविवार दिनाक १५-११-१९७० को मागीतुगी ३। वजे पहुँचे । हम दिनाक १५ और १६ को सिद्धचक्र विधान मे और दिनाक १७ को हवन मे सम्मिलित हुए ।

33 It was the very great performance of Sidha Chakra Vidhan (Ashtanika Mahotsava) which was performed by Param Pujya Acharya Shri Mahavir Kirtiji and all of the Munies who were in Mangi Tungi together with Aryakas, Chhulak and Chhulikas The Havan was done by Chiranjivi Vijaya under the guidance of Acharya Shri Mahavir Kirtiji (From my own Tale)

उपरोक्त मेरे अष्टम वार के दर्शन परमपूज्य आचार्यश्री के श्रीसिद्धक्षेत्र मागीतुगीपरही हुए ।

३४ मेरे नौवी वारके दर्शन आचार्यश्री के बुधवार दिनाक ९-१२-१९७० को खरगोन मे, दसवीं वार के दर्शन बुधवार दिनाक ३०-१२-१९७०, ग्यारहवी वार के दर्शन शुक्रवार दिनाक १-१-१९७१ तथा बारहवी वार के दर्शन रविवार दिनाक ३-१-१९७१ को परमपूज्य श्रीसिद्धक्षेत्र बावन गजाजी बडवानीपर हुए । पश्चात तेरहवी बार के दर्शन सोमवार दिनाक १-२-१९७१ को पावागढमे हुए ।

३५ मेरे अन्तिम चौदहवी वारके दर्शन आचार्य श्री के, पालीताना मे शुक्रवार दिनाक १९-३-१९७१, शनिवार दिनाक २०-३-१९७१ और रविवार २१-३-१९७१ को हुए ।

३६ रविवार दिनाक २१-३-१९७१ तद्‌नुसार फालगुन वदी ९ (गुजराती) सम्वत २०२७ को परम पूज्य आचार्यश्री ने, हमारे द्वारा (मैं, मेरी वडी पुत्री चिरू विजया और दूसरी पुत्री चिरू स्नेह के द्वारा) सिद्धक्षेत्रश्री शत्रुजयगिरी पर ज्हाँ-से तीन पाडव आदि आठ कोटी मुनि मुक्ति गये, १००८ श्री भगवान नमिनायका पचामृत अभिषेक करवाया ।

३७ पचामृताभिषेक पाठ आचार्यश्री और सघके मुनिगण वोलते जाते थे और हमारे द्वारा क्रिया सहित जल, दुग्ध, दधि, घृत इक्षुरस, आदिसे अभिषेक कराया जाता था । पश्चात हमारे द्वारा भगवानश्री को पुष्पमालायें पहिनाई गई और पुष्प वर्षा कराई गई ।

३८. पश्चात आचार्य श्री ने मुझे तिलक किया । भगवानश्री को पहिनाई हुई पुष्पमालायें मुझें पहनाई, मैं गदगद था, अश्रुधारायें वह रही थीं । मेरे सौभाग्यका यह परम दिन था ।

३९ रविवार दिनाक २१-३-१९७१ को हमने रात्रि के करीव ९ वजे पालि तान छोडा और वावरा के डाक वगले मे विश्राम किया । उस समय मेरे साथ चिरू विजया, चिरू स्नेह सौ शान्तावाई, गाडी MRF 3250 और श्री गोविन्द पचाल थे ।

४० सोमवार दिनाक २२-३-१९७१ को हम वावरासे शारदाग्राम होते हुए, गिरनार रेस्ट हाऊस होते हुए,सोमनाय पहुँचकर रेस्ट हाऊस मे रात्रि को ठहरे, पश्चात मंगलवार दिनाक २३-३-१९७१ को शासनगिरी होते हुए जुनागढ पहुँचे और गिरनार रेस्ट हाऊस मे विश्राम किया । पश्चात वुधवार दिनाक २४-३-१९७१ को गिरनार सिद्धक्षेत्रकी डोलियो द्वारा वन्दना की ।

४१ गुरूवार दिनाक २५-३-१९७१ को जुनागढ छोडकर राजकोट, जामनगर होते हुए वेट द्वारका और द्वारकाहोते हुए रात्रि को सिहोरके (सोनगढ के पास) डाक वगले मे विश्राम किया । शुक्रवार दिनाक २६-३-१९७१ को सिहोर से आठ वजे रवाना होकर १० वजे रात्रि को इन्दौर पहुँचे ।

४२ मैं एक वात भूल गया । हमने वम्वई गुरूवार दिनाक १८-३-१९७१ को प्रात करीव १० वजे छोडी थी । मार्ग मे हमे वम्वई से करीव १३० किलो मिटर महाराष्ट्र-गुजरात वारडर पर आचार्यप्रवर १०८ श्री देशभूषणजी महाराज के दर्शन हुए । हमने फोटो लिये तथा उनका प्रवचन टेप नम्वर ८९ पर रिकार्ड किया । पश्चात नवसारी के पास महुआ मे श्री विघ्नेश्वर पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन करते हुए शुक्रवार दिनाक १९-३-१९७१ को प्रात ९ वजे पालीताना पहुँचे थे । आचार्य-प्रवर १०८ देशभूषण महाराज की स्तुति, वेनी सुगधा द्वारा दिनाक ९-३-१९७१ को वोली हुई टेप नम्वर ८९ पर है ।

४३ रविवार दिनाक १२ सितवर सन १९७१ को डॉक्टर नेमीचन्दजी जैन, सम्पादक 'तिर्थंकर' और श्रीमती कमल वेद, एम् ए विश्वमैत्री दिवस पर वम्बई पधारे थे । इनसे मिलने का मुझे भी मौका मिला था । जैन धर्म पर मेरे द्वारा वोली हुई कुछ टेपें मैंने इन्हे सुनाई थी । इन्होने इन टेपोपर बोले हुए विषयो को लिपिबध्द करनेकी सलाह मुझे दी थी ।

४४ मेरा और आचार्य श्री का परम घनिष्ठ समागम रहा। वडवानी के समय आचार्य श्री ने विहार के पश्चात सम्मेदाचल जानेका विचार किया था ।

४५ शत्रु जयके पश्चात आचार्यश्री गिरनार पहुँचे और चातुरमास श्रीसिद्धक्षेत्र गिरनारपर किया । वहाँ से कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा मगलवार दिनाक २-११-१९७१ के पश्चात आचार्यश्री ने श्रीतारगा सिद्धक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया । इस बीच मे भिलाई होते हुए श्री सम्मेदाचल जानेका मुझे अवसर मिला ।

४६ हम वुधवार दिनाक २२-१२-१९७१ को दिनके ११॥ बजे मोटर द्वारा वम्वई से रवाना हुए । चिरू स्नेह, योजना, भावना, शान्तावाई और श्री गोविंद पचाल मेरे साथ थे । हम भुसावल और भण्डारा रात्रिको सोते हुए शुक्रवार दिनाक २४-१२-१९७१ को भिलाई पहुँचे ।

४७ हम भिलाई से दो गाडियो द्वारा (एक गाडी हमने GDL 1617 श्री

गोलारामजी से ले ली थी।) श्री लोकेन्द्र, सौ आशा, मी विजया, चिरू स्नेह, योजन, भावना, सौ शान्तावाई, श्री गोविन्द और श्री शकरराव पवार, मेरे समेत ग्यारहा व्यक्ति हो गये थे। हमने भिलाई मगलवार दिनाक २८-१२-१९७१ को ३ ०० वज छोडा। रास्ते मे विश्राम करते हुए वुधवार दिनाक २९-१२-१९७१ को अर्धरात्रि के समय हम मधुवन पहुंचे ।

४८ गुरूवार दिनाक ३०-१२-१९७१ को हमने डोलियो द्वारा श्रीसम्मेद शिखर-की वन्दना की । हमने शुक्रवार दिनाक ३१-१२-१९७१ को मधुवन छोडकर रास्तेके नगर होते हुए सोमवार दिनाक ३--१-१९७२ को लखनउ पहुँचे ।

४९ बुधवार दिनाक ५-१-१९७२ को लखनउ छोडते हुए कानपूरमे मेपर्स गोपालदास सरवदयाल के मालिक श्रो तिलकबाबू और श्री सुदेशवाबुके साथ उनके वगलेपर रात्रीको रहे । मेरे साथ चि कवर श्री जितेन्द्रवावू, सौ चिरू विजया भी थे । गुरूवार दिनाक ६-१-१९७२ को कानपूर छोडा । झाशी मे सोते हुए शुक्रवार दिनाक ७-१-१९७२ को श्री वजरगगढके दर्शन करते हुए शामको ५ वजे इन्दौर पहुँचे ।

५० मुझे आचार्यश्री क निधन के समाचार इन्दौर मे दिनाक ७-१-१९७२ को हो मिल गये थे ।

५१ आचार्यश्री गुरूवार दिनाक ६-१-१९७२ को मेहसाणा मे (गुजरात मे) समाधिस्थ हुए ।

५२ सोमवार दिनाक ५-१०-१०७० को आचार्यश्री द्वारा बोला हुआ पचामृत अभिपेक पाठ टेप नम्बर ७७ पर तथा उसी दिनके दोपहर के प्रवचन टेप नम्बर ७७,७८ और ७९ पर है ।

५३ शनिवार दिनाक १०-१०-१९७० की दीक्षाविधि टेप नम्बर ८० पर है । आचार्यश्री का उस दिन दोपहरका प्रवचन टेप नवर ८१ और ८२ पर हैं । तथा उस दिन के समारोह परके भापण टेप नम्बर ८३ और ८४ पर हैं ।

५४ स्वामिश्री चारुकीर्तिजीका मुझे, दिनांक १०-३-१९७३ का पत्र मिला स्वामिजीने मुझे लिखा

We invite you to inagurate the 3rd Dharma Sammelan of Shravanabelagola on the 16th of April 1973 In this Dharma Sammelana, all the different religious scholars partake at our invitation Your scholarship in Jain Philosophy should benefit this Dharma Sammelan

स्वामिजीने यह भी लिखा था —

The first Dharma Sammelan was inagurated by Shri Veerendrakumar Hegde of Dharmastala under the presidentiship of late Swamiji Devendrakeerti Maharaj of Humcha Math

५५ इसपर से मुझे याद आया कि हमने हमारी दूसरी यात्रा के समय दिनांक २४-१०-१९६३ को दिवगत स्वामिश्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराजके श्रीहुमचा मठपर रात्रिके ८ बजे दर्शन किये थे। उस दिन आश्विन शुक्ल षष्ठी थी। नवरात्रिका दिन था। भट्टारकश्री परम पूज्या देवी श्री पद्मावती के पूजाविधानमे लगे हुए थे।

५६ शुक्रवार दिनांक २५-१०-१९६३ को महाराजश्री से कुन्दाद्रि शिखरपर सिद्धान्त शास्त्रोकी रचना, श्रीकानजी स्वामिका आगमन, वहांपर का मन्दिर, धर्मशाला और कुन्दकुन्द विद्यापीठ आदि के विषय मे चर्चा हुई थी। दोपहर का भोजन भट्टारकश्री ने हमे उनके मठ मे ही कराया था।

५७ उस समय मै, मेरी धर्मपत्नी सौ चन्द्रावती, मेरे पुत्र और पुत्रियाँ चिरू अशोक, चिरू विजया, चिरू स्नेह, चिरू उन्नति, चिरू प्रगति, चिरू विवेक, चिरू योजना, चिरू भावना, चिरू साधना, चिरू आलोक और ड्रायव्हर सदानन्द सहित हम सब तेरह व्यक्ति थे।

५८ हमने MRW 3184 गाडीसे बम्बई मगलवार दिनाक २२-१०-१९६३ को प्रात ६॥ बजे छोडी थी। पूना, निपाणी हरिहर, शिमोगा होते हुए हम हुमचा-पद्मावती गुरूवार दिनाक २४-१०-१९६३ को रात्रिके आठ बजे पहुँचे थे ।

५९. शुक्रवार दिनाक २५-१०-१९६३ को हुमचासे रवाना होकर उडिपी वारग, कारकल, मूडबिद्री, वेणूर, बेलूर, हेलेबिड, चन्द्रायपट्टण, होते हुए हम श्री श्रवणबेलगोला रविवार दिनाक २७-१०-१९६३ को पहूँचे थे । उस दिन आश्विन शुक्ल नवमीका दिन था । नवरात्रिका अन्तिम दिन ।

६० दिवगत भट्टारक श्री चारूकीर्तिस्वामिके दर्शन करनेको हम मन्दिरमे गये। भट्टारकश्री खूब साजबाज के साथ १००८ श्री भगवान श्री नेमिनाथ और परमपूज्या देवी श्री कुष्माण्डिनीके पूजाविधानमे लगे हुए थे । भट्टारकश्रीने उनके पासके आसन पर हमे बैठने को कहा। हम सबके सब भट्टारकश्री के साथ रात्रिको करीब दो घण्टे तक रहे । फिर भट्टारकश्रीका जुलूस निकला ।

६१ सोमवार दिनाक २८-१०-१९६३ को भगवान बाहुबलीके दर्शन करने हम सब विन्ध्यागिरीपर गये । पश्चात हम चन्द्रगिरीपर गये और श्रवणबेलगोलके सब मदिरोके दर्शन किये । भट्टारकश्रीसे तीर्थक्षेत्र कमिटी आदि विषयोपर बाते हुई।

६२ मगलवार दिनाक २९-१०-१९६३ को हम श्रीश्रवणबेलगोला छोडते हुए श्रीरगपट्टण, म्हैसूर, कृष्णराजसागर, उटी, कोचीन, त्रिवेन्द्रम, होते हुए रविवार दिनाक ३-११-१९६३ को केप कामोरीन पहुँचे । फिर वहांसे रवाना होकर सोमवार दिनाक ४-११-१०६३ का मदुराई पहुँचे। मदुराईसे बुधवार दिनाक ६-११-१९६३ को निकलकर मण्डपम् रेल्वेस्टेशनपर पहुँचे । मोटर वहां छोडी ।

६३ फिर रेल द्वारा रवाना होकर पामवन होते हुए श्रीरामेश्वर पहुँचे और उसी दिन वहाँ से निकलकर मण्डपम् आकर मोटर लेकर परमकुड्डी श्री राजारामजी के स्थापनर विश्राम किया ।

६४ गुरूवार दिनाक ७-११-१९६३ को परमकुड्डी से प्रस्थान कर तिची, मद्रास होते हुए शनिवार दिनाक ९-११-१९६३ को तिरूपति-तिरुमाला रात्रिको पहुँचे ।

६५ रविवार दिनाक १०-११-१९६३ को भगवान पार्श्वनाथ और देवी पद्मावववतिके दर्शन करते हुए मूलवागल, बेंगलोर, टुमकुर, वेलगाव, होते हुए वुधवार दिनाक १३-११-१९६३ को पूना पहुँचे। वहांपर श्रीमान भाऊसाहवके बगलेपर रात्रिको रहे ।

६६ गुरुवार दिनाक १४-११-१९६३ को दिनके ३॥ वजे हम वम्वई पहुँचे थे।

६७ हमारी पहली यात्रा फरवरी के प्रथम सप्ताह सन १९५५ मे इन्दौर से आरभ हुई थी ।

६८. शुक्रवार दिनाक २८-१-१९५५ को चिरू शभूराजा और सौभाग्यवती राजकुमारीका विवाह सम्पन्न हुआ । इन दोनोकी मांडव टूरके पश्चात हम सर्भाका दक्षिणकी तीर्थ यात्रा करनेका विचार हुआ । हमने दो गाडियाँ ली, हिलमेन और डॉज कमाण्ड । डॉजपर भोला ड्रायव्हर था। हिलमेनमे चिरू शभूराजा, सौभाग्य- वती राजकुमारी, श्रीनरसिगबाबू, सौभाग्यवती गीतादेवी, चिरू निरजन और, चिरू राजेन्द्र थे । डॉजमे मैं, सौभाग्यवती चन्द्रावती, चिरू विजया, चिरू स्नेह, चिरू उन्नति और चिरू प्रगति थे ।

६९ इन्दौर से रवाना होकर धुलिया, जलगाव, औरगावाद, एजण्टा, एलोरा होते हुए औरगावाद पहुँचे । वहाँ सौभाग्यवती राजकुमारीको बुखार आने से चिरू शभूराजा कुछ समयके लिए इन्दौर लौट गये और हम सगमनेर होते हुए पूना पहुँचे। चिरू भोला, सौभाग्यवती लाडी हमसे मिलनेको पूना पहुँच गये थे । हम श्रीमान भाऊ साहवके वगलेपर ठहरे। पूनासे हमने श्री करमसी पञ्चानभाई पटेलको साथ ले लिया था ।

७० पश्चात पूनासे चिरू भोलाराजा और सौभाग्यवती मालतीवाला ववम्ई आ गये और हम रवाना होकर सातारा, कोल्हापूर, निपाणी, स्तवनिधि,

बेलगाव होते हुए जोगफाल पहुँचे। वहाँ से सागर होते हुए सीमोगा पहुँचे और सीमोगासे हुमचापद्मावती। उस समय भट्टारकश्री मेंगलोरमे होतेसे हमे दर्शन नही हो सके।

७१ फिर हम आगुम्वे होते हुए वारग, कारकल, मूडविद्रि, मेंगलोर आदि होते हुए श्री श्रवणबेलगोला पहुँचे। वहाँ भगवान श्री वाहुवलीके दर्शन करते हुए भट्टारकश्री से मिलते हुए, म्हैसूर, बेंगलोर होते हुए धवनगिरिपर ठहरते हुए वम्वई पहुँचकर कुछ विश्राम कर इन्दौर लौट आये थे। उस समय दोनो भट्टारकश्री सम्पर्कमे विलकुलभी नही आ सके थे।

72 Thereafter we met Bhattarak Swamı Shrı Devendrakırtıjı ın Bombay on Thursday, 6th of February 1964 at Shrı M C Anantharayajaıh, Terrıtory Manager, M B T Company, on 4th flooı, Swastık Chambers, Bombay 1 The Telephone number beıng 327405 Shrı P H Gunjal was wıth hım Bhattarak Swamıjı came to Bombay by hıs own Car We had an honour of hıs takıng lunch at our place, Padam 1' Flat 14, 4-B, Pedder Road, Bombay 26, on Saturday 8th of February 1964

७३ भटारक श्री चारूकीर्तिजी के निमत्रण पर से मुझे जो मेरी दो दक्षिणकी तीर्थयात्रायें याद आई उनका विवरण सक्षिप्तमे मैं उपर कर चुका। अव धर्म सम्मेलन और उसका उद्घाटन फिर निमत्रण पत्रमे लिखे अनुसार इसकी परिपूर्णता का होना मेरे सामने विकट समस्या दिखने लगी।

७४ पाठ पूजा आदिमे निमग्न रहनेवाला मैं व्यक्ति फिलोसफी क्या जानू। वोलू, तो क्या वोलू। कुछ समय द्विधामे रहा। कई ग्रन्थोको टटोला, विचार धारा प्राप्त की, फिर जो जहाँसे पढा वही लिख दिया। यह अग्रेजी भाषामे सकलन हुआ। मैने टाईप करा कर उसकी एक प्रतिलिपि अग्ररुपमे पूज्य स्वामीजीको शनिवार दिनाक ७-४-१९७३ को भेजी। लेख समयोचित रहा।

७५ तृतीय धर्म सम्मेलन श्रवणबेलगोलामे सोमवार दिनाक १६-४-१९७३ को समय पर आरभ हुआ। स्वामीश्री देवेन्दकीर्तिजी भटारक, श्री जैन जगतगुरू पीठ, श्री होम्बुजा जैन मठ, सभापति थे। स्वामिजीश्री चन्द्रकीर्तिजी भटारक, श्री देवी ज्वालानामालोनी, सिहनगढ वस्ति मठ, म्हैसूर राज्य, उपस्थित थे। चिरजीवी शभुराजा और सौभाग्यवती राजकुमारी प्लेन द्वारा समय पर पहुँच गये थे। मेरे साथ चिरजीवी वारिज, विकास और विवेक थे। मच खचाखच भरा हुआ था। सभा मडपमे जन उपस्थिति चार पाच हजारकी थी।

७६ मैने आरभिक सम्बोधन (Inaugural Address) अग्रेजीमे पढना आरभ किया फिर जन इच्छाके अनुसार हिन्दीमे बोला।

७७ सम्मेलन द्वारा मुझे मानपत्र और "धर्म दिवाकर" की टाईटल दी गई।

७८ मगलवार दिनाक १७-४-१९७३ को पूज्य स्वामीश्री चारूकीर्तिजी, पूज्य स्वामीश्री देवेन्द्रकीर्तिजी और पूज्य स्वामीश्री चन्द्रकीर्तिजी के साथ मेरी प्रात अनेक विषयो पर धर्मचर्चा हुई। Inaugural Address का मुद्रण करानेके लिए श्री स्वामी चारूकीतिजी बोले। अन्य विषयो पर लिखने और उनके मुद्रण के लिए भी मुझे प्रोत्साहित किया। हम सब (मै, चिरू वारिज, विकास और विवेक) स्वामीश्री चारूकीर्तिजी से आज्ञा लेकर बम्बईके लिए लौटे।

७९ उपरोक्त प्रेरणा पाकर मैने गुरूवार दिनाक १९-४-१९७३ से टेप रिकार्डर पर बोलने की जगह लिखना आरभ किया।

८० ग्रथोका अध्ययन कर जो कुछ समझता था, वह टेप रिकार्डर पर बोलता था। उसी अभ्यास क्रमको रखते हुए अब लिखता हूँ।

८१ इन सकेत शब्दो द्वारा मेरी अभिलाषा विशेष विशेष ज्ञान प्राप्त करनेकी है ताकि मै समाधि पूर्वक इह लोककी यात्रा पूर्ण कर सकू।

८२ उपरोक्त ८१ अनुच्छेद तो शुक्रवार दिनाक २८–९–१९७३ को ही पूर्ण हो गये थे किन्तु मुद्रण मे अति विलम्ब के कारण आज शनिवार दिनाक १२–७–१९७५ को मेरे ध्यानमे आया, "क्यो नही भगवान श्री पार्श्वनाथ और भगवति श्री पद्मावती देवी के रथ महोत्सव का प्रकरण रविवार दिनाक ३०–३–१९७५ से शुक्रवार दिनांक ४–४–१९७५ तक का जोड दिया जावे।"

८३ उपरोक्त रथ महोत्सव होंबुज (हुमचा) श्री क्षेत्रपर प्रतिवर्ष होता है। हजारोकी सख्या मे नर–नारी इकट्ठे होते हैं। उत्सव करीव ५।६ दिन चलता है। दर्शनसे नाना प्रकारकी लब्धियाँ यात्रियोको मिलती है। भगवती पद्मावती वहां प्रकट विराजित है। इस अवसरपर वहां सास्कृतिक कार्यक्रम, सर्वोदय साहित्य सम्मेलन, धार्मिक सम्मेलन आदि अनेको कार्यक्रम होते हैं। हुमचा, शिमोगासे ५८ किलोमिटर है।

८४ स्वस्ति श्री देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्टाचार्यवर्य स्वामीजी द्वारा दिनांक १५–२–१९७५ का पत्र तथा दिनांक २५–२–१९७५ के बम्बई और इन्दौर भेजे हुए तार मिले। मैंने स्वामीश्री की आज्ञाका पालन कर दिनांक १–४–१९७५ को रिलिजियस कान्फरन्सका उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया।

८५ मेरा उद्घाटन भाषण अग्रेजीमे मगलवार दिनांक १–४–१९७५ को **On Jain Siddhanta (the Doctrine of Jainism) Pertaining to Jiva Dravya** पर हुआ। बुधवार दिनांक २–४–७५ को मुझे मठद्वारा सन्मानपत्र और 'सम्यक्त्व दिवाकर' की टायटल दी गई।

८६ यह मेरी **Tour** २५ दिन की अतिरोचक रही। इसका विवरण अग्रेजीमे जो मैं लिख चुका हूँ, वह निम्नोक्त है

1 By Car No MRJ 4576, driven by Shri Baboo Maruti Bansode and attended by Shri S. B Rahate The Kilo Metre reading was 30,090

29-7-1973

The date is according to Samvat year

2 Myself (Seth S S Kasliwal) Chiranjivi Vivek Baboo and Chiranjivi Yojna Baby were in the tour,

3 Left Bombay on Friday, the 20th of March 1975, at 09 00 hours and via Mahabaleshwar, reached Vahuvali—Kumbhoj (near Kolhapur) at 21 30 hours, Took Darshan of Param Pujya Munishri Samant Bhadra Swami Worshiped the great God Vahuvali Met Sanchalak Shri Manikchandji Bhishikar, Shrimati Gajaben, Shri Yashpal and Shri Ramesh Left Vahuvali—Kumbhoj on Saturday, the 29 th of March 1975 at 8 30 hours,

4 Via Kolhapur, reached Stava-nidhi at 12 00 hours Worshiped Bhagwan Shri Parshwanath and Bhagwati Shri Padmavati Devi

5 Via Belgaon, Hubli, Sirshi, reached Jog Falls at 20 00 Hours The Killo Metre reading was 30,959 Halted at Woodlands Hotel

6 On Sunday, the 30th of March 1975, after visiting all of the protected establishments at the Falls, left via Sagar and Shimoga for Humcha at 14 00 hours and reached there at 20 30 hours The Kilo Metre reading was 31,197 We had done so far 1,107 K M i e 692 miles

7 We had taken Darshan of Bhagwan Shri Parshvanath and Bhagwati Shri Padmavati Devi and thereafter we approched Swami Shri Devendra Keertiji Bhattaraka Mahodaya, paid our respects He provided for us a newly constructed Bungalow for our staying in

8 On Monday, the 31st of March we had taken part in

महाअभिषेक, कलिकुंड यंत्राराधना, सिंहवाहनोत्सव इत्यादि ।

9 On Tuesday, the 1st of April 1975, we had taken part in जलाग्नि, शान्तिचक्राराधना । The Religious Conference commenced at about 20 30 hours, His Holiness Shri Shri Shri Jagadguru Prasanna Renuka Veerarudra Muni Shivacharya Varya Mahaswamiji Mahodaya of Shri Bale Honnuru Math, presided While inaugurating the Conference I read over, what I wrote on Jain Siddhanta-the Doctrine of Jainism - pertaining to Jiva Dravya

10 On Wednesday, the 2nd of April 1975, we had taken part in महानैवेद्य–पूजा and others The SAHITYA SAMMELANA commenced at about 21 00 hours Swami Shri Charukeertiji Bhattaraka Mahodaya of Shri Jain Math Shravanbelgola, presided over In this Conference the title of 'SAMMYAKTVA DIVAKARA' was confered on me and was presented to me in a Sandle wood Casket with a Dushala, coconut and a garland, by Swami Shri Devendra Keertiji Bhattaraka Mahodaya

11 गुरुवार दिनाक ३ अप्रैल १९७५ को भगवान श्री पार्श्वनाथ का अभिषेक १०८ स्वर्णादि के कलशोद्वारा हुआ । चिरजीव विवेक और चिरजीवी योजना हाथिपर, गाजे-बाजे के साथ जल लेकर आये । भगवानश्री का महाअभिषेक हुआ । पचाभिषेक हुआ । अभिषेक के समय करीब २ हजार व्यक्ति उपस्थित थे ।

12 We left Humcha on Friday, the 4th of April 1975 at 08 00 hours. The Kilo Metre reading was 31,208, Via Tirthalli and Koppa, we reached Narsinharajpur at 11 30 hours We took Darshan of Bhagwati Shri Jvala Malini

Devı and paid our respects to Bhattaraka Shrı Chandra-keertı Mahodaya

13 We left Narsınhrajpur at about 13 00 hours, reached Srıngerı at 14 30 hours Waıted ın Jagadguru's guest house for about 2 hours At about 17 00 hours we had Darshan of Shrı Jagadguru Shankaracharya Mahaswamıjı Had a tal about 15 mınutes and left for Warang vıa Agumbe Ghat At Warang, we had Darshan of Bhagwan Shrı Parshwanath and Bhagwatı Shrı Padmavatı Devı Thereafter, we reached Karkala at 20 30 hours had Darshan of Bhagwan Shrı Vahuvalı

14, On Saturday, the 5th of Aprıl 1975, we left Karkala for Moodbıdrı Had Darshan of Bhagwan Parshvanath temple and the other temple The Images ın Dıamond and peaıl, Rubby, Nıla and others, were seen by us

15 We reached Mangalore, from there we came to Venur Had Darshan of Bhagwan Shrı Vahuvalı and thereafter we reached Dharmasthal at 22 00 hours and stayed at Shrı Hegde's guest house

16 On Sunday, the 6th of Aprıl 1975, we reached Shravan-belagola at about 18 30 hours vıa Ujıre, Char Mandhıghat Belur and Halebıd We paıd our respects to Bhattarak Swamı Shrı Charukeertıjı Mahodaya

We met Shrı N M Dharmaraj Jaın, M A, Research Scholar of Jaıpur,

We also met Shri P, M, Vardhaman, Advocate, Phone No 15, Mahaveer Vihar, Kalpetta North, South Wynad, who invited us to Kalpetta for Darshan of a Glass Temple at Kootamanda

17 On the morning on Monday, the 7th of April 1975, we climbed Vindyagiri Hill and worshiped Bhagwan Shri Vahuvali In the evening we climbed Chandragiri Hill and had darshan of all of the temples

18 On Tuesday, the 8th of April, 1975, after paying our respects to Swami Shri Charukeertiji, left for Mysore at 07 15 hours We reached mysore at 08 15 hours Climbed Chamunda Hill and seen the Arti at about 11 00 hours of Chamunda Devi We stayed at Tourist Rest House, Vrindavan Gardens

19 On Wednesday, the 9th of April 1975, we left Tourist House at 08 15 hours From Gundelpet, we entered Kerala State and reached Kalpetta at about 12 40 hours. We had taken our Lunch at Shri P. M Vardhamanan, Chairman of Coffee Board etc His son Shri Akshaya accompanied us to Kootamanda where we met Shri M P Dharmapalan, Ratnatraya Vilas, Chandranath Estate, Post Kunnambatta, South Wynad, Kerala State The Glass Temple was built by his father The Temple is worth seeing All of the Bhattarks have visited including Munishri Vidyanandji

We left Kootamanda at about 18 00 hours, entered Tamilnadu and via Gudalur we reached Ooty at about 20 45 hours Our Night Halt was at Tourist Bungalow

20 On Thursday, the 10th of April 1975, we left Ooty at 14 15 hours, and we reached Coimbatore We entered Kerala State and via Palghat, Trichur, we reached Ernakulam (Cochin) at 23 25 hours Our Night Halt was at Bharat Tourist Home The Kilo Metre reading was 32,722

21 On Friday, the 11th of April 1975, we left Ernakulam (Cochin) at 10 00 hours and via Quilon, Trivendrum, we reached Cape-Camorine at 16 15 hours Cape-Comorine is in Tamilnadu State Our night halt was at Tri-Sea Cottage

22 On Saturday, the 12th of April 1975, we had seen Swami Vivekanand Rock Memorial, Kanyakumari, in between the Sea by a Launch, thereafter Mahatma Gandhi Smarak We left Cape-Comorine at 13 00 hours, reached Madurai at 24 00 hours via Suchindrum, Nagar Coil and Tirunaveli We stayed at Tourist Bungalow

23 On Sunday, the 13th of April, we met Shri Rajaramji We had seen the Meenakshi Temple and took our lunch at Shri Rajaramji's Home We left Madurai at 16 00 hours The Kilo Metre reading was 33,373. via Melur, Viralimali, Tiruchi Ulundurpet, we reached Chittoor at 0 02 hours Our night halt was at the Inspection Bungalow

24 On Monday, the 14th of April 1975, we left Chittoor at 10 00 hours We reached Tirumala Tirupati Devasthanam at 11 45 hours We occupied cottage 15-2 No 8 At Tirupati, there are now two roads to Tirumala Tirupati Devasthanam, one is for going and other is for returning, while going the distance is of 19 Kilo Metres and while coming the distance is of 17 Kilo Metres

On Monday the 14th April and Teusday the 15th April 1975, we had special Darshan of Shri Balaji We left on Tuesday the 15th of April 1975, Tirumala Devasthanam at 10 30 hours The Kilo Meter reading was 33,993

Via Tirupati, Renigunta, Cuddapah, we reached Tadpatri at about 19 00 hours We had our Car accident, both of the front windows and gear box was damaged We had the local repairs and left Tadpatri at about 23 00 hours We reached Anantpur at 24 00 hours The Kilo Metre reading was 34,362 We had our night halt at a Petrol Pump

25 On Wednesday, the 16th of April 1975, we left Anantpur at 08 00 hours, we reached Bellary and got further repair at a Mechanic Shop We left Bellary and reached Dharwar via Havery and Hubli at 22 00 hours Our night halt was at Travellers' Bungalow

26 On Thursday, the 17th of April 1975, we left Dharwar at 09 00 hours for Goa, via Onda-Satari, Mapuca, we reached Panji The Kilo Metre reading was 34,998 We employed a guide We went to old Goa, where we saw Saint X'avier's dead body in a silver Coffin Thereafter we crossed the river in a launch including the Car and reached Vasco at 18 00 hours We met Shri Raikumarji, Soubhagyawati Ravi and Chiru Ruchi We stayed at Hotel Rebelo

27 On Friday, the 18th of April 1975, we left Vasco at 09 00 hours The Kilo Metre reading was 35,073 Via Ponda and Anmode, we reached Belgaon We purchased a Tyre and a Tube We left Belgaon at about 18 00 hours and reached Bijapur at about 23 50 hours via Gokak, Rabkari and

Jamkhind Our night halt was at Karnatak State Transport Guest House We saw Gol Gumbaj etc

28 On Saturday, the 19th of April 1975, we left Bijapur at 14 00 hours and reached Pandharpur at 17 00 hours We had special Darshan of Shri Vithal-Rukhamai Temple We left Pandharpur at 18 00 hours and reached Sholapur at 19 05 hours The Kilo metre reading was 35,666 We stayed at Laxmi-Vishnu Guest House

Shri N R Raut managed everything for us at the Guest House Shri S P Chitre and Shri R K Bapat met us Shri Chandranath Vistappa Vankudre, Panditratna Vardhaman Parshwanath Shastri and one another came in the Guest House and presented to me an invitation card for the 'SATKAR SAMARAMBHA' which was to be held on 20th of April 1975 at 20 80 hours

29 On Sunday, the 20th of April 1975, Shri R K Bapat met us in the Guest House, early in the morning We had our break fast at Shri Raut's Bungalow Thereafter he took us in his Car to Laxmi-Vishnu Mills In Shri Chitre's office, some of the Departmental Heads were there There was a question to me as to how I entered into the Sales Line and about the Technic therein I talked for about 40 minutes over the subject, about my technical education, joining of Mills, working therein in various capacities and lastly as Salesman therein Thereafter I was a Trader in Textiles and now my sons are very ably carrying on Thereafter Shri Raut took me in Laxmi Mills Spinning, Weaving and other departments

We had our Lunch at Shri Vankudre s house, He is the president of Chamber of Commerce at Sholapur In the afternoon Mrs Dr Lokhande took us to her home In the evening there was 'SATKAR SAMARAMBH' at South Kasba 71/72, Zunze Bole, Sholapur, where we attended

On Monday, the 21st of April 1875, Shri Bapat, Shri Chitre, and Shri Raut met us in the morning at the guest house We had our break fast at the guest house

At about 09 00 hours, we went to Shri Atishaya Kshetra Chintamani Parshwanath, Kasar Temple and we had 'PANCHABHISHEK' done there We took our lunch at the residence of Panditratna Shri Vaidhaman Parashwanath Shastriji We left Sholapur at 15 00 hours We reached Poona at 19 30 hours We left Poona at 21 00 hours and reached Bombay at 01 15 hours on the morning of 22nd of April 1975

We had done 6,054 Kilo Metres i e 3,784 miles We all returned comfortably

87. Summary of the Subjects dealt in :

1 In the First Chapter, I wrote on 'DRAVYA-TATVA AND PADARTH whatever I read, studied and grasped, I have written in it and alike in other Chapters.

2 In the Second Ch pter, I wrote on 'JAIN DHARMA',

3 In the Third Chapter, under the caption 'KUCHH-JANKARI' I wrote on JIV KI STHITI, the meaning of the Dharma dealing in 'PRATIMA' 'DASHLAKSHAN', 'RATNATRAYA', SOLAHA KARAN BHAWNA and 'SAMADHI'.

4 In the Forth Chapter, I wrote on the CONCENT-RATION OF MIND'. dealing therein the subject matter as I grasped.

5 In the Fifth Chapter, under the head 'THE DOCT-RINE OF JAINISM', I wrote on Gradual develop-ment of Soul, 'GUNASTHANAS' and 'MARGANAS' In this Chapter much I have taken from 'DRAVYA SAMGRAH' 'THE CAUSATION UPADANA (the substantial cause) and NIMITTA (the determining cause)'

6. (1) In the Sixth Chapter, under the caption 'MOKSHA MOOLAM', I have practically explained the contents of ,

त्रैकाल्य द्रव्य-षट्क नव-पद-सहित जीव षट्काय-लेश्या ।

(2) In the same Chapter, I wrote about ELEVEN GANDHARAS OF BHAGWAN MAHAVIR'

7. In the Seventh Chapter, I wrote about the 'UNIVERSE'

8. In the Eighth Chapter, I wrote about Length-wise measures and Time-wise measures, according to Colebrook, I have worked miles in a 'RAJU'

9. In the Ninth Chapter, I wrote about 'BIJAKSHAR', according to 'RISHIMANDAL STOTRA AND MANGAL MANTRA NAMOKAR', by Late Dr Nemichandaji Jain

10. In the Tenth Chapter, about 'CHAUBIS TIRTHANKAR', dealing therein the various aspects of their life, and 'ACHARYA PARAMPARA AFTER BHAGWAN MAHAVIR'.

11. In the Eleventh Caapter, I wrote about 'RISHABH DEV', 'BHARAT' and 'VAHUVALI' together with Bhattarak Dynasties at Shravanbelgola and Humcha-Padmavati

12. In the Twelfth Chapter, there is about me

13. In the Thirteenth Chapter, I wrote about 'UPADHYAYA SHRI VIDYANANDAJI', 'ACHARYA SHRI MAHAVIR KIRTIJI' and 'MUNI SHRI SUDHARMASAGARJI'

14. In the Fourteenth Chapter, I attached an Appendix collecting therein the words and phrases of day to day use.

88. My Thanks to my Colleagues :

I am very much thankful to, two of my colleagues, Shri Bharat Somchand Vindhara and Shri Dattatray Gopal Raykar, who helped me a lot in completing these "कुछ अभ्यास की पक्तियाँ ।"

99, Marine Drive,
BOMBAY 400 032
Friday the
18th July 1975.

Shankarlal Kasliwal.

My 78th Birth Day

18-7-1975

॥ श्री ॥

कुछ अध्यात्म की पंक्तियाँ

तेरहवाँ अध्याय   13TH CHAPTER

मुनिगण

संकलनकर्ता परम पूज्य उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी

पडित माणिकचन्द न्यायाचार्य के वे सहपाठी थे । उन्होने दक्षिण भारतसे उत्तर भारत आकर जैन धर्मके सम्बधमे काफी अध्ययन किया था । वे दक्षिण भारतमे जैन धर्मको व्यापक रूप देने मे बडे सहायक रहे थे । उनके क्रियात्मक जीवनका जनतापर बडा प्रभाव था । वे धार्मिक, सत्यनिष्ठ और आचारवान व्यक्ती थे। उनका निधन रविवार दिनाक २१ सितम्बर १९६९ को हुआ ।

५ मुनिश्री ने शेडवाल मे श्रीशान्तिसागर विद्यालयमे तत्त्वोका अध्ययन किया था । पश्चात् वे इसी विद्यालयके प्रधानाचार्य भी रहे । मुनिश्री को आचार्यश्री कुन्थु सागरजी का भी सयोग रहा था ।

६ यह सयोग की बात है, आचार्यश्री शान्तिसागरजी और मुनिश्री विद्यानन्दजी, दोनोका जन्म बेलगाव तालुके का है। आचार्यश्री क्षत्रिय शिरोमणी थे । और मुनिश्री ब्राह्मण कुलमुकुट है ।

७ ईस्वी सन १९४५ के दिसम्बर मासमे तपोनिधि आचार्यश्री महावीर कीर्तिजीका शेडवालमे आगमन हुआ । मुनिश्रीने पूर्व सस्कारो से उत्पन्न विरक्तीवश २० वर्षकी अवस्थामे आचार्यश्री से ब्रह्मचर्यव्रत अगीकार किया ।

८ लगभग सात मासके पश्चात् मुनिश्रीने ग्राम तमड्डीमे परमपूज्य आचार्य महावीरकीर्तिजीसे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर पार्श्वकीर्ति नाम धारण किया ।

९ मुनिश्रीने क्षुल्लक अवस्था मे अध्ययन, मनन और चिन्तनमे स्वपर कल्याण हेतु विभिन्न स्थानो के ग्रन्थालयो मे ग्रन्थोका अध्ययन कर अपार ज्ञानका सचय किया ।

१० मुनिश्रीने मुनि दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व क्षुल्लक अवस्थामे मद्रास, केरल महाराष्ट्र, म्हैसूर, उडीसा, बगाल, विहार, राजस्थान, पजाव और उत्तर प्रदेश आदि अनेक राज्योका भ्रमण किया ।

११ मुनिश्री ने क्षुल्लक अवस्था मे जहा जैन शास्त्रो का अध्ययन किया, वहा उन्होने अन्य धर्मोके भी अनेक ग्रथ पढे । उन्होने अपने देशकी अनेक भाषाओ की

भी जानकारी प्राप्त की। जिनमे कन्नड, तामिल, मराठी, गुजराती, सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और अग्रेजी मुख्य हैं ।

१२ मुनिश्री की अनुरक्ति राष्ट्रीयता और स्वदेशी के प्रति रही है । मुनिश्री हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं । उनका कहना है कि हिन्दी हमारे सम्पूर्ण राष्ट्रकी एकता की कडी है । कोई राष्ट्र उस समय तक उन्नति नही कर सकता जब तक उसकी एक भाषा न हो ।

१३ मुनिश्री ने क्षुल्लक अवस्था मे चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शाति-सागरजी के समीप रहकर अध्यात्म साधना की और तपस्वी जीवनका अभ्यास किया । मुनिश्री क्षुल्लक अवस्थामे ही सुलेखक और प्रभावशाली प्रवक्ता रहे ।

१४ मुनिश्री १८ वर्ष पर्यन्त क्षुल्लक अवस्था मे रहे । इस बीच कन्नड भाषाके ग्रन्थ पम्प रामायण मे वर्णित भगवान राम के जीवन चरित्र ने इनके मन पर विशेष प्रभाव डाला । इस ग्रन्थ के पढने के उपरान्त उन्होंने १८ रामायणो का अवलोकन किया ।

१५ पश्चात मुनिश्रीने गुरुवार, श्रावण शुक्ला पचमी, विक्रम सम्वत २०१९ वीर निर्वाण सम्वत् २४८८, तद्नुसार दिनाक २५ जुलाई १९६३ को, आचार्यप्रवर श्री १०८ देशभूषणजी महाराजसे दिल्ली मे दिगम्बरी मुनि दीक्षा ग्रहण कर विद्यानन्द नाम धारण किया ।

१६ मुनिश्रीने लोककल्याणकारी, ईस्वी सन १९६४ के चातुरमासके समय से जयपूर मे सार्वजनिक प्रवचन प्रारम्भ किये । मुनिश्री विश्वधर्म प्रेरक विश्वमत, जैन धर्म के महान प्रभावक और प्रसिद्ध दिगम्बर साधु हैं ।

१७ मुनिश्री के प्रवचन गणधररूप होते हैं । सभास्थल सहस्त्रों की सख्या मे खचाखच भर जाता है । सबही विचारो का जनसमुदाय रहता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी धारणा के अनुसार ग्रहण करता है। मुनिश्री द्वारा उच्चारित प्रत्येक वर्ण प्रेरक होता है ।

१८ मुनिश्री के मुनि के रूप मे निम्नांकित चातुर्मास हुए –

स्थल	वर्ष
(१) जयपुर	१९६४
(२) फिरोजाबाद	१९६५
(३) दिल्ली	१९६६
(४) मेरठ	१९६७
(५) बडौत (जिला मेरठ)	१९६८
(६) सहारनपुर	१९६९
(७) श्रीनगर	१९७०
(८) इन्दौर	१९७१
(९) श्रीमहावीरजी	१९७२
(१०) मेरठ	१९७३
(११) श्री महावीरजी	१९७४

१९ मुनिश्री की हिमालय यात्रा अद्वितीय थी । मुनिश्री ने सन १९६९ का चातुर्मास सहारनपुरमे किया । पश्चात् विहारकर मुनिश्री बिजनौर, नजीबाबाद होते हुए शुक्रवार दिनाक ८ मई १९७० को कोटद्वार पहुँचे । बिजनौर से कोटद्वार ४८ माईल है । कोटद्वार पौडी गढवाल जिले का प्रमुख स्थान है । इस स्थान मे मुनिश्री का भव्य स्वागत किया गया ।

२० मुनिश्री कोटद्वार से दुगड्डा, सतपुली और पौडी होते हुए शनिवार दिनाक १६ मई १९७० को श्रीनगर पहुँचे । श्रीनगर मे मुनिश्री का भव्य स्वागत हुआ । श्रीनगर कोटद्वार से ९७ माईल है ।

२१ दिल्ली से श्रीनगर जाने के दो मार्ग है, एक दिल्ली से मुझफ्फरनगर, फिर बिजनौर, नजीबाबाद , कोटद्वार दुगड्डा, लेन्सडोन, सतपुली, पौडी होते हुए । इस मार्ग से श्रीनगर २४५ माईल है । और दूसरा, दिल्ली से मुझफ्फरनगर, फिर ऋषि-

केश, लक्ष्मणझूला, देवप्रयाग, कोल्टा होते हुए। इस मार्गसे श्रीनगर २१० माईल है। मुनिश्री ने प्रथम मार्ग से यात्रा की।

२२ श्रीनगर गढवाल का प्रमुख नगर समुद्र तट से १९०० फीट ऊँचाई पर अलकनन्दा के किनारे पर बसा है। श्रीनगर मे अलकनन्दा के तट पर प्राचीन एक जैन मन्दिर है। मन्दिर मे भगवान् ऋषभदेव की श्वेत संगमरमर की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिम विराजमान है। अन्य तीर्थंकरो की भी यहा कुछ और प्रतिमायें हैं। इस समया हिमालय मे केवल यही एक जैन मदिर सुरक्षित है।

२३ दुगड्डा २००० फीट, चेक पोस्ट ४००० फीट, डेरियाखल ५००० फीट, लेन्सडोन ५६०० फीट, बाबाखल ६००० फीट, पौडी ५३०० फीट, इसी प्रकार समुद्र तटसे प्रत्येक स्थान की कमजादा ऊँचाई पार करते हुए मुनिश्री श्रीनगर पहुँचे थे।

२४ मुनिश्री ने गुरूवार दिनाक २१ मई १९७० को श्रीनगर से विहार किया। भट्टीसेरा, रुद्रप्रयाग, गोचर, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, चमोली आदि स्थानोपर विश्राम लेते हुए समुद्र तटसे कमजादा ऊँचाई को पार करते हुए मगलवार दिनाक २६ मई १९७० को मुनिश्री ४००० फीट ऊँचाई पर पीपलकोटी पहुँचे।

२५ मुनिश्री के आहार की व्यवस्था एक दिन सहारनपुरवाले तथा दूसरे दिन दिल्लीवाले करते थे। मुनिश्री के प्रवचन उपयुक्त स्थानोपर होते रहते थे।

२६ मुनिश्री गुरुवार दिनाक २८ मई १९७० को ६१५० फीट ऊँचाई पर जोशीमठ पहुँचे। मुनिश्री का प्रवचन शुक्रवार दिनाक २९ मई १९७० को जोशीमठके इन्टर कॉलेज मे हुआ।

२७ जोशीमठ से विष्णुप्रयाग करीब १८५० फीट नीचा है। वह समुद्र तल मे ४३०० फीट ऊँचा है। फिर पाण्डुकेश्वर विष्णुप्रयाग से १७८५ फीट ऊँचा है। याने पाण्डुकेश्वर समुद्र तल से ६०८५ फीट ऊँचा है। फिर हनुमानचट्टी समुद्र तल से ८००० फीट ऊँची है। ऊँचाई निचाई पार करते हुए मुनिश्री समुद्रतल मे १०२५० फीट ऊँचे स्थान बदरीनाथ पर शनिवार दिनाक ३० मई १९७० को पहुँचे।

२८ वदरीनाथपर अनेक विशिष्ठ व्यक्तियोने मुनिश्रीका स्वागत किया। वदरीनाथ मदिर मे मुनिश्रीका भव्य स्वागत हुआ। मुनिश्रीने अभिषेक पूजा मे भाग लिया। रविवार दिनाक ३१ मई १९७० और सोमवार दिनाक १ जून १९७० को मर्यादा पुरुषोत्तम, भगवान श्रीराम और भगवति सीता के परमोज्वल चारित्र पर मुनिश्री के मदिरके प्रागण मे प्रवचन हुए।

२९ मगलवार दिनाक २ जून १९७० को मुनिश्री ने श्री वदरीनाथसे विहार किया। लौटते हुए मुनिश्री अलकनन्दा के किनारे किनारे सघके कुछ श्रावको के साथ लामवगड पहुँचे मुनिश्रीका प्रथम विश्राम लामवगड मे रहा।

३० लामवगड से मुनिश्री जोशीमठ आये और वहाँ से मगल विहार करते हुए श्रीनगर तक उन्हीं स्थानो मे ठहरे जहाँ उन्होंने वदरीनाथ जाते समय निवास किया था।

३१ मगलवार दिनाक ९ जून १९७० को कर्णप्रयाग मे श्रुत पचमी के दिन मुनिश्री ने पौडी गढवाल जिले के श्रीनगर मे चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की।

३२ ईस्वी सन १९७० का चातुर्मास मुनिश्रीका श्रीनगर मे हुआ।

इति

परम विज्ञ आचार्यरूप मुनिश्री विद्यानंदजी

तपोनिधि आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी

१ आचार्यश्रीका जन्म नाम महेन्द्रकुमार था । आचार्य श्री का जन्म स्थान उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध व्यापारिक नगर (भगवान चन्द्रप्रभु की झिलमिलाती नगरी) फिरोज़ाबाद का कटरा पठानन (मोहल्ला) था ।

२ आचार्यश्रीका जन्म दिन मगलवार, वैशाख कृष्ण ९, विक्रम सम्वत १९६७, वीर निर्वाण सम्वत् २४३७, तद्नुसार दिनाक ३ मई इस्वी सन १९१० था

३ आचार्यश्रीका जन्म परम सौभाग्यवती पूजनीय माँ वृन्दादेवी के गर्भ हुआ था । आचार्य श्री के पिता श्रेष्ठिवर्य आदरणीय रतनलालजी थे । वे सस्कृतके परम विज्ञ थे ।

धर्म-ध्यान की साकार प्रतिमा

४ सौभाग्यवती वृन्दादेवी ने गर्भस्थ कालमे तीर्थराज शिखरजी की वन्दना की थी और ससार की अनित्यता को देखकर वैराग्य का चिन्तन किया था ।

५ आचार्यश्री पर उनकी मातुश्री की धर्मभावना का प्रभाव वाल्यावस्थासे ही परिलक्षित होने लगा था । आचार्यश्री का सस्कृत का ज्ञान उनके पूज्य पिताश्री की देन थी ।

६ आचार्यश्रीकी प्रारम्भिक शिक्षा का आरभ फिरोझावाद मे हुआ था । आचार्यश्रीकी नौ वर्ष की अल्पायु मे, उनकी धार्मिक प्रेरणा का श्रोत, उनकी पूज्य मातुश्री का देहान्त होने से आचार्यश्रीकी पश्चात की शिक्षा मुरेना मे हुई थी ।

७ आचार्यश्रीने धार्मिक शिक्षा के अलावा अग्रेजी की मैट्रिक तक की शिक्षा मुरेना मे की थी । इन्दौर दिगम्बर जैन महा विद्यालय मे आचार्यश्रीने जैनसिद्धान्त, जैनसाहित्य, जैन दर्शन , और जैन न्याय का अध्ययन किया था ।

८ आचार्यश्री हिन्दी, मराठी गुजराती, कन्नड, तामिल, तेलगू, पजाबी, बगाली, उडिया, अग्रेजी, सस्कृत, उर्दू, पाली, मागधी, प्राकृत, अपभ्रश आदि अठारह भाषाओंके बहुश्रुत प्रभावक विद्वान थे ।

९ आचार्यश्रीने, छन्द, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, तर्क, आयुर्वेद आदि शास्त्रोका गहन अध्ययन किया था ।

१० आचार्यश्री परम आत्मशोधक, अध्ययनार्थी के रूपमे अनेक स्थानोका भ्रमण किया था ।

११ आचार्यश्री की दृष्टी मे स्नेहमयी सौभाग्यशालिनी माँ वृन्दादेवी 'प्रेरक' के रूप मे निरन्तर रहती थी । आचार्यश्रीकी वैराग्य भावना दिन-प्रतिदिन बढती जाती थी ।

वैराग्य के सोपान पर

१२ आचार्यश्री को कर्मबन्ध के कारण तत्त्व 'आस्रव' और कर्म 'मोहनीय' अल्प वय मे भी भलीभाँति प्रत्यक्ष दिखते थे । आचार्यश्री विवाह का प्रस्ताव कैसे स्वीकार करते ।

१३ आचार्यश्री ने वीस वर्ष की अवस्थामे, परम पूज्य मुनिराज चन्द्रसागरजी से सप्तम प्रतिमा (ब्रह्मचर्य व्रत) ग्रहण किया था । सम्वत १९९५ मे २८ वर्ष की अवस्था मे आचार्यश्री ने मेवाड के टाकटोका नामक स्थानपर, परम पूज्य आचार्य

वीर सागर से क्षुल्लक दीक्षा धारण की थी।

१४ आचार्यश्री ने सम्वत १९९९ मे, ३२ वर्ष की वय मे २८ मूल गुण सहित, उदगाव (दक्षिण भारत) मे १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी से परम दिगम्बरी, अन्तरग और वहिरग परिग्रह रहित मुनिदीक्षा धारण की थी।

१५. आचार्यश्री, परम पूज्य गुरुवर्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात शेडवाल (बेलगाव) मे, अनेक राजा, महाराजा जागीरदार, दिगम्बरमुनिराज, एलक, क्षुल्लक आदि एक लाख जन समूह के समक्ष आचार्य पदपर प्रतिष्ठित हुए थे।

१६ आचार्यश्री ने दक्षिण भारत के, मद्रास, चितामूर, काजीवरम, पोन्नूर, शिखरतिरुमलय, वेगलोर, आरसीकेरी, श्रवणबेलगोल (जैनबद्री), म्हैसूर, हलेविड (द्वारा समुद्र), वेणूर, मूडबिद्री, कारकल, हुमचापद्मावति, वारग, पेरुमण्डूर, पुण्डी, मनारगुडी, हुबली, कुत्थलगिरि, वादामी, विजापूर, कोल्हापूर, वेलगाव, स्तवनिधि, इलापूर, आष्टे, उखलद, श्रीक्षेत्रकुण्डल, श्रीक्षेत्र कुम्भोज, श्रीक्षेत्र कुल्पाक, दहीगाव, धाराशिव आदि सम्पूर्ण दक्षिण भारत मे विहार किया था। दस वर्षोतक दक्षिण भारतकी भुमि आचार्य श्री के चरणाबुज के स्पर्श से पवित्र होती रही थी।

१८, आचार्यश्री ने महाराष्ट्र के अतरिक्ष पार्श्वनाथ, कारजा मुक्तागिरी भातकुली, रामटेक, गजपथा मागीतुगी, पुना, बम्बई सोलापुर, नासिक, मनमाड, नागपूर, अमरावती, धुलिया आदि क्षेत्रो मे कई वार विहार किया था।

१९, आचार्यश्री ने पश्चिम भारत के, महुआ, नवसारी, सूरत भडोच, वडोदा, पावागड, सत्रुजय गिरनार, मारगा आदि क्षेत्रो मे कई वार विहार किया था।

२० आचार्यश्री ने राजस्थान के आबू, जोधपुर, नागोर, अजमेर, उदयपुर, वृषभदेव, श्रीमहावीरजी, चादखेडी, कोटा जयपुर, बिकानेर, आदि क्षेत्रो मे कई वार विहार किया था।

२१ आचार्यश्री ने मध्यप्रदेश के वडवानी, बावनगजाजी उन, सिद्धवरकूट इन्दौर, उज्जैन, मक्सी, ग्वालीयर, सोनागिरी, अजयगढ़, द्रोणागिरी, नैनागिरी, कुण्डलपूर, सागर, देवगढ, पपौरा, अहार, चदेरी, पचराई थूवनजी, भोपाल, विदिशा आदि क्षेत्रो मे कई बार विहार किया था ।

२२ आचार्यश्री ने उत्तर भारत के अहिक्षेत्र, हस्तिनापूर चौरासी, सौरीपुर, दिल्ली, मथुरा, आग्रा, मेरठ, कम्पिलाजी, कानपुर, इलाहाबाद, फरूखावाद फफौसाजी, कौशाम्बी, लखनऊ, अयोध्या, रत्नपुरी, त्रिलोकपूर आदि क्षेत्रो मे कई बार विहार किया था ।

२३ आचार्यश्री ने पूर्व भारत के, वनारस, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, किष्कीन्धापूर, कुकुमग्राम, श्रावस्ती, आरा, पटना, कुण्डलपूर, राजगृह, (पन्चशैल), पावापूर, गुणावर, नाथनकर, भागलपूर, मदारगिरि, गया, मधुवन (सम्मेदशिखर) खण्डगिरि, उदयगिरि, कलकत्ता, विहार, उडिसा आदि क्षेत्रो मे भी कई बार विहार किया था ।

२४ आचार्यश्री मुख्यता तीर्थक्षेत्रोपर चतुर्मास किया करते थे। आचार्य श्री विहार करते हुए भारत वर्ष के अनेक स्थानोको पवित्र करते हुए असख्यात जनसमुदाय की प्रवर्ति मोक्षमार्ग पर लाते थे ।

२५ आचार्यश्री द्वारा कई क्षुल्लक दीक्षा, कई एलक दीक्षा, कई आर्यिका दीक्षा कई मुनि दीक्षा दी गई थी। मुनिके रूप मे १०८ आचार्य श्री विमल-सागरजी, क्षुल्लक के रूम मे १०८ मुनि श्री विद्यानदजी, आदि अनको के वे दीक्षा गुरू थे ।

२६ आचार्यश्री के सघ मे अनेको मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक आदि रहा करते थे। सन १९७० मे मागीतुगी सिद्ध क्षेत्रपर आचार्य श्री के सग निम्नोक्त मुनिगण थे। (१) १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज, (२) १०८ श्री नेमीसागरजी महाराज, (३) १०८ श्री कुन्थसागरजी महाराज, (४) १०८ श्री शम्भुसागरजी महाराज,

आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी

माँगी तूँगी १०·१०·१९७०

(५) १०८ श्री अरहसागरजी महाराज, (६) १०८ श्री वासपूज्यसागरजी महाराज (७) १०८ श्री नमी सागरजी महाराज और (८) १०८ श्री आदिसागरजी महाराज। इनके अलावा कई आर्यिकाएँ और क्षुल्लीकाएँ भी थी।

२७ आचार्यश्री की अन्तिम यात्रा ईस्त्री सन १९७० के नोव्हेम्बर मास के अन्तीम सप्ताहमे श्री मागीतुगी सिद्धक्षेत्र से आरभ हुई। दिनाक ९-१२-१९७० को आचार्य श्री मयसग के खरगोन मे थे। सिद्धक्षेत्र ऊन, सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकुट आदि वन्दना के पश्चात आचार्य श्री तीर्थराज बावनगजाजी (बडवानी) मे दिनाक ३०-१२-१९७० को थे।

२८ आचार्यश्री दिनाक १-२-१९७१ पावागढ मे थे। पश्चात आचार्य श्री शुक्रवार दिनाक १९-३-१९७१ को पालीताना मे (शत्रुन्जयपर) थे।

२९ पश्चात आचार्य श्री परम वन्दनीय सिद्धक्षेत्र गिरनार पर चतुरमास करते हुए सघ सहित तारगा सिद्धक्षेत्र के तरफ बिदा हुए। मार्ग मे परमपूज्य आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी मेहसाणा (गुजरात) मे माघ कृष्ण ६, सम्वत विक्रम २०२८, वीर निर्वाण सम्वत २४९८, तद्नुसार गुरुवार दिनाक ६-१-१९७२ को रात्री के करीब ९ बजे ६१ वर्ष ८ महिने और ३ दिन इहलोक मे रहते हुए समाधिस्थ हुए।

इति

श्रद्धांजली ....

१ मुनिश्री सुधर्मसागरजीने, दिनके सवा बजे, म्हसरुल (नासिक) गजपया सिद्धक्षेत्र पर, सोमवार आश्विन कृष्ण १३ दिनाक २४–९–१९७३ को इहलोककी यात्रा पूर्ण की।

२ मुनीश्री ने श्रावण शुक्ल १५, सोमवार दिनाक १३–८–१९७३ को केवल दूध पानी लेनेका सकल्प करके सल्लेखना व्रत धारण किया।

३ मुनिश्रीने भाद्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार दिनाक २९–८–१९७३ से केवल दो तीन दिनके अतरसे, पानी रखा। पश्चात मुनिश्रीने भाद्र शुक्ल १२ रवीवार दिनाक ९–९–१९७३ को अतिम पानी लेकर यम सल्लेखना आरभ की। महान थी यह यम सल्लेखना।

४ मैने परमपूज्य मुनिश्रीकी वदना शुक्रवार आश्विन कृष्ण २ दिनाक १४–९–१९७३ को की। प्रथम दर्शन मेरे करीब १२ वजे हुए। मुझे एसा लगा मुनिश्री आज्ञाविचय ध्यानमे मग्न है, अप्रमत्तसयत उनकी स्थिति है।

५ द्वितीय दर्शन मुझे करीब सवा दो वजे हुए। मुनिराज मानो पृथक्त्व-वितर्क विचार मे ध्यानस्थ, अनिवृतिकरण स्थितिमे है ऐसा मुझे लगा।

६ तृतिय दर्शन मुझे चार वजे हुए। महामुनिके पास पहुँचने और बैठनेका मझे सौभाग्य मिला। साम्यभावका वातावरण था। मुनिश्रीके पूर्व प्रयोगोका गठन महान थी। प्रत्येक स्थिति दिव्य थी। मगल मत्रोका उच्चारण हो रहा था।

७ मन्त्र उच्चारणमे मैंने भी भाग लिया। सिद्ध परमेष्ठि के गुण गान

ज्ञानोपयोगविमल विशदात्मरूप
सूक्ष्म–स्वभाव–परम यदनन्तवीर्यम्।
कर्मौघ–कक्ष–दहन, सुख–शस्य–बीज
वन्दे सदा निरुपम वर–सिद्ध–चक्रम ॥

यह मैंने कई दफे बोला। महाराजश्री उठ बैठे। फिर पूर्ण णमोकार मन्त्र बोला। फिर कई दफे

ओनमोअर्हद्भ्य ईशेभ्य
ओसिद्धेभ्यो नमो मम
ओनम सर्वसूरिभ्य
उपाध्यायेभ्य ओनम
ओनम सर्वसाधुभ्य
तत्वदृष्टिभ्य, ओनम
ओनम शुद्धबोधभ्य
चारित्रेभ्यो नमो नम

मैंने बोला फिर मेरे बेटे चिरू विवेककी इच्छा महाराजश्री का फोटो लेनेकी हुई और वह ले लिया गया।

८ चतुर्थ दर्शन मैंने करीब साडेपाच बजे किये। ऐसा लगता था मुनिश्री विपाकविचय ध्यानमे उपशम श्रेणीके आरोहणकी तैयारी मे हो।

९ मुनिश्रीका जन्म सन १९०३ मे, तिरुपणपूर, मद्रास प्रान्तमे हुआ। आपके पिता वज्रबाहु और माता रुक्मीणीदेवी सात्विक और शान्त प्रकृतिके थे। जिन धर्म पर उनकी प्रगाढ श्रद्धा और भक्ती थी। उन्होने आपका नाम पार्श्वनाथ रखा। सन १९११ मे आपके पिताश्री वज्रबाहूजीने मुनिदीक्षा ली। पिताजीका

प्रभाव श्री पार्श्वनाथ पर पडा। वे सयमपूर्वक परिग्रह विहीन रहने लगे। उनकी प्रकृती और प्रवृत्ति शान्त और निष्कषाय होने लगी। निरतर स्वाध्याय और आत्म-चिन्तनमे लीन रहने लगे। फलत धीरेधीरे श्री पार्श्वनाथकी वृत्ति वैराग्य की तरफ वढने लगी। अतमे सन १९६६ मे, श्री पार्श्वनाथ ने ६३ वर्षकी आयुमे आचार्यश्री विमलसागरजी महाराजसे सोलापुरमे मुनिदीक्षा धारण की।

१० स्वात्म ध्यानमे लीन परम दिगम्बर साधु स्वामीश्री सुधर्मसागरजीके दर्शन प्रथम मुझे वोरीवली (वम्बई) के मदिरमे हुए पश्चात पोदनपुरे (वम्वई मे हुए। वृत, उपवास, तप, ध्यान, सयम, आदि जव ही सार्थक है तव वे ऋषी समाधिपूर्वक इहलोक की यात्रा पूर्ण करे।

११ अध्यअपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मन ध्यात्वा लभते इन्द्रत्व।
लौकान्तिकदेवत्व तत च्युत्वा निर्वृति याति ॥
(कुदकुदाचार्य)

१२ हे मुने, आपका स्थान ब्रह्मलोकमे हो। हे देवर्षि, तुभ्य नम तुभ्य नम। हे चारित्र नायक गुरूवर्य, आपकी भक्ति सदा हममे हो। जो ससारका विनाश कर मोक्षका कारण वने। इति

नोट मुनिश्रीकी वदनार्थ (१) मै (२) सौभाग्यवती चिरू विजया सोनी (मेरी वडी वेटी) (३) चिरू उन्नति (४) चिरू विवेक (५) चिरू भावना और (६) श्री सतीश गगवाल प्रात ६ वजे शुक्रवार दिनाक १४-९-१९७३ को मोटर द्वारा वम्वईसे म्हसरूल (नासिक) गये। धुलियासे दर्शनार्थ आई हुई सौभाग्यवती चिरू स्नेह गगवाल (मेरी दूसरी वेटी) तथा चिरजीव रमेश गगवाल मेरे जवाई और उनके मातापिता आदिसे हमारी भेंट गजपथागिरी पर हुई। वडा आनद रहा। फिर उसी दिन वे लोग धुलिया लौट गये और हम वम्वई चले आये।

१४ ९-१९७३ म्हसरूळ (नासिक) मुनिश्री सुधर्मसागरजी
यम सल्लेखना आरंभ १३ ८ ७३
जन्म १९०३ - मुक्ति २४ ९ ७३
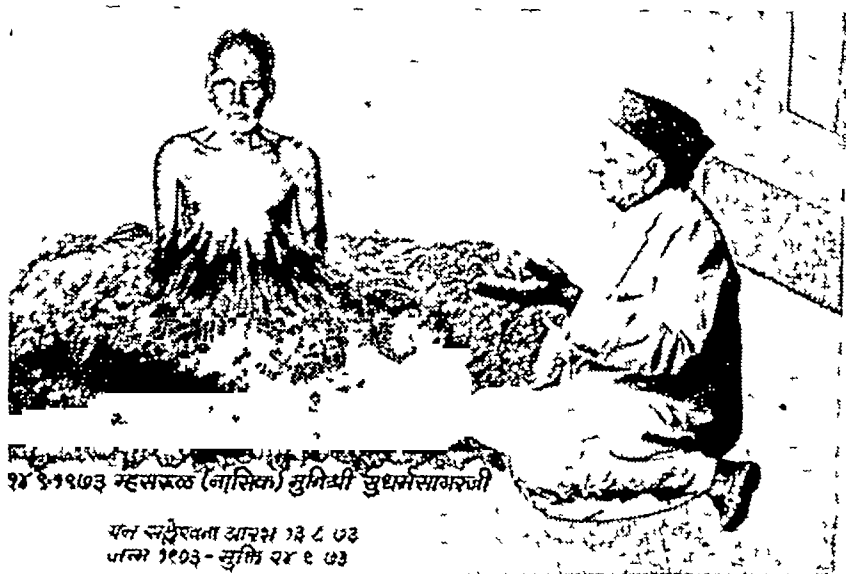
॥ श्री ॥

कुछ अभ्यास की पंक्तियाँ

चतुर्दश प्रकरण · 14TH CHAPTER

परिशिष्ट The Appendix

१ अर्थ-संग्रह

(१) अधिकार – प्रकरण, परिच्छेद, अध्याय, अनुच्छेद।

(२) अणु – सर्व स्कंधों के अन्तिम भाग को परमाणु जाने। वह अविभागी, एक, शाश्वत, मूर्त रूपसे उत्पन्न होने वाला तथा अशब्द है। मूर्तत्व (रूपित्व) के कारणभूत स्पर्श-रस-गंध-वर्ण के परमाणु से कथनमात्र द्वारा ही भेद जो किया जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओंका कारण है, उसे परमाणु जाने कि जो परिणाम गुणवाला है और स्वयं अशब्द है।

(३) अविपाक निर्जरा – आत्मा के शुद्ध भाव द्वारा स्थिति पूर्ण होने से पूर्व कर्मोंका खिरना।

(४) अतिचार – व्रत की अपेक्षा रखते हुए उसका एक देश भंग अतिचार कहलाता है। इससे व्रत विशेष दूषित नहीं होता।

(५) **अनर्थदण्ड** – निष्प्रयोजन मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति को अनर्थ दण्ड कहते हैं ।

(६) **अनाचार** – व्रतका भङ्ग हो जाना अनाचार कहलाता है ।

(७) **आवर्त** – दोनो हाथो को अञ्जलि जोड कर मस्तक के सामने कर दाहिनी ओर से बाईं ओर को घुमाना ।

(८) **अघातिया** – जीव के ज्ञानादिक अनुजीवी गुणो का घात नही करने वाले कर्म ।

(९) **अचित्त** – अंकुरोत्पत्ति के अयोग्य सूखी, पकी, गर्म, खटाई या नमक आदि मिश्रित और यन्त्र (चक्की) आदि से छिन्न भिन्न वस्तु ।

(१०) **अजीव** – चेतनारहित वस्तु ।

(११) **अंतरंगलक्ष्मी** – अनन्त चतुष्टय ।

(१२) **अवधिज्ञान** – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षापूर्वक रूपी पदार्थोंका ज्ञाता ज्ञान ।

(१३) **अवसर्पिणी** –जिसमे भोग, आयु और शरीरप्रमाण आदि की क्रमसे हीनता होती है, वह समय ।

(१४) **उद्योत** – चन्द्र, चन्द्रकान्तमणि और खद्योत (जुगनू) आदिका प्रकाश ।

(१५) **उपयोग** – ज्ञान और दर्शनगुणका व्यापार अथवा चारित्र की अपेक्षा से शुभ-अशुभ और शुद्ध, ऐसे आचरण के अर्थ मे चारित्रगुण ।

(१६) **ओम (ॐ)** – इसके अनेक अर्थ होते है । उनमे (१) भावरूप ओम् 'शुद्धात्मा' है और उसका वाचक शब्द 'जिनेश्वर' की दिव्य वाणी है । (२) अरिहंत आदि पांच परमेष्ठी के प्रथम अक्षरो से बना हुआ शब्द जिसमे पांच परमेष्ठी का लक्ष हो सकता है ।

(१७) उत्सर्पिणी – जिसमे भोग, आयु और शरीरप्रमाण आदि की क्रम से बढती होती है, वह समय उत्सर्पिणी कहलाता है ।

(१८) उपशम – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के निमित्तसे कर्म की शक्ति की अप्रकटता।

(१९) ऐलक – जो दश प्रतिमाओ मे परिपक्व होकर ग्यारहवी प्रतिमा धारण कर सिर्फ लँगोट रखता है, पाणिपात्र मे भिक्षा से भोजन और केशलुच करता है ।

(२०) कल्पकाल – २० कोडाकोडी सागर वर्ष प्रमाण समय ।

(२१) कषाय – जिससे (कष् = ससार रूप दु ख, आय = लाभ) ससार की वृद्धि हो, आत्मा के कलुषित परिणाम, जैसे कि – मिथ्यात्व, क्रोध मान माया, लोभ अथवा मोह, राग द्वेषादि ।

(२२) कायोत्सर्गासन – ध्यानस्थ मुनि की तरह निश्चल और नासा दृष्टि से खडा होना । इसे खड्गासन भी कहते है ।

(२३) कुल – पिता का गोत्र ।

(२४) घातिया – जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणो को घात करने वाले कर्म को घातिया कहते है ।

(२५) क्षयोपशम – सर्वघाती स्पर्धको का उदयाभावी क्षय, देशघाती-स्पर्धको का उदय और उदीयमान निषेको का सदवस्था रूप उपशम सहित कर्म की अवस्था ।

(२६) क्षुल्लक – जो दस प्रतिमाओमे परिपक्व होकर ग्यारहवी प्रतिमा धारण कर लँगोट और खण्डवस्त्र रखता है, कैची या छूरे मे

थाल बनवाता है और थाल मे रखकर भोजन करता है।

(२७) **जाति** – माता का गोत्र ।

(२८) **दण्ड** – मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति ।

(२९) **बहिरङ्गलक्ष्मी** – समवसरणादि ।

(३०) **विकलत्रय** – दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव ।

(३१) **सूक्ष्म स्कंध** – जो दूसरो से बाधा को प्राप्त न हो और दूसरो को बाधा न पहुँचायें, दूसरो से रुके नही तथा दूसरो को रोके नही

(३२) **सल्लेखना** – अटल उपसर्ग आनेपर, अकाल पडने पर, बुढापा आने पर और असाध्य रोग होनेपर रत्नत्रय स्वरूप धर्मपालन करनेके लिये कषाय को कृष करते हुए शरीर के त्याग करने को सल्लेखना कहते है ।

२ भेद-संग्रह ।

(१) **अनन्तचतुष्टय** – अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य

(२) **अनुयोग**– जैनागम चार भागोमे विभक्त है, जिन्हे चार अनुयोग कहते है – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

(१) प्रथमानुयोग के वे शास्त्र है, जिनमे (१) धर्म, (२) अर्थ (३) काम, और (४) मोक्ष का कथन हो ।

(२) करणानुयोग के वे शास्त्र है, जिनमे लोक अलोकके विभागका युगोके परिवर्तनका तथा चारो गतियोका विवरण हो ।

(३) चरणानुयोग के वे शास्त्र हैं, जिनमे गृहस्थ श्रावक और मुनियोंके, यतियोंके चारित्रोका विस्तारपूर्वक वर्णन हो।

(४) द्रव्यानुयोग के वे शास्त्र हैं, जिनमे जीव – अजीव रूपी द्रव्य जीवअजीवरूपी तत्त्व और जीव-अजीवरूपी पदार्थोंका पूर्ण रूपसे निरूपण हो ।

(३) **अन्तरङ्गपरिग्रह** – चार कषाय, नौ नोकषाय और एक मिथ्यात्व ।

(४) **नवद्वार** – २ कान, २ नेत्र, २ नकुवे, १ मुख, २ मलमूत्र के द्वार कुल नौ द्वार हैं ।

(५) **छद्मस्थ** – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान के धारक ।

(६) **नोकर्म** – औदारिक, वैंक्रियक, आहारक, तेजस, कार्मण ।

(७) **बहिरङ्गपरिग्रह** – क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी दास, कुप्य और भाण्डच ये दस हैं ।

(८) **रत्न** – चक्र, छत्र, खडग, दण्ड, चुडामणि, चर्म, काकिणी, गृहपति सेनापति, शिल्पकार, पुरोहित, अश्व, गज और शची ये १४ रत्न हैं

(९) **विग्रहगति** – एक शरीर को छोडकर अन्य शरीरकी प्राप्तिके लिये जाना – गमन करना ।

(१०) **युगपत** – एक समय । Simultaneously

(११) **शतइन्द्र** – भवनवासी देव के ४०, व्यन्तर देव के ३२, कल्पवासी देव के २४, ज्योतिषी देव के १ चन्द्रमा और १ सूर्य तथा मनुष्य के १ चक्रवर्ती तथा तिर्यंच के १ सिंह, इस प्रकार एक सौ इन्द्र हैं ।

(१२) **शलाकापुरुष** – ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र, १२ चक्रवर्ती और २४ तीर्थङ्कर ।

(२) भेद – सग्रह

(१३) **समुद्घात** – समुद्घात सात है, (१) वेदना, (२) कषाय, (३) विक्रिया, ४) मारणान्तिक, (५) तैजस, (६) आहारक, और (७), केवलि। मूल शरीर को छोडे विना आत्म प्रदेशो का शरीर से वाहर निकलना समुद्घात कहलाता है ।

(१) **वेदना** – अधिक दुख की दशा मे मूल शरीर को छोडे विना जीव के प्रदेशोका वाहर निकलना ।

(२) **कषाय** – क्रोधादि तीव्र कषाय के उदय से, धारण किये हुए शरीर को छोडे विना जीव के प्रदेशोका शरीर से वहर निकलना ।

(३) **विक्रिया** – विविध क्रिया करने के लिये मूल शरीर को छोडे विना आत्मप्रदेशो का वाहर निकलना ।

(४) **मारणान्तिक** – जीव मृत्यु के समय तत्काल ही शरीर को नही छोडता, किन्तु शरीर मे रहकर ही (अन्य) जन्मस्थान को स्पर्श करने के लिये उसके आत्मप्रदेश वाहर निकलते है ।

(५) **तैजस** – इसके दो प्रकार है, शुभ और अशुभ ।

(१) जगत को रोग या दुर्भिक्ष से दुखी देखकर महामुनि को दया उत्पन्न होने से जगत का दुख दूर करने के लिये, मूल शरीर को छोडे विना ही तपोवल से, दाहिने कधेमेसे पुरुषाकार सफेद पुतला निकलता है और दुख दूर करके पुन अपने शरीर मे प्रवेश करता है, उसे 'शुभ तैजस' कहते है ।

(२) अनिष्टकारक पदार्थो को देखकर, मुनियो के मन मे क्रोध उत्पन्न होने से उनके वायें कधे से विलाव आकार सिन्दूरी

रग का पुतला निकलता है, वह जिस पर क्रोध हुआ हो उसका नाश करता है और साथ ही साथ उन मुनि का भी नाश करता है। इसे 'अशुभ तैजस' कहते हैं ।

(६) आहारक – छट्ठे गुणस्थानवर्ती, परम ऋद्धिधारी किसी मुनि के तत्वसबधी शका उत्पन्न होने पर, अपने तपोबल से मूल शरीर को छोडे विना मस्तक मे से एक हाथ जितना पुरुषाकार सफेद और शुभ पुतला निकलता है। वह केवली या श्रुत केवली के पास जाता है। वहाँ उनका चरणस्पर्श होते ही अपनी शका निवारण करके पुन अपने स्थान मे प्रवेश करता है ।

(७) केवलि – केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद मूल शरीर को छोडे विना दड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया करते हुए केवली के आत्मप्रदेशो का फैलना । केवलि समुद्‌घात सभी केवलियो को नही होता, किन्तु जिन्हे केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद छह मास नही हुए हो उन्हे, तथा छह मास के बाद भी चार अघातीय कर्मों मे से आयुकर्म की स्थिति अल्प हो तो उन्ही को नियम से समुद्‌घात होता है ।

३ अन्तर-दर्शन

(१) अणुव्रत और महाव्रत में अन्तर

अणुव्रत मे तो पापो का एक देश त्याग किया जाता है किन्तु महा-व्रतमे पापो का सर्वदेश त्याग किया जाता है । यही इन दोनो में अन्तर है ।

(२) अतिचार और अनाचार मे अन्तर

अतिचार मे तो व्रत का थोडा अंश भग होता है, जो औरो के दृष्टि

गोचर नही होता, किन्तु अनाचार मे व्रत का पूर्ण रूप से ही भग हो जाता है, जो औरो के दृष्टिगोचर तक होने लगता है ।

(३) **अनिष्ट वा अनुसेव्य में अन्तर**

अनिष्ट तो किसी रोगी आदि के लिये ही अभक्ष्य होता है, किन्तु अनुसेव्य सभी के लिए अभक्ष्य होता है ।

(४) **क्षुल्लक व ऐलक में अन्तर**

क्षुल्लक तो चादर वा पात्र रखते है और बाल कटवाते या बनवाते है, किन्तु ऐलक चादर वा पात्र नही रखते और केशलोच करते है यही इन दोनो मे अन्तर है ।

(५) **दिग्व्रत ओय ओर देशव्रत में अन्तर**

दिग्व्रत की मर्यादा तो जीवन पर्यन्त के लिये होती है किन्तु देशव्रत की घडी घटा आदि नियमितकाल के लिये ।

(६) **दिग्व्रत और अनर्थदण्ड व्रत मे अन्तर**

दिग्व्रत मे तो मर्यादा के बाहर ही पापो का त्याग होता है, किन्तु अनर्थ दण्डव्रत मे मर्यादा के भीतर भी पापो का त्याग किया जाता है ।

(७) **परस्त्री और वेश्या में अन्तर**

परस्त्री का तो एक ही निश्चित स्वामी (पति) होता है, किन्तु वेश्या के अनेक स्वामी होते है, जिसने पैसा दिया उसी को स्वामी बना लेती है ।

(८) **प्रोषध, उपवास वा प्रोषधोपवास में अन्तर**

प्रोषध मे तो आरम्भ और विषयकषाय आदि का त्याग करते हुए एक बार भोजन किया जाता है, किन्तु उपवास मे भोजन का सर्वथा

त्याग रहता है और प्रोषधोपवास मे पर्व के दिन आरम्भ, विषयकषाय और आहार का त्याग कर धारणा और पारणा के दिन भी एकाशन किया जाता है ।

(९) **प्रोषधोउपवास वा प्रोषधप्रतिमा में अन्तर**

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत मे तो कभी अतिचार भी लग सकते है किन्तु प्रोषधप्रतिमा मे अतिचार भी दूर करने पडते हैं ।

(१०) **भोग वा उपभोग मे अन्तर**

भोग तो एक ही बार भोगने योग्य होता है, किन्तु उपभोग वार वार भोगने मे आता है ।

(११) **भोगोपभोगपरिमाणव्रत वा परिग्रहणपरिमाणव्रत में अन्तर**

परिग्रहणपरिमाणव्रत मे जिस परिग्रहका परिमाण किया जात है, भोगोपभोग परिमाणव्रत मे उसमे भी कमी की जाती है ।

(१२) **मूलगुण वा उत्तरगुण में अन्तर**

मूलगुण तो असाधारण खास-खास गुणो को कहते है, किन्तु उत्तरगुण साधारण गुणो को ।

(१३) **यम और नियम में अन्तर**

यम मे तो जीवनपर्यन्त के लिए भोगोपभोग का त्याग किया जाता है, किन्तु नियम मे घडी, घण्टा, आदि परिमितकाल के लिए भोगोपभोग का त्याग किया जाता है ।

(१४) **श्रावकप्रतिमा और जिनप्रतिमा में अन्तर**

श्रावक की प्रतिमाओ मे तो प्रतिमा शब्द से श्रावक के कर्तव्यो कक्षा या श्रेणी से तात्पर्य है किन्तु जिनप्रतिमा मे भगवान की मूर्ति से तात्पर्य है ।

(१५) **सामायिकशिक्षाव्रत वा सामायिक प्रतिमामें अन्तर**

सामायिकशिक्षाव्रत मे तो सामायिक के अतिचार कदाचित लग सकते हैं, किन्तु सामायिक प्रतिमा मे अतिचार भी सर्वथा हटाने पड़ते है।

(१६) **सल्लेखना या समाधि-मरण**

सल्लेखना या समाधि-मरण दोनो एक पर्यायी है। सल्लेखना जीवनशुद्धि का महान व्रत है। कषाय को कृश करना सल्लेखना है। दुःसाध्य समयपर सल्लेखना जीवके लिए परमोपकारी है। सल्लेखना या समाधि, मरण-विधि है। मृत्युके तीन प्रकार है, (१) च्युत, (२) च्यावित, और (३) त्यक्त।

(१) जो आयु के पूर्ण होनेपर नष्ट हो, वह च्युत शरीर है।

(२) जो विप भक्षण अथवा ऐसेही शारीरिक कारणोंसे नष्ट हो, वह च्यावित शरीर है, और

(३) जो सन्यासरूप परिणामोंसे शरीर छोडा जाय, वह त्यक्त शरीर है। सल्लेखना के परमोत्तम दो भेद है, (१) इगिनी, और (२) प्रायोपगमन।

(१) इगिनी – अपने शरीर की टहल आपही अपने अगोंसे करें वह इगिनी है और

(२) प्रायोपगमन - जो अपने शरीर की टहल अपने आप भी न करें और न दुसरो से करवायें वह प्रायोपगमन हैं।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृण्हाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–
न्यन्यानि सयाति नवानिदेही ॥

मृत्युमहोत्सव।

४ सर्वार्थसिद्धिपर आधारित शब्दार्थ :

१ अर्थ	ARTHA IS THE OBJECT OF CONCENTRATION IT MAY BE A (DRAVYA) SUBSTANCE OR (PARYAYA) MODIFICATION
२ व्यन्जन	VYANJAN MEANS WORD
३ योग	YOGA IS THE ACTIVITY OF MIND, SPEECH AND BODY
४ अर्थ सक्रान्ति	(WHILE CONCENTRATING) CHANGE FROM THE SUBSTANCE TO ITS MODIFICATION OR FROM THE MODIFICATION TO ITS SUBSTANCE
५ व्यजन सक्रान्ति	CHANGE FROM THINKING OF ONE WORD TO ANOTHER AND THEN TO ANOTHER AND SO ON
६ योग सक्राति	CHANGE FROM BODILY ACTIVITY TO MIND OR SPEECH ACTIVITY AND AGAIN TO BODILY ACTIVITY AND SO ON
७ सम्यग्दृष्टि	RIGHT BELIEVER WITHOUT VOWS , A PERSON IN THE FOURTH GUNASTHANA
८ श्रावक	A MAN WITH PARTIAL VOWS , ONE IN THE FIFTH GUNASTHANA

९ विरत	A MAHAMUNI, A GREAT SAINT WITH FULL VOWS IN THE SIXTH AND SEVENTH GUNASTHANAS
१० अनन्त वियोजक	ONE WHO HAS SUBDUED THE PASSIONS OF THE VERY INTENSE TYPE
११ दर्शनमोहक्षपक	ONE WHO HAS DESTROYED DARSHANA MOHANIYA KARMAS
१२ उपशमक	A SAINT IN THE EIGHTH, NINTH AND TENTH STAGES WHO SUBDUES HIS CONDUCT DELUDING KARMAS
१३ उपशान्तमोह	A SAINT IN THE ELEVENTH STAGE WHO HAS SUBDUED HIS CONDUCT DELUDING KARMAS
१४ क्षपक	A SAINT IN THE EIGHTH NINETH AND TENTH STAGES DESTROYING THE RIGHT CONDUCT DELUDING KARMAS
१५ क्षीणमोह	A SAINT IN THE TWELFTH STAGE WHO HAS DESTROYED THE RIGHT CONDUCT DELUDING KARMAS
१६ जिन	OMNISCIENT BEING IN THE THIRTEENTH STAGE, WHO HAS DESTROYED JNANAVARANIYA,

DARSHANAVARANIYA, MOHA-NIYA AND ANTARAYA KARMAS

१७ पुलाक	A SAINT IN WHOM THERE IS A SLIGHT LAPSE IN THE OBSERVANCE OF THE MULAGUNAS OR PRIMARY VOWS
१८ वकुश	SAINT WHO OBSERVES THE MULAGUNAS FULLY BUT HAS SLIGHT ATTACHMENT FOR BODY, HIS DISCIPLES, BOOKS ETC AND HAS A DESIRE FOR MAKING HIS BODY AND OTHER THINGS ATTRACTIVE
१९ कुशील	SAINT IN WHOM THERE IS A SLIGHT LAPSE IN THE OBSERVANCE OF UTTARAGUNAS (SECONDARY VOWS) AND IN WHOM PASSIONS OF SANJVALANA TYPE ARE PRESENT
२० निर्ग्रन्थ	SAINTS WHO ARE COMPLETELY FREE FROM ALL KINDS OF PASSIONS E G THOSE WHO ARE IN THE ELEVENTH AND TWELFTH GUNASTHANAS
२१ स्नातक	THE ALL-KNOWING BEING IN THE THIRTEENTH AND FOURTEENTH GUNASTHANAS

२२ सयम	FIVE KINDS OF RIGHT CONDUCT
(१) सामायिक	EQUANIMITY.
(२) छेदोपस्थापना	UNDERGOING PENALTIES ARISSING FROM INADVERTENCE OR NEGLIGENCE ON ACCOUNT OF WHICH ONE LOSES EQUANIMITY.
(३) परिहारविशुद्धि	REFRAINING FROM INJURY.
(४) सूक्ष्मसाम्पराय	CONTROL OF PASSIONS
(५) यथाख्यात	CONTEMPLATION OF ONE'S OWN SELF.
२३ श्रुत	KNOWLEDGE OF THE ANGAS AND PURVAS
२४ प्रतिसेवना	TRANSGRESSING THE VOWS DUE TO OTHER'S PULSION
२५ तीर्थं	THE LIFETIME OF A TIRTHAN-KARA OR AFTER HIM
२६. लिंग	SIGN, QUALITY OR CHARA-CTERISTIC
२७ लेश्या	THOUGHT COLOUR
२८ उपपाद	WHETHER THE SAINTS WILL ATTAIN LIBERATION OR GO TO SOME HEAVENS
२९ स्थान	STAGES OF CONDUCT AND DEGREE OF PASSION.

३० पूर्वप्रयोगात	ITS FORMER ACTIVITY DIRECTED TOWARDS THE ATTAINMENT OF LIBERATION.
३१ असगत्व	NON-ASSOCIATION WITH ANY OTHER THING
३२ वन्धछेद	THE BREAKING OF ALL BONDAGE
३३ तथागतिपरिणाम	THE SOUL'S OWN NATURE TO GO UPWARDS
३४ आविद्धकुलालचक्र	POTTER'S WHEEL
३५ व्यपगतलेप आलावु	EMPTY GOURD
३६ एरन्ड वीज	CASTOR BEAN
३७ अग्निशिखा	FLAME OF FIRE
३८ क्षेत्र	PLACE
३९ काल	TIME
४० गति	CONDITION OF EXISTENCE
४१ लिंग	SEX
४२ तीर्थ	WHETHER AS A THIRTHANKARA OR NON-TIRTHANKARA
४३ चारित्र	CONDUCT.
४४ प्रत्येकवुद्ध वोधित वुद्ध	BY HIS OWN INTUITION OR BY THE PRECEPT OF ANOTHER
४५ ज्ञान	KNOWLEDGE
४६ अवगाहन	STATURE

४७ अन्तर	INTERVAL
४८ सख्या	NUMBER
४९ अल्पबहुत्व	LESS OR MORE IN NUMBER
५० जिन	VICTOR
५१ गणधर	DISCIPLE
५२ द्रव्य	SUBSTANCE
५३ उपमेय	CAPABLE OF BEING COMPARED COMPARABLE
५४ उपमान	THAT WITH WHICH SOMETHING IS COMPARED
५५ कृत	TO DO A THING ONESELF
५६ कारित	TO HAVE A THING DONE BY OTHERS
५७ अनुमोदन	TO APPROVE THE ACTION OF OTHERS
५८ मन	MIND.
५९ वचन	SPEECH
६० काय	BODY
६१ संरम्भ	DETERMINATION TO DO A THING
६२ समारम्भ	COLLECTING MATERIALS FOR DOING A THING
६३ आरम्भ	DOING THE THING
६४ क्रोध	ANGER.
६५ मान	PRIDE

६६ माया — DECEIT

६७ लोभ — GREED

६८ सत — THAT WHICH HAS ORIGIN, DECAY AND PERMANENCY

६९ उत्पाद — ORIGIN

७० व्यय — DESTRUCTION

७१ ध्रौव्य — STATIONARY—PERMANENT

७२ भव्य — ONE WHO HAS THE ABILITY TO ACQUIRE RIGHT BELIEF, RIGHT KNOWLEDGE AND RIGHT CONDUCT

७३ उपशम — SUBSIDENCE

७४ क्षय — DESTRUCTION

७५ क्षयोपशम — PARTIAL DESTRUCTION

७६ स्थापना — INSTALLATION OF A STATUE, PICTURE, IMAGE OR DEITY

७७ गुण — MERITS

७८ दोष — DEMERITS

७९ आलाप — RECITATION

८० सत — EXISTENCE

८१ ध्रुव — STATIONERY

८२ व्यन्जन — INDETERMINABLE

८३ वर्धमान — INCREASING

८४ हीयमान — DECREASING

८५ मिथ्यादर्शन — WRONG BELIEF, WRONG VIEW POINT

८६ असख्यात — IRRATIONAL

८७ शताश — DECIMAL

८८ क्षेत्र — FIELD

८९ लोकाकाश — THE WORLD SPACE

९० लोक — THE PLACE WHERE DHARMA ADHARMA, ETC EXIST, CALLED LOKA

९१ भूत — चारों गतियो के प्राणी

९२ सामायिक — EQUANIMITY

९३ विनय — REVERENCE

९४. वैयावृत्य — SERVICE

९५ स्वाध्याय — READING

९६ आलोचना — CONFESSION

९७ प्रतिक्रमण — REPENTENCE

९८ ध्यान — CONCENTRATION

९९. निह्नव — CONCEALING KNOWLEDGE ON ACCOUNT OF SOME REASON

१००. गुणस्थान — THE STAGES

१०१ मार्गणा — THE CONDITIONS

५ कुछ आवश्यक शब्दो के शब्दार्थ : THE MEANINGS

(१) काक तालीय न्यायवत

काक तालीय न्याय एक कहावत है । ताड़ का वृक्ष, फल लगे हुए, उनका गिरना । सयोगवश काक द्वारा, गिरते हुए फलका प्राप्त होना । उसी प्रकार निगोदी जीवको, त्रस स्थिति का प्राप्त होना । अनायास उपलब्धिका प्राप्त होना ।

(२) सम्यक्त्व

जीव द्रव्य (आत्म द्रव्य) शरीर से अजीव द्रव्य से, भिन्न है, अलग है इसकी पूरी समझ बोध और निश्चय, सम्यक्त्व है । निरतर आत्म द्रव्यमे लीनता, पर द्रव्य और भावके त्यागकी प्रवृति उपादेय है । आत्म द्रव्यके सिवाय आदि शरीर सर्व पर द्रव्य, हेय है । जो अतरग रुचि, श्रद्धा और भाव सपूर्ण आत्मरमणतामे रखते वे सम्यग्दृष्टि है ।

(३) सयम

(अ) कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) और इन्द्रिय (स्पर्शन रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत) का निग्रह । मन, वचन, और, काम के कृतो पर नियत्रण, परिग्रह परिमाण और अहिसाव्रत परमार्थकी भावना तथा सात तत्वो (जीव, अजीव, आस्रव बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष) का मनन । शुद्ध भाओ चितवन, तपस्या, शुभ और शुद्ध ध्यान ।

ब (१) सामायिक EQUANIMITY

(२) छेदोपस्थापना UNDERGOING PENALTIES ARISING FROM INADVERTENCE

OR NEGLIGENCF, ON ACCOUNT OF WHICH ONE LOSES EQUANIMITY

(३) परिहार विशुद्धि REFRAINING FROM INJURY

(४) सुक्ष्म साम्पराय CONTROL OF PASSIONS

और AND

(५) यथाख्याता CONTEMPLATION OF ONES OWN SELF

(४) **भावना** (SENTIMENTS)

मनके द्वारा सकल्पो या विकल्पो पर आधारित इच्छाओ की रचना तया मनके द्वारा ही कार्यान्वित शुभ अशुभ या शुद्ध भाव ।

(५) **सम्यग्दर्शन :**

समकित, सम्यक्त्व, आत्मदर्शन, आत्मअनुभव आदि एकार्थवाची अनेक शद्ब हैं । आत्म स्वरूप समझें वह समकित । जीव अजीव आदि सात तत्वोम श्रद्धान आदि । आत्माकी श्रद्धा, निर्धार और अनुभव यह निश्चय सम्यग्दर्शन है ।

(६) **सम्यग्दृष्टि .**

छ द्रव्य, पाच अस्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थ भगवानने जैसे कहे है उनमे श्रद्धा और निश्चय ।

(७) **लिग :**

वितराग दर्शन के अनुसार लिग तीन है। पहिला जिनेन्द्र देव का यथाजात नग्न दिगम्बर निर्ग्रन्थलिग। दूसरा ग्यारवी प्रतिमा धारक उत्कृष्ट श्रावक का और तीसरा आर्यिका का है ।

६ ग्राह्य अग्राह्य

	ग्रहण करने योग्य (ACCEPTABLE)		त्याग करने योग्य (REJECTABLE)
क्षमा	FORGIVENESS	क्रोध	ANGER
मार्दव	HUMILITY	मान	PRIDE
आर्जव	STRAIGHT FORWARDNESS	माया	DECEIT
शौच	CONTENTMENT, PURIFICATION	लोभ	GREED
सत्य	TRUTH	झूठ	FALSEHOOD
संयम	FORBEARANCE	असंयम	EXTRAVAGAN-NCY
तप	AUSTERITY	भोग	ENJOYMENT
त्याग	RELINQUISHMENT	कृपणता	MISERLINESS
आकिंचन	NON-ATTACHMENT	परिग्रह	ATTACHMENT
ब्रह्मचर्य	SELF ABSORPTION, CELIBACY, CHASTITY	कुशीलता	DEBAUCHERY
अद्यूत्य	NON-GAMBLING	द्यूत्य	GAMBLING
अचौर्य	NON-STEALING	चौर्य	STEALING
निरामिषता	NON-FLESH EATING	आमिषता	FLESH-EATING
निरा मद्य	NON-DRINKING	मद्यपान	DRINKING OF WINE
गृहीणी	MISTRESS	नगरवधू	PROSTITUTE
रक्ष	PROTECT	वध	KILL-HUNT
स्वदार	OWN WIFE	परदार	OTHERS WIFE
प्रेम	AFFECTION	राग	MALICE
साम्यभाव	EQUANIMITY	द्वेषभाव	AVERSION
अहिंसा	NON-VIOLENCE	हिंसा	VIOLENCE

७. 'क' कार से लेकर 'ह' कार पर्यंत व्यन्जन सज्ञकवीज .

(१) क शक्तिवीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, सन्तानप्राप्तिकी कामनाका पूरक कामत्रीजका जनक ।

(२) ख आकाशवीज, अभावकार्योंकी सिद्धिके लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन वीजोका जनक ।

(३) ग पृयक् करनेवाले कार्योंका साधक, प्रणव और माया वीजके साथ कार्य सहायक ।

(४) घ स्तम्भक वीज, स्तम्भन कार्योंका साधक, विघ्नविघातक, मारण और मोहक वीजोका जनक ।

(५) ङ शत्रुका विध्वसक, स्वर मातृका वीजोके सहयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वसक वीज जनक ।

(६) च अगहीन, खण्ड शक्ति द्योतक, स्वरमातृकावीजोके अनुसार फलोत्पादक उच्चाटन वीजका जनक ।

(७) छ छाया सूचक, माया बीजका सहयोगी, वन्धनकारक, आपवीजका जनक, शक्तिका विध्वसक, पर मृदु कार्योंका साधक।

(८) ज नूतन कार्योंका साधक, शक्तिका वर्द्धक, आधि-व्याधिका शामक, आकर्षक वीजोका जनक ।

(९) झ रेफयुक्त होनेपर कार्यसाधक, आधि-व्याधि विनाशक, शक्तिका संचारक, श्रीवीजोका जनक ।

(१०) ञ स्तम्भक और मोहक वोजो का जनक, कार्यसाधक, साधनाका अवरोधक, माया वीजका जनक ।

(११) ट वह्निबीज, आग्नेय कार्योंका प्रसारक और निस्तारक अग्नितत्त्वयुक्त विध्वसक कार्योंका साधक ।

(१२) ठ अशुभ सूचक बीजोका जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्योंका साधक, मृदुल कार्योंका विनाशक, रोदन-कर्ता अशान्तिका जनक, सापेक्ष होनेपर द्विगुणित शक्तिका विकासक, वह्निबीज ।

(१३) ड शासन देवताओ की शक्तिका प्रस्फोटक, निकृष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए अमोघ, सयोगसे पचतत्त्वरूप बीजोका जनक, निकृष्ट आचार विचार द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया साधक ।

(१४) ढ निश्चल मायाबीजका जनक, मारण बीजोमे प्रधान, शान्तिका विरोधी, शक्तिवर्धक ।

(१५) ण शान्ति सूचक, आकाश बीजोमे प्रधान , ध्वसक बीजोका जनक, शक्तिका स्फोटक ।

(१६) त आकर्षकबीज, शक्तिका आविष्कारक, कार्यसाधक, सारस्वतबीज के साथ सर्वसिद्धिदायक ।

(१७) थ मगलसाधक, लक्ष्मीबीजका सहयोगी, स्वरमातृकाओ के साथ मिलनेपर मोहक ।

(१८) द कर्मनाशके लिए प्रधान बीज, आत्मशक्तिका प्रस्फोटक, वशीकरण बीजोका जनक ।

(१९) ध श्री और क्ली बीजोका सहायक, सहयोगीके समान फलदाता, माया बीजोका जनक ।

(२०) न आत्मसिद्धिका सूचक, जलतत्त्वका स्रष्टा, मृदुतर कार्योंका साधक, हितैषी, आत्मनियन्ता ।

(२१) प परमात्माका दर्शक, जलतत्त्वके प्राधान्यसे युक्त, समस्त कार्योंकी सिद्धि के लिए ग्राह्य ।

(२२) फ वायु और जलतत्त्व युक्त, महत्त्वपूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिए ग्राह्य स्वर और रेफ युक्त होनेपर विध्वसक, विघ्नविघातक, 'फट्' की ध्वनिसे होनेपर उच्चाटक, कठोरकार्यसाधक ।

(२३) ब अनुस्वार युक्त होनेपर समस्त प्रकारके विघ्नोका विघातक और निरोधक, सिद्धिका सूचक ।

(२४) भ साधक, विशेषत मारण और उच्चाटन के लिए उपयोगी, सात्त्विक कार्योंका निरोधक, परिणत कार्योंका तत्काल साधक, साधना मे प्रकार से विघ्नोत्पादक, कल्याणसे दूर, कटु मधु वर्णोंसे मिश्रित होनेपर अनेक प्रकार के कार्योंका साधक, लक्ष्मी बीजोका विरोधी ।

(२५) म सिद्धिदायक, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियोका प्रदाता, सन्तानकी प्राप्तिमे सहायक ।

(२६) य शान्तिका साधक, सात्त्विक साधना की सिद्धिका कारण महत्त्वपूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिए उपयोगी, मित्र प्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त उपयोगी, ध्यानका साधक ।

(२७) र अग्निबीज, कार्यसाधक, समस्त प्रधान बीजोका जनक, शक्तिका प्रस्फोटक और वर्द्धक ।

(२८) ल लक्ष्मीप्राप्तिमे सहायक, श्री बीजका निकटतम सहयोगी और सगोत्री, कल्याणसूचक

(२९) व सिद्धिदायक, आकर्षक, ह्, र्, और अनुस्वारके सयोग से चमत्कारोका उत्पादक, सारस्वतबीज, भूत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी आदिकी बाधाका विनाशक, रोगहर्ता, लौकिक कामनाओंकी पूर्तिके लिए अनुस्वार मातृकाका

सहयोगापेक्षी, मगलसाधक, विपत्तियोका रोधक और स्तम्भक।

(३०) श निरर्थक, सामान्यबीजोका जनक या हेतु, उपेक्षाधर्मयुक्त, शान्तिका पोषक ।

(३१) ष आह्वानबीजोका जनक, सिद्धिदायक, अग्निस्तम्भक, जलस्तम्भक, सापेक्षध्वनि ग्राहक, सहयोग या सयोगद्वारा विलक्षण कार्यसाधक, आत्मोन्नतिसे शून्य, रुद्रबीजोका जनक, भयकर और वीभत्स कार्योके लिए प्रयुक्त होनेपर कार्यसाधक ।

(३२) स सर्व समीहित साधक, सभी प्रकार के बीजोमे प्रयोग योग्य, शान्तिके लिए परम आवश्यक, पौष्टिक कार्योंके लिए परम उपयोगी, ज्ञानावर-णीयदर्शनावरणीय आदि कर्मोंका विनाशक, क्लीबीजका सहयोगी, कामबीजका उत्पादक, आत्मसूचक और दर्शक ।

(३३) ह शान्ति, पौष्टिक और मागलिक कार्योका उत्पादक, साधनाके लिए पर-मोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मीके उत्पत्तिमे साधक, सन्तान प्राप्तिके लिए अनुस्वार युक्त होनेपर जाप्यमे सहायक, आकाश तत्त्वयुक्त कर्मनाशक, सभी प्रकारके बीजोका जनक ।

८ अनुचिन्तनगत पारिभाषिक शब्द

(१) स्थविरकल्पि – जो भिक्षु वस्त्र और पात्र अपने पास रखकर सयमकी साधना करता है – वह स्थविरकल्पि कहलाता है ।

(२) जिनकल्पि – जिनकल्पिका अर्थ है समस्त परिग्रहके त्यागी दिगम्बर उत्तम सहनन धारी साधु। ये एकादशाग सूत्रोंके धारक गुहावासी होते हैं ।

(३) द्रव्यलिंगि – मुनिवेशी, किन्तु सम्यक्त्व हीन जैन मुनि द्रव्यलिंगी कहलाते है ।

(४) नय – वस्तुका आंशिक ज्ञान नय कहलाता है ।

(१) नैगमनय – जो भूत और भविष्यत् पर्यायोमे वर्तमानका संकल्प करता है या वर्तमानमे जो पर्याय पूर्ण नही हुई उसे पूर्ण मानता है, उस ज्ञान तथा वचन को नैगम नय कहते हैं ।

(२) संग्रहनय – अपनी-अपनी जातिके अनुसार वस्तुओका या उनकी पर्यायोका एक रूपसे संग्रह करनेवाले ज्ञान और वचनको संग्रहनय कहते हैं ।

(३) व्यवहारनय – संग्रहनय से ग्रहण किये गये पदार्थोंका विधिपूर्वक भेद करना व्यवहारनय है ।

(४) ऋजुसूत्रनय – भूत और भावी पर्यायोको छोडकर जो वर्तमानको ही ग्रहण करता है, उस ज्ञान और वचनको ऋजुसूत्रनय कहते हैं ।

(५) शब्दनय – लिंग, संख्या, साधन आदिके व्यभिचारको दूर करनेवाले ज्ञान और वचनको शब्दनय कहते हैं ।

(६) समभिरूढनय – लिंग आदिका भेद न होनेपर भी शब्दभेदसे अर्थका भेद माननेवाला समभिरूढनय है ।

(७) एवंभूतनय – जिस शब्दका जिस क्रिया रूप अर्थ हो, उस क्रिया रूप परिणत पदार्थको ही ग्रहण करनेवाला वचन और ज्ञान एवंभूत नय है।

(५) चौदह पूर्व –भगवान महावीरके पहले आगमिक परम्परामे जो ग्रन्थ वर्तमान थे, वे पूर्व ग्रन्थ कहलाये । इनकी संख्या चौदह होनेसे, ये चौदह पूर्व कहे जाते हैं ।

(६) अभिरूचि – अभिरुचि अस्फुट ध्यान है तथा ध्यान, अभिरुचिका ही स्फुट रूप है ।

(७) **अभ्यास** – मनोविज्ञान बतलाता है कि अभ्यास (Exercise) बार-बार किसी कार्यके करनेकी प्रवृत्ति जिसका दूसरा नाम आवृत्ति (Repetition) है, ध्यान आदिके लिए उपयोगी है ।

(८) **अभ्यास नियम**– अभ्यास नियमको आदत निर्माण का नियम भी कहा गया है (The Law of habit Formation) । इस नियम के दो प्रमुख अग हैं – पहलेको उपयोगका नियम (The Law of use) और दूसरेको अनुपयोगका नियम (The Law of disuse) कहते हैं । ये दोनो एक दूसरेके पूरक है। उपयोगका नियम यह बदलता है कि यदि एक खास परिस्थितिके प्रति बार-बार एक ही तरहकी प्रतिक्रिया प्रकट की जाये तो उस परिस्थिति और प्रतिक्रियाके बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ।

(९) **आदत** – आदत मनुष्यका अर्जित मानसिक गुण है । मनुष्यके जीवनमे दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ काम करती है – जन्मजात और अर्जित । अर्जित प्रवृत्तियाँ ही आदत है ।

(१०) **कल्पना** – पूर्व अनुभूतियो तथा उनसे सम्बद्ध घटनाओको बिम्बो (Images) के रूपमे सँजोनेकी मानसिक क्रियाको कल्पना कहते हैं ।

(११) **चरित्र** – इच्छाशक्तिके कार्यका मानसिक परिणाम चरित्र है । कुछ लोग मनुष्यके सस्कार-पुजको ही चरित्र मानते हैं । कुछ मनोवैज्ञानिक चरित्रको आदतोका पुज बताते है ।

(१२) **चेतनमन** – चेतनमन, मनका वह भाग है जिसमे मनकी समस्त ज्ञात क्रियाएँ चला करती है ।

(१३) **द्रव्य सकोच** – शरीर को नम्रीभूत बनाना द्रव्यसकोच है ।

(१४) **द्रव्य ससार** – पच परावर्तन रूप इस ससारके अस्तित्वको द्रव्य ससार कहते हैं ।

(१५) **धारणा** – जिसका ध्यान किया जाये, उस विषयमें निश्चल रूपमें मनको लगा देना, धारणा है।

(१६) **नष्ट** – सख्याको रखकर पदका प्रमाण निकालना नष्ट है।

(१७) **निदान** – आगामी भोगोंकी वाछा करना या फल-प्राप्तिका उद्देश्य रखना निदान है।

(१८) **आचारांग** – ग्यारह अंगोमें यह पहला अंग है। इसमें मुनि और गृहस्थके सभी प्रकारके आचरणोंका वर्णन किया जाता है।

(१९) **नोकषाय** – किंचित कषायको नोकषाय कहते हैं।

(२०) **पल्लव** – मन्त्रके अन्तमें जोड़े जानेवाले स्वाहा, स्वधा, फट् वषट आदि शब्द पल्लव कहलाते हैं।

(२१) **पूजा** – किसीके प्रति अपने हृदयकी श्रद्धा और आदरभावनाको प्रकट करना पूजा है।

(२२) **प्रथमोपशमसम्यक्त** – मोहनीयकी सात प्रकृतियो के उपशमसे होनेवाला सम्यक्त्व।

(२३) **प्रमाद** – कषाय या इन्द्रियासक्ति रूप आचरण प्रमाद है।

(२४) **बीज** – मन्त्रकी ध्वनियोंमें जो शक्ति निहित रहती है, उसे बीज कहते हैं।

(२५) **यम** – इन्द्रियोंका दमन कर अहिंसक प्रवृत्तिको अपनाना यम है।

(२६) **योग** – मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं।

(२७) **वज्रासन** – दोनो पैर सीधे फैलाकर बैठ जाइए और बायाँ पर घुटनेसे मोड़कर जाँघसे इस प्रकार मिलाइए कि नितम्बके सामने जमीनपर टिक जाये और सीनेका बायाँ भाग ऊपर उठे हुए घुटनेपर अड़ा रहे। इसके

वाद दाहिनी ओर थोडा झुकते हुए वायाँ नितम्व कुछ ऊपर उठाइए,दाहिना हाय दाहिनी जाँघ के पास जमीन पर टिकाकर झुके हुए धडको सहारा दीजिए और वाये हायसे वाये पैरको टखनेके पास पकड लीजिए ।

(२८) **वासना** – मानव मनमे अनेक क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ है । कुछ क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ प्रकाशित होती है अर्थात चेतना को उनका ज्ञान रहता है और कुछ अप्रकाशित रहती है । अप्रकाशित इच्छाओका ही नाम वासना है ।

(२९) **श्रद्धा** गुणोके प्रति रागात्मक आसक्ति श्रद्धा कहलाती है ।

(३०) **सवेग** – सवेग एक चेतन अनुभूति है जिसमे कई प्रकारकी शारीरिक क्रियाएँ शामिल रहती है ।

(३१) **संयम** –इन्द्रिय निग्रहके साय अहिंसात्मक प्रवृत्तिको अपनाना सयम है ।

(३२) **सवेदन**–चैतन्य मनका सर्वप्रथम और सरल ज्ञान सवेदन है । सवेदन इन्द्रियोंके बाह्य पदार्थके स्पर्शसे होता है ।

(३३) **समाधि** – ध्यानकी चरम सीमाको समाधि कहते है ।

(३४) **सल्लेखना**–बुद्धिपूर्वक काय और कषायको अच्छी तरह कृश करना सल्लेखना है ।

(३५) **सहजक्रिया** – उत्तेजनाका सबसे सरल कार्य, सहज क्रियाएँ, जैसे – छीकना, खुजलाना, आँसू आना आदि है ।

(३६) **सहजअनुभव** – भूख-प्यास आदि शारीरिक माँगोकी पूर्तिमे ही सुख और उनकी पूर्तिके अभावमे दु खका अनुभव करना, सहज अनुभव है । यह अनुभव पशु कोटिका माना जाता है ।

(३७) **सुखासन**– आराम पूर्वक पलहत्थी मारकर बैठना ही सुखासन है ।

(३८) **स्तम्भन**– नदी, समुद्र या तेजीमे आती हुई सवारीकी गतिका अवरोध करानेवाले, मन्त्र स्तम्भन कहलाते हैं। इन मन्त्रोंसे जलती हुई अग्निके वेगको या वेगसे आक्रमण करते हुए शत्रुकी गतिको अवरुद्ध किया जा सकता है ।

(३९) **स्थायीभाव** – जब किसी प्रकारका भाव मनमे बार-बार उठता है अथवा एक ही प्रकारकी उमग जब मनमे अधिक देर तक ठहरती है, तब वह मनमे विशेष प्रकार का स्थायी भाव पैदा कर देती है ।

(४०) **स्थिति** – कर्मोंका जीवके साथ अमुक समयतक बँधे रहनेका लानेकी नाम स्थितिबन्ध है ।

(४१) **स्मरण**– पूर्वानुभूत अनुभवो अथवा घटनाओ को पुन वर्तमान चेतनामे क्रियाको स्मरण कहते है ।

(४२) **स्व–सवेदनज्ञान** – स्वानुभूत रूपज्ञान स्व सवेदनज्ञान कहलाता है ।

(४३) **क्षन्योपशम** – कर्मोंका क्षय और उपशम क्षयोपशम है ।

(४४) क्षायिक **सम्यक्त्व** – दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ और अनन्ता नुबन्धी चार, इन सात प्रकृतियो के क्षयसे जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते है ।

(४५) **क्षायिक दान**–दानान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे दिव्य ध्वनि आदिके द्वारा अनन्त प्राणियो का उपकार करनेवाला क्षायिक दान होता है ।

(४६) **क्षायिक उपभोग**–उपभोग अन्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे क्षायिक भोगकी प्राप्ति होती है ।

(४७) **क्षायिक भोग**- भोगान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होने से क्षायिक भोगकी प्राप्ति होती है ।

(४८) **क्षायिक लाभ** – लाभान्तराय कर्मका अत्यन्त क्षय होनेसे क्षायिक लाभ होता है ।

(४९) **ज्ञान-केन्द्र** – मस्तिष्कमे ज्ञानवाही नाड़ियोका जो केन्द्र स्थान है – वही ज्ञानकेन्द्र कहलाता है ।

(५०) **ज्ञानवाही** – ज्ञानवाही स्नायु-कोष स्नायु प्रवाहो को ज्ञान इन्द्रियोसे सुषुम्ना और मस्तिष्कमे ले जाते है ।

(५१) **ज्ञानात्मक** – ज्ञान इन्द्रियोके द्वारा सम्पादित होनेवाली प्रवृत्ति ज्ञानात्मक कहलाती है ।

(५२) **ज्ञानावरण** – जीवके ज्ञान गुणको आच्छादित करनेवाला कर्म ज्ञाना-, वरणीय कर्म कहलाता है ।

(५३) **ज्ञानोपयोग** – जीवकी जानने रूप प्रवृत्तिको ज्ञानोपयोग कहते है ।

(५४) **द्वादशाग** – अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके आचाराग सूत्रकृताग आदि द्वादश भेदोको द्वादशाग कहते है ।

(५५) **निर्विकल्प समाधि** – जब समाधि कालमे ध्यान, ध्याता, ध्येयका विकल्प नष्ट हो जाये तो उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं ।

(५६) **विचार** – विचार मनकी वह प्रक्रिया है, जिससे हम पुराने अनुभवको वर्तमान समस्याओके हल करनेमे लाते हैं ।

(५७) **स्कन्ध** – दो या दोसे अधिक परमाणुओ के समूहको स्कन्ध कहते हैं ।

१ ग्यारह अग और चौदह पूर्व .

(१) ग्यारह अग

(१) आचाराग,
(२) सूत्रकृताग,
(४) स्थानाग,
(४) समवायांग,
(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति,
(६) ज्ञातृकथाग,
(७) उपासकाध्ययनाग,
(८) अन्त कृतदशाग,
(९) अनुतरोत्पाददशाग,
(१०) प्रश्नव्याकरणाग और
(११) विपाकसूत्राग

(२) चौदह पूर्व

(१) उत्पादपूर्व,
(२) अग्रायिणीपूर्व,
(३) वीर्यानुवादपूर्व,
(४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व,
(५) ज्ञानप्रवादपूर्व,
(६) कर्मप्रवादपूर्व,
(७) सत्प्रवादपूर्व,
(८) आत्मप्रवादपूर्व,
(९) प्रत्याख्यानपूर्व,
(१०) विद्यानुवादपूर्व,

(११) कल्याणवादपूर्व,
(१२) प्राणानुवादपूर्व,
(१३) क्रियाविशाल पूर्व और
(१४) लोकविन्दुपूर्व

१० कुछ प्रश्नवाचक (कुछ समझने जैसे)

(१) पुंस = A Male, A Man

(२) पुंसत्व = Manhood, Semen

(३) पुंश्चल = An Adulterer

(४) पुंश्चली = An Adulteress, A harlot,
A Prostitute

(५) पुंसतन = Milk

(६) अभिचार = मोहन – उच्चाटन आदि

(७) व्यभिचार = कुमार्ग-गमन, पाप, दुराचार, यौन संबंध

(८) व्यभिचारी = कुमार्गगामी, अनुचित यौन संबंध करनेवाला

(९) व्यभिचारिणी = पुंश्चली, कुलटा,

यदि मनुष्य तिर्यचद्वारा दूध की प्राप्तिके लिए जनन क्रिया गाय, भैंस बकरी आदि दूध देनेवाले तिर्यचोसे, अन्य अन्य पर्यायवाचक तिर्यचोसे करवाये, तो क्या व्यभिचार का दोष, अतिचार अथवा अनाचारके रूपमे नही लगेगा ? नही लगेगा। क्यो कि उनके लिए संपूर्णतया प्राकृतिक है।

HIS HOLINESS

SWASTI SRI DEVENDRAKEERTHY BHATTARAKA PATTACHARYA VARYA SWAMIJI

SRI HOMBUJA JAIN MATH, Shimoga Dist. (Karnataka State)

GURU PEETA'S HONOUR CONFERRED ON

SHRI SHANKARLAL KASLIWAL, B.Com. F.R.C.S., A.T.I.

TEXTILE TECHNOLOGIST BOMBAY

Manya Sri Shankarlal Kasliwalji

It is a pleasure and pride to have you amidst us, on this auspicious occasion of the annual car festival of Bhagawan Sri Parswanatha Swamy and Bhagawathi Sri Padmavathi Devi when you were called upon to inaugurate "SARVODAYA DHARMA SAMMELANA"

HOMBUJA now called as Humcha was the capital of a principality founded by SRI JINADATTARAYA in the [illegible] th century B C who came from MATHURA in north India and who was blessed by his guru SRI SIDDHANTHA KEERTHI Muni Maharaj Humcha is a place of religious and educational centre. The presiding deity Sri Padmavathi Devi is attracting devotees in large numbers, from the nook and corner of the country

These conferences will bring about religious unity demolishing all artificial barriers, religious rivalries and calls for understanding and mutual appreciation of the values among all religions.

YOU are a true representative of the best INDIAN tradition and the embodiment of simplicity You are the embodiment of compassion, understanding, sacrifice and love In you, there is essential sweetness, that is part of your strength there is essential clarity of vision, creative imagination, and creative faith

YOU have recognised the importance of spiritual direction of life when the world is neglecting the spiritual values of life you have a smile for all and frown for none Our country is in need of moral leadership based on courage intellectual integrity and a sense of values, which you fully satisfy India has a rich spiritual heritage which is not like knowledge as [illegible] Emerson found in India scriptures, and summit of human thought

YOUR [illegible] to Jaina Acharyas and [illegible] greatly commended. [illegible] and institutions has received the appreciation and approbation from all quarters. [illegible] onward march of our community [illegible]

In [illegible] to the community [illegible] "SAMYAKTVA DIVAKARA" which you [illegible]

We [illegible] Bhagawan Sri Parswanatha Swamy and Bhagawathi Sri Padmavathi Devi [illegible] and peace

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ERRATA शुद्धिपत्रक

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
3	(8)	7	द्र य	द्रव्य
5		5	(सुनेषपर्वत)	(सुमेरुपर्वत)
6	(8)	3	invlves	involves
6	(9)	3	hi	his
11	9 (3)	1	भार	भात्र
15	(6)	(b)	Karmik	Karmic
16	18 (1)	2	Molecutes	Molecules
18		2	ह	हैं
19	19	2	दशन	दर्शन
20		1	ो	भी
20		1	जड	जड़
25		9	गणों	गुणों
29	5	5	गु ो	गुणों
31		2	प्रति	प्रवृत्ति
31		2	पडती	पड़ती
31	3 (2)	4	द्ध	शुद्ध
31	3 (4)	3	ष्टा	द्रष्टा
32	4 (2)	5	पडता	पढ़ता

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
37	10	1	ष्टिपथमे	दृष्टिपथमें
39	1 (2)	1	ो	दो
40	अ (2)	3	ँ।	हैं।
41	ब (2)	1	भक्ति	भक्ति,
42	(१)	2	भी	ही
43	(२)	2	ीनो	तीनों
46	(8)	2	ह	हैं
47	6 (1)	6	सद्गु	सद्गुरु
48	व (2)	(अ)	कार	प्रकार
49	(8)	1	भावना	प्रभावना
50	(4)	(अ) 6	रहत	रहता
50	(4)	(अ) 9	मो की	मोक्षकी
50	(5)	(अ) 2	विहीनत धर्म	विहीनता तथा धर्म
50	(5)	(अ) 2	फल प्रति	फल के प्रति
51	(8)	(अ) 6	सम्यदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
52	(9)		वैयावृत्ति	वैयावृत्ति
[illegible]	(11)	(ब) 1	द्वारापेक्षन	द्वारापेक्षण
[illegible]	(18)	(अ) 3	कार	प्रकार
[illegible]	(13)	(अ) [illegible]	वचनरूप	प्रवचनरूप

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
75	15 (1)	3	उप ोक्त	उपरोक्त
76	-	4	ोर	और
77	10)	7	वृहस्पिति	वृहस्पति
77	(10)	9	स	इस
77	(13)	1	क	एक
78	17 (1)	1	ENHALING	EXHALING
79	20 (1)	2	व्यापारीके	व्यापारके
80	(2)	8	ुकूल	शुक्ल
80	(3)	6	अथव	अथवा
80	(4)	6	ोषोसे	दोषोसे
80	(5)	3	अन्तमे	अन्तके
82		1	अविचार प	अविचाररूप
82	(16)	1	करत	करता
82	(17)	4	सपृथक्त्व	सपृथक्त्व
83	प (3)	8	अत्य त	अत्यन्त
84	(11)	2	डरूप	दृढरूप
84	(11)	5	देश	प्रदेश
85	(16)	2	ादर	बादर
86	(20)	2	विशेप	विशेष

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
124		(4)	आकाशस्तिकाय	आकाशास्तिकाय
126		21	आदान, निक्षेप	आदान - निक्षेप
128		2	अवगहनगति	अवगाहनगति
129		2	ऊमका	उसका
129		(4)	मनष्यगति	मनुष्यगति
131		3	परन्तु वाग्तवमे वे सब भेद प्रभेद किसी न किसी एक वीतरागता रुप हैं। निश्चय चारित्रके पेटमे समा जाते हैं।	परन्तु वास्तवमे वे सब भेद प्रभेद किसी न किसी एक वीतरागतारूप निश्चय चारित्रके पेटमें समा जाते हैं।
131		7	वाह्म	वाह्य
131		18	वितरण	विवरण
133	2	1	ऋजकुला	ऋजुकूला
133	2	2	आरोहन	आरोहण
134	9	1	करना	करता
134	10	2	श्लोकको	श्लोकका
135	13	1	गय	गये
135	13	4	पांच	पांचसौ
135	14	4	इस	यह
136	16	2	दिव्यधीनि	दिव्यध्वनि

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Cofrect शुद्ध
157		1	जाकर ११० योजन व्राहल्य व १ राजू युक्त ज्योतिष लोक है।	जाकर ११० योजन बाहल्य व १ राजू वि तार युक्त ज्योतिष लोक है।
157	(6)	3	माहे-द्र	माहेन्द्र
157	(6)	7	अनुदिशा	अनुदिग
161		(7)	ोजन	योजन
167	1		मन्स्त्नोके	मन्त्नोके
168	(7)	1	ह्	ह्
168	(7)	3	ल्वर्यं	ल्वर्यूं
169	(8)	3	इमे तेजोविज कामवीज और भववीज माना गया।	इसे तेजोवीज, कामवीज और भववीज माना गया है।
171	41		ह्वौ	ह्रौं
171	48		अकावशवीज	आकाशबीज
173	7		अह	अर्हं
174	9	16	पायात्पञ्चनमस्क्रिया-क्षरमयी	पायात्पञ्चनमस्क्रिया क्षरमयी
174	9	18	पञ्चमस्कर	पञ्चनमस्कार
175		4	प्रथम	प्रथमं
175		6	विप	विपं
176		2	पापसहस्त्राणि	पापसहस्राणि
178	(5)		वह्निबीजका।	वह्निर्बीजका

Page पृष्ठ	Para परिछेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
180	(3)		'हु'	'=हु'
180	(4)		'=हृ'	'=हू'
183	9	1	eclared	declared
185		6	VAHUVATI	VAHUVALI
185	12A		According to Va- huvali Charitra, the exact Naksa- tra was Mrigasira, Sunday 2nd of April 980 A D	According to the Vahuvali Charitra, the exact Naksatra was Mrigasira, the Lagna was Kum- bha, the day was Sunday, the Tithi was Suk a Pancha- mi and the Month was Chaitra, acco- rdingly, Sunday, the 2nd of April 980 A. D
186	21	1	tne	the
191	10	4	197	1970
191	11	1	Pesonality	Personality
192	8	3	Cridha	Gridha
192	10	1	Mahabir	Mahavir
199	21	3	नकले	निकले
200	28	1	दीनक	दिनांक
203	45	1	शत्रुजयके	शत्रुन्जयके

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
204	52	1	५-१०-१०७०	५-१०-१९७०
204	53	1	दिांनक	दिनांक
206	62	4	४-११-१०६३	४-११-१९६३
211	5	2	Killo	Kilo
211	7	3	approched	approached
212	10	4	shti	shri
213	14	4	Rubby	Ruby
216		1	Teusday	Tuesday
223	22	3	प्रतिम	प्रतिमा
223	2	4	समया	समय
225	3	1	गर्भ	गर्भ से
227	14	3	वहिरण	वहिरग
227	19	2	सन्त्रजय	शत्रुन्जय
227	19	2	सारगा	तारंगा
227	20	2	जयपर	जयपुर
230	6	2	मझे	मुझे
231	7	8	ऑनमोअर्हद्म्य,	ऑनमोअर्हद्भ्य
231	7	9	मम,	नम
231	7	15	[illegible]	[illegible]

Page पृष्ठ	Para परिच्छेद	Line पंक्ति	Incorrect अशुद्ध	Correct शुद्ध
282	10	3	वृत	व्रत
288	(2)	(2) 2	वहर	वाहर
289	(3)		अन्तर-दर्शन	अन्तर-प्रदर्शन
240	(8)		दा	वा
251	(8)	5	भा ाओ	भावोका
254	(10)		बोजो	बीजो
256	(23)	1	विघ्नोका	विघ्नोका
259	(10)	2	सँजोनेकी	सजानेकी
260	(22)		प्रथमोपशमसम्यक्त	प्रथमोपशमसम्यक्त्व
260	(27)	1	पर	पैर
260	(27)	1	घुटनेसे	घुटनेसे